(४) विषयानुकर्मणिका

विषय.		g3.	विश्व,				LZ.
अनुमानालंकार		. 106	स्वकीयाः				200
परिसंख्या		. १८२	परऋीया				209
प्रभोत्तर तथा सक	ξ	. 163	धामान्या				२१०
व्यक्त प्रश्नोत्तरोदाह	ল	. 164	विप्रकंम				२१२
गृद प्रभोत्तरोदाहर	٦	. १८५	वूर्वानुराग	•••			33
चकर		. १८७	मान, प्रवास	·			२१३
अय रीतिवर्णनम्।			करणा				218
. अय सा	तवणनम्।		वीररस	***			२१७
शितिद्वार		. १८९	करणा	•••	***		२१८
गौडीका उदाइरण	****	\$58	द्दास्य	•••	***		२२०
वैदर्भीका उदाहरण	****	. १९३	बद्धत	•••	•••	•••	२२२
	-2-		भवानक		***	•••	२२४
वय पश्चम	पार् च्छद्	1	चैद्र	***	*4*	***	२२५
रखेंका वर्णन	٠	. १९५	वीमत्स	•••	***		२२७
मायकलखण		. २०१	शान्त	•••	***	•••	२२९
		. २•२			•••		२३१
अनुकूल और दक्षि							२३२
नायिकावर्णन			टीकाकारस्य			श्लोकाः	२३५
अनुदालक्षण		. २०५	मपसमातिः	•••	***		२३६

इत्यनुक्रमणिका समाप्ता.

वाग्भटालंकारः।

सान्वयसंस्कृतटीका-भाषाटीकोषतः।

प्रथमपरिच्छेटः ।

शीगोपाछं नमहरूत्व करोति मुरलीपरः । वारमटालंकतेष्टीकामन्वयार्यमयोपिनीम् ॥

श्रीगोपालं नमस्कृत्य मुरलीधरः अन्वयार्थप्रवो-धिनीं वाग्मटालंक्तोः टीकां करोति इत्यन्वयः॥ श्री-गोपालम् गां वेदवाणीं पृथिवीं वा पालधर्ताति अथवा

श्रीइंदाबने गाः पालयतीतिश्रयासहितम् श्रीकृष्णाव-तारस्वरूपं विष्णुम् अन्वयार्थमशेषिनीम् अन्वयार्थयोः प्रबोधकारिणों वाग्भटालेकृतेः वाग्भटालंकारस्य-प्रथस्य निर्विप्रतापरिसमान्यर्थमिदं मंगलं स्वेष्टदेवता नमस्कारात्मकमाचरितम् ॥

श्रियं दिशतु वो देवः श्रीनाभेयजिनः सदा। मोक्षमार्गं सतां बृते यदागमपदा-वर्ळो ॥ १ ॥

परक्षा । । ॥ टीका-पदागमपदावली सतां मोक्षमार्गं ब्रते (स)

क्षानाभयजिनः देवः वः सदा श्रियं दिशतः इत्यन्वयः "

(२)

जयित संसारिमिति जिनः जिञ् जये धातीनंक् प्रत्ययः। त्रह्मा विष्णुः बुद्धः (इति शब्दस्तोम॰) नाभेयः नाभि-जन्मा श्रीविधातादेवः वः श्रियं संपत्ति छक्ष्मीं बुद्धि वा दिशतः। अथवा यंथकर्तरिष्टदेवो जिनः नाभिनामा

र्रपतिः जिनस्य जनकः तद्युत्यत्वान्नाभेत्र इति॥ १॥ अर्थ-निनके आगमनका पदावला सरहरुषंको मोक्षमांगेरे चतानेवाली हे सो श्रांनाभेय जिन भगवान् आपको सदेव लक्षी अथवा बुद्धिके देनेवाले हो (नाभेषका अर्थ जो नाभिसे दलप हो अथवा नाभिनाम रानाका पुत्र हो और जिनका अर्थ जो संसारको नीतसंक इससे पई नाभेपनिनका अर्थ नाभिसे उत्पर होनेवाले विधान परा करतेहैं और क्षत्र कर्मामेसे उत्पर करतेहैं जो पर क्षत्र क्षत्य क्षत्र क्षत

साधशब्दार्थसंदर्भं ग्रणालंकारभृपितम् । स्फुटरीतिरसोपतं काव्यं कुर्वीत कीर्तये २

टीका-कृतिये काव्यं कुर्व्वति किंधृतं काव्यं साधुशब्दार्थसंदर्भग्रणाळकारभूपितं स्फुटरीतिरसोपेतम् इत्यन्त्रयः ॥ साधुशब्दार्थयोः संदर्भो रचनाक्रमो यत्र तत् गुणाः प्रसादादयः अळंकाराश्च चित्रादयः उपमादयश्च तिभूपितं रीतिः गोडीत्यादिका रसाश

शृंगागद्यस्तिस्पेतम् ॥ २ ॥

अर्थ-श्रेष्ट शन्द और अर्थमे ग्येकिन तथा प्रमादादि गुणी तथा वित्रादिक शब्दालंकारी और टरामादिक अर्थालंकारीमे विश्षित और रहुट गाँडी आदि रोतियों तथा श्रंगारादि रसेोस उपयुक्त फाल्पकी रचना फीतिके अर्थ पयि करे ॥ २ ॥

प्रतिभा कारणं तस्य व्युत्पत्तिस्तु विभूप-णम् । भूशोत्पत्तिकृदभ्यास इत्याचकवि-संकथा ॥ ३ ॥

टीका-त्तस्य काव्यस्य कारणं प्रतिभा विश्वपणं जु-त्पितः अभ्यासः सुशोत्पत्तिकृतद्दित आद्यकविसंकथा (भवति) दृत्यन्वयः ॥ अतिशयन काव्यरचनोत्प-त्तिकरणं भृशोत्पत्तिकृत्॥ ३॥

अथं-दस बान्य (विश्वच) या कारण कविकी स्कुरणशीला बुद्धि होतीहें और विश्वचण स्युप्पन्नता हें और अतिहायकाच्य रचना करनेस अन्यास होताहें आयकवियोका इसवकार ए.पन है।। है।।

प्रतिभाउक्षणम् ।

प्रसन्नपदनन्यार्थयुक्तयुद्दोधविधायिनी । स्फुरंती सत्कवेर्चुद्धिः प्रतिभा सर्वतो-मुखी ॥ ४ ॥

र्टाका-सर्वतोषुखी स्कृती सत्कवेर्बुद्धिः प्रतिभा (भवति) किथिशिष्टा सा प्रसन्नपदनन्यार्थबुत्तयुद्धोष विधायिनी इत्यन्वयः,॥ प्रसन्नानि मनोहराणि पदानि नन्यार्थाः व्रतनार्थाश्च तेषां स्रक्तिः योजनं तदद्वोषः- विधायिनी स्फुरंती स्फुरणशीला सर्वतोमुखीं सर्वेषु विषयेषु प्रकृता ॥ ४ ॥

अर्प-सब विषयोंमें प्रवृत्त होनेवाळी स्फुरणशीळा जो सत्कवि षी युद्धि दोरे प्रतिभा फहतेहिंवह फैसी हो कि मनोहर पदी और नवीन अर्योकी योजनाका उद्दोध फरनेवाळी हो ॥ ४ ॥

ब्युत्पत्तिः।

शब्दधर्मार्थकामादिशास्त्रेष्वाम्नायपूर्विका। प्रतिपत्तिरसामान्या व्युत्पत्तिरभिधी-यते॥ ५॥

टीका-शन्दधर्मार्थकामादिशास्त्रेषु आमायपूर्विका
असामान्या प्रतिपत्तिः न्युन्पत्तिः अभिधीयते इत्यन्ययः ॥ शन्दशास्त्राणि न्याकरणकोशाद्गिति धर्मशास्त्राणि
श्वतिस्त्रृतिषुराणाद्गिति कामशास्त्राणि बात्स्यायनादीति आदिशस्देन कान्यालंकाराद्गीतां ग्रहणम् तेषु आमाय पृष्कित गुरुषंप्रया नीपदेशर्श्वका असामान्या
असागण्या प्रतिपत्तिः प्रशृतिः ॥ ५ ॥

अर्थ-व्याकरण कोशादिक शब्दशाम्त्र और भुनि स्मृति पुरा णादिक धर्मशाम्य और वाल्यायन कोशादिक कामशाम्य तथा आदिशब्दम वाज्यावंकरमदि शास्त्र इत मर्थम में। गुरुपरंपरासे शिवर्षक द्वदेश प्रकृष कर अमाधारण मनिपर्शि (परितान) होता दमको स्पृत्यति कहर्वेदें ॥ ५ ॥

(4)

अभ्यास लक्षणम् ।

अनारतं ग्ररूपांते यः कान्ये रचनादरः। तमभ्यासं विद्रस्तस्य कमः कोप्युपदि-इयते ॥ ६ ॥

टीका-अनारतं (यथास्यात्तया) गुरूपांते काव्ये यः रचनादरः बुधाः तम् अभ्यासं विदुः तस्य कोपि ऋमःउपदिश्यते इत्यन्वयः॥ अनारतं निरंतरं गुरूपति गुरुसमीपे रचनादरः रचनारंभः ॥ आदरः सन्माने

आरंमे च(इति शब्दस्तोम०) ॥ ६ ॥ अर्थ-निरंतर पहुतसमयतक गुरुके समीपमें नी काव्यकी रचनाका आरेम उसे विद्वान अन्यास कहतेंदें (अब इस प्रंथमें) उसके छुछ कमेंका उपदेश कियाजाताहै ॥ ६ ॥

छंदःकारणम् ।

विश्रत्या वंधचारुत्वं पदावल्यायशून्यः या । वशीकुर्व्वीत काव्याय च्छंदोंसि

निखिलान्यपि ॥ ७ ॥ टीका-बंधचारुत्वं विभ्रत्या अर्थशुन्यया पदा-

वल्या आपे कान्याय निविलानि छंदांसि वशीकुर्व्वीत (कविरिति शेषेण) अम्बयः ॥ वंधचारुत्वं छंदसां चारुत्वम् अर्थश्चन्यया वर्णमात्रीचारणरूपया ध्वन्याः त्मकरूपया वा पदावल्या अपीति कथनेन अर्पणि- तया अपि-निषिलानि छैंदांसि श्रीप्रभृतीनि एको गः श्रीः इत्यादीनि एको ग श्रीः इति तु सार्थकं का खा गा घा इति निरथेकं परंतु श्रीछंदस्त्वधुभयनेत्र केचि-

गा चा इति निरथक परतु श्राछदस्त्वमुभयन्त्र काच-दिति व्याख्यानयति पदावल्या अप्रगणरूप्या ॥ ७॥ अर्थ-छंदोंकी मनोहरता (रीतिकम) पारणकरनेवाळी अर्थ ग्रुप्य पदावळी करके भी कवि काव्यके ळिथेसमस्त श्री इत्यादि

छेदोंका निवंध करसकाहि (तथा सार्यकपदांत्रिस्पेंसि ती छेदों का निवंध होताहीहि) ("क्का मः श्री" अर्थोत एक अक्षर ग्रह निसकि एक चरणमें हो वह श्रीछंदहै अन्त यहां सार्यक पदावर्छन से शीछंद हुआ) और 'देवं बंदे 'मी सार्थक शेछंद हुआ परंतु 'काखागापा" यह निर्यंक होनेपर भी शीछंद वनगया और कई ऐसा कहतेहैं कि मगण आदि अप्टर्गण रूप पदावर्डीसे

गुरुका भगण आ,आहि लघुका यगण ।ऽऽ, मह्त्वगुरुका जगण ।ऽ।, भध्यलघुका रगण ऽ।ऽ, अन्तगुरुका सगण ॥ऽ, और अंतलघुका तगणऽः।, होताहै ॥ ७ ॥ पश्चाह्नस्त्वं संयोगाहिसर्गाणामलोपनम् ।

छंद होतेहैं तीनों मुरुका पगण 555, तीनों छपुका नगण ॥॥,आदि

विसंधिवर्जनं चेति वंधचारुत्वहेतवः॥८॥ हिति ऋपाण विधृते त्वया घोरे रणे ऋते ऋधीश क्षितिपा भीत्या वन एव गतो

जनात् ॥ ९ ॥ टीका-संयोगात् पश्चाहरूतं विसर्गाणाम् अलोपनं च विसंधिवर्जनम् इति वेधचारुत्वहेतवः (संति)इत्य न्वयः ॥ संयोगात संयुक्तवर्णातः पूर्वं गुर्वेक्षरवद्शारणं विसंधिवर्जनं विकटसंधिविवर्जनं वंधचारुत्वहेतवः छंदोरचनाचारुत्वस्य कारणानि ॥ ८॥(उदाहरणम्) हे झधीश त्वया शिते कृपाणे विधृते घोरे रणे कृते (स्रति) क्षितिपा भीत्या जवात वने एव गताः (इत्यन्वयः) ॥ शिते तीक्ष्णे नृणाम् अधीशः अधीश स्तत्संयुद्धी वधीश । क्षितिपाः विरिणी राजानः । जवात् वेगेन । अत्र नधीश इत्यत्र विकटसंधिकरणात वंधाचारुत्वम् ॥ ९॥ अर्थ-संयुक्त अक्षरसे पीछे लघु वर्णमा भी मुहबत उचारण फरना और विसमीमा लोप (अनुधारण) नहीं करना और विकट अमनाह संधिका नहीं करना ये स्होकादिकोंकी संदरताके हेनु होते हैं ॥ < ॥ (इसका उदाहरण दिसाते हैं) हे वधीश ! नरोंके अधीश आपके तीक्ष्ण सङ्ग धारण करके बीर संप्राम कर-नेपर (आपके शह) सब राजा भयसे शीमही धनको भाग गेप इसमें वर्षाश पद तु-अधीशकी संधिसे बना है और यह संधि विषय है अर्थात मनोहर नहीं इससे यह सुंदरताका हेत नहीं फिंदु सुंदरतामें क्षति होगई (वधीश पद संधिपैकडच होनेहीसे मचलित नहीं किंद्र नरेश नुपति आदि ही प्रायः

अञ्चल्लहेरयां नव्यार्थयुक्तावभिनवलतः। अर्थसंकलनातत्त्वमभ्यसेत संकथास्विप ॥ १० ॥ आगम्यतां सरवे गाढमालि-

मचलित हैं ॥ ९ ॥

(4)

िग्यात्र निपीद् च संदिष्टं यत्रिजञ्जातु-जायया तत्निवेदय ॥ ११ ॥

टीका-अभिनवत्वतः नव्यार्थयुक्तो अनुछसंत्यां संकथासु अपि अर्थसंकळनातत्त्वम् अभ्यसेत् इत्यन्वयः॥ अनुछसंत्याम् अपकाशमानायाम् अनुउध्यन्मानायां (सत्यां) नव्यार्थयुक्तो नवीनार्थनियुक्ती नवीनस्य पूर्वेः अनुद्रावितस्य अर्थस्य नियोजनायाम् इत्यर्थः। अभिनवत्वतः अभिनवत्वेन संकथासु वार्ताळापादिषु इतिहासादिषु च अर्थसंकळनातत्त्वं अर्थसंयोजनचारुत्वम् ॥१०॥ (उदाहरणं) हे सखे आगम्यतां गादम् आळिंग्य च अत्र निपीद् यत् निजन्नातृ जायया संदिष्टं तत् निजेद्दय इत्यन्ययः॥ अत्र मत्समीपे निपीद् उपविश निजन्नातृजायया निजन्नातृ-पत्न्या॥ ११॥

अर्थ-नवीन प्रकारसे तृतन अर्थ योजनाका प्रकाश (उद्योध) न होनेपर कथाओ वार्ताखावादि तथा इतिहासादिकमें भी अर्थ योजनाका सुंद्राताका अभ्याम करे ॥ १० ॥ (इसका उदाहरण) है सित्र ! आर्था गाट आर्थियन करेंग्र यहाँ मेरे पास वैद्रो और हमांग भागार्दिन नो मेदिशा भागां गा कही अथवा आपका मोजार्द (मेरी याँ।) ने नो मेदिशा भेगा मो कही (निज्ञां काया क्यान स्मार्थ मांगार्द (मेरी याँ।) ने नो मेदिशा भागां को यहाँ एकता है और आवर्ष मंतार्द (मेरी याँ।) वेगा भी अर्थ हो सकता है। अपका अवर्ष मंतार्द (मेरी याँ।) वेगा भी अर्थ हो सकता है। प्रयोगन यह (हि इतिहामों और वार्तावादादिकोंमें जहाँ विशेष

मधीन अथोंकी (तथा छछितशब्दोंकी) योजनाका मकाश और उद्दोष नहींहो ती अर्थकी मुन्दरताका अभ्यास करे)॥ ११॥

पदार्थवंधाद्यश्च स्यादभ्यासो वाच्य-संगती । स न श्रेयान यतोऽनेन कवि-

र्भवति तस्करः॥ १२॥ टीका-बाच्यसंगती परार्थवंधात् च यः अभ्यासः स्यात् स न श्रेयान् यतः अनेन कविः तस्करो भवति

अभिप्रायात् वंधात् श्लोकादितोभ्यासः पराभिप्रायं श्लो कादिकं वा एईल्या निवधातीतिभावः स न श्रेयान न श्रेष्ठ इत्यर्थः ॥ १२ ॥ अर्ध-पचनरचनामें (श्रीकादिरचनामें) परापे अर्धसे अर्ध

इत्यन्त्रयः॥ वाच्यसंगते। वचनरचनायां परस्य अर्थात

हेना अथवा पराये श्रीशदिसे पद हेना (अयवा पराये रवित-को अपना बताना) यह अभ्यास भेष्ठ नहीं क्योंकि ऐसा करनेस कवि चीर होताहै ॥ १२ ॥

परकाव्यग्रहोपि स्यात् समस्यायां कवे॰ र्गुणः। अर्थं तदर्थानुगतं नवं हि रचय-त्यसी॥ १३ ॥

टीका-समस्यायां परकाव्यमहः आपि कवेः गुणः स्यात् हि असी तदयांनुगतं नवम् अर्थे रचयति इत्य-न्वयः ॥ परकाव्यमहः परकाव्यात् महणं समस्यायां ू संसेपेण उक्तस्य श्लोकपादादेः शेषस्य पूरणार्थे कृतप्रश्लक्षपायां तद्यांनुगतं समस्यार्थानुगतम् ॥१२॥ अर्थ-समस्यामं पराये कान्यका ग्रहण (पराये अर्थ अथवा पदारिका ग्रहण) होनाना कविका ग्रण होनाहे न्यांकि वह समस्यारे अर्थके अनुगत नयीन अर्थकी रचना करताहै, (और पदार्थ नया पर पहारे का विस्तान भी समस्यार्थिन एक हुने

कियों नहीं होता इससे यदि दो कियों या कई कियोंका आज्ञाप अपना पर पर भी हो तो पर इसरे किया गण होता है दोप अर्याद पोराव नहीं पोराव गभी होताहे कि जभ जान एतरर परि दमरेके आज्ञाम था रचना पदादिका महणकरें) (समस्या उसे पटनेंड जहां अंतका पद या कोई अंग यताकर उस रोतरादिनी नदनुसार पूर्ति करनेका महत्त हो)॥ ११॥ दीटा-शन्य किनके अर्थपद, ब्रहण सौर सम होय।

भरार समाना ग्रांतमें, गृत करतावर्ता सीच ॥ मनःप्रमत्तिः प्रतिभा प्रातःकालोऽभियोः गता । अनेकशास्त्रदर्शित्यमित्यर्थालोक

गता । अनकर् हतवः॥ १४॥

र्राज्यस्य असीलाक्ष्यात्यः असीलाक्ष्यत्यः इति सम्लान्यः ॥ सनः प्रमातिः सनसः अस्त्रता अतिभा पृत्तेना सन्कवर्ष्वेद्धः आनःकालः अभावसमयः अभियोग् सन्। भिलः च प्रदार्थोदीनास्यलोकनसेषोसत्य । आनः काले निर्यासिता इति वा पाटः । तत्र असीन स्पनापी

दस्तिति अनेकशाखद्धित्वं अनेकशाम्राणामको

कनकारित्वम् इति अर्थालोकदेतवः अर्थस्य उद्देश्यस्य आलोकदेतवः उद्योतदेतवः आलोकः उद्योतः (इति श. स्तो.) ॥ १८ ॥

अपे-मनकी महतता कविकी स्फूरणशीला बुद्धिः मातःकारु का समय विलक्षण पदायाँका दर्शनसंयोग तथा अनेक शास्त्री का देराना वे सच (काव्यरचनार्में) वर्णनीयमें चाहत्वके दसीत होनेके कारणहें (अर्थात इनसेकवितामें सुंदरता होती है)॥१४॥

संक्षिम काञ्यनियमाः ।

समाप्तिमव पूर्वाद्धं कुर्यादर्थप्रकाशनम् । तत्युरुपवहुवीही न मिथः प्रत्ययावही १५

हीका--पूर्वोद्धे अर्थप्रकाशनं समाप्तमिष कुर्पात् (तथा) तत्पुरुपबहुनीहिसमासा मिथः प्रत्ययावही न इत्यन्ययः॥ पूर्वोद्धे श्लोकस्य पूर्वोद्धे अर्थप्रकाशनं समाप्तमिष कुर्यात् अन एव द्वितीयपादांतस्य नृतीय-पादाचन सह संधिसमासीन कर्तव्यो इतिभावः। तत्पु-रुपबहुनीही मिथः प्रस्पर् प्रत्ययावही विश्वासयोग्या

न कार्यें असंदिग्वी कार्यें। इत्यर्थः ॥ १५ ॥

अर्ध-श्रोक प्रवादिन अध्यक्तकक्त समावि सी ही कर देना चादिन पदि द्वार अर्थाश रहे वी भी पूर्वाई ओर उत्तराहिंगे अर्थाद द्वितेष पदके अंत और तृतीय पदके आदिने संधि अध्या समास आदि द्वार नहीं करना चादिने प्रयोजन यह कि पूर्वाई और उत्तराई खुंद खुंदे से रहने टिचित हैं तथा तखुरुष और बहुमीदि समास क्षत्र संदेहयुक्त नहीं रखने चाहिये (नैसे-- "कृष्णपुत्र" पद्भें कृष्णका पुत्र "कृष्णपुत्र" यह तखुरूप समास है और इसीम कृष्ण है पुत्र निसन्ता सी "कृष्णपुत्र" यह पर्द मीहि है अर्थात् नेही अतसर हो ती विशेषणींसे पर्दश्री संदेश निहत्त करदेना चाहिये॥ १५॥

एकस्येवाभिधेयस्य समासं व्यासमेव च। अभ्यसेत्कर्त्तमाधानं निःशेषालंकि-यास्ति॥ १६ ॥ स्यादनर्द्धातपादांतेऽप्य-शेथिल्यं लघुर्गुरुः। पादादी न च वक्तव्या शादयः प्रायशो वधेः॥ १७॥

रीका-निःशेषालंकियाम् अपि एकर्स अभिषे सम्म एव समासे ध्यासे च आधानं कर्तु अभ्यस्त् स्टबर्ग्यः ॥ अभिषेपस्य मनिषायस्य समासं संक्षेत्रः पत्रःथापं सिर्वास्तः कथनम् आधानम् आसीपणं निः स्टार्लक्याम् स्वीतालंकियम् ॥ १६ ॥ अगद्वीत पार्ट्ति असि असीपलंग स्वति । खनुः गुक्तः स्यात । च नुषे प्रायशः पार्श्वा चाद्यः न यक्त्याः स्ययः स्ययः ॥ अन्द्रीतपाद्यि व्ययमृत्तीयपाद्यि असीपिः स्ये एक द्यासार्य्यक्रते ॥ १०॥

अर्थ-स्वान्त स्टर्डांश्चित्रक वर्णनीयका भीत्राभ वर्णन वह ने खबरा विकारणेम बात्त बर्डान क्रारीयक करनेका अन्याम बेर्डे अस्तित बद्द किसा बदार क्रारीय करें विभेदी समाप

(११)

करना नाहिय ॥ १६ ॥ पहले और सामेर पदने अंतरे भी भी ग्रह पर्णके उचारण की आवश्यकता हो ती पहांका लग्न पर्ण के ग्रहके समान हाताहै (और खालाई अयांत दूसरे पदके अंतरे ती ऐसा होताहै हा और भायः विद्यानों का ऐसा कथन है। पदके आदिमें चकारादि अव्ययांका नियोगन करना डींग नहीं (गिंतु है भी अहाँ हा हंत विष्ठ्या इत्यादि अव्यय पदं आदिमें हों सा अनुचिन नहीं जैसे "विष्ट्यांवते कुक्षिगतः प ग्रमान" इसमें पदके आदिमें "विष्ट्यां " अव्यय है सो अनु

वित नहीं ॥ १७ ॥

श्वनानि निवभीयात त्रीणि सप्त चतुर्हरा । अप्यहरुया सितां कीर्तिमकीर्ति
च ततोऽन्यथा ॥ १८ ॥ वारणं शुभ्रमि-

द्रस्य चतुरः सप्त वाम्बुधीन् चतस्रः की-तयहारो दश वा ककुमः कचित् ॥१९॥ दीका-भुवनानि त्रीणि सप्त चतुर्दश निवशीयात् की

तिम् अदस्याम् अपि सिताम् अकीति च ततःअन्यः (निवधीयात्) इत्यन्यः ॥ सिताम् शुभं ततोन्यः कृप्णाम् ॥ १८॥ इंदरस्य वारणं शुभं अंबुधीत् चतः सप्त वा ककुभः चतसः वा अर्धा क्षसित् दश कीतये इत्यन्ययः ॥ वारणं गजम् ॥ १९॥

अर्थ-फवितामं भुवनोंको (छोकोंको) तीन या सात । चौदह पर्णन करना चाहिये जैसे त्रिश्चन छोकप्रम सास्ट्रो इत्यादि और फोर्चि दीएनेवाटी नहीं है तीमी टमें नेत हमें पर्णन फरना चाहिये और अफीर्ति अपयक्षकों काले रूपसे पर्णन फरना जैसे "त्वे कर्तु धवरुष्ट्यमिं स्वयक्षमारले सर्वमुर्वतिल्य" इति । अधीत तुम अपने यक्ष करके सम्पूर्ण फूलीरी खेत कर सक्तेहो॥१८॥इंदका हाचा क्वेत रूपसे पर्णन करना चाहिये सर में को चार अथवा सात पर्णन करें और दिशाजीको चार अथवा आउ अयवा दक्ष पर्णन करें ॥ १९ ॥

यमकर्रुपचित्रेषु ववयोर्ड्लयोर्न भित्। नातुस्वारविसर्गे। चचित्रभंगाय संमती २०

टीका-यमकश्चेपिवनेषु ववयोः डलयोः न भित् च अतुस्वारिवसगां चित्रभंगाय न संमती इत्यन्वयः ॥ यमकश्चेपिचनादयः शब्दालंकाराः तत्र ववयोर्न भित् वकारवकारयोः डकारलकारयोश्च न भेदः इत्यर्थः । चित्रभंगाय चित्रव्याचाताय न संमती न गणिती॥२०॥

अर्थ-प्यमक और क्षेप और चित्र इत्यादि शन्दालंकारोंमें सकार वकारका तथा इकार लकारका भेद नहीं समझा जाता है और अनुस्वार एवं विसगोंस चित्र भंग (चित्रकाय्यका भंग) नहीं होता (प्यमक हुकमिलने जुडनेको कहते हैं क्षेप दो पक्षमें अर्थ देनेवाल शन्दालंकारको कहते हैं और चित्र हारवंध पयवंध आदि रचनाको कहते हैं इन सबके उदाहरण अगाडी लिखे हैं) ॥ २०॥

यमक्काउदाहरण ।

शंकमानेर्महीपाल कारागारविडंबनम् । लढेरिभिः सपनीकेः श्रितं बहुविडं वनम् ॥ २१॥

टीका — हे महीपाल सपत्नीकेः शंकमानिः हब्देरि-भिः पटुविडं (यदुविलं) कारागारिविडंवनं वनं शि-तम् इत्यन्वयः ॥ शंकमानिः चितायुक्तैः कारागारिवि-ढंवनं कारागार इव विडंवनं क्रेशः यत्र एवं भूतं वनं वटुविडम् अर्थात् वहुविलंबहुनि विलानि सपादिवास विवराणि यत्र एतादशं वनं शितम् आशितम् अत्र द्वितीयपाद्गते चतुर्थपादाते उभयत्र विडंवनं विडंवनम् इति वर्णशाहश्येन यमकं तत्र डलयोभेंदाभावः ॥२१॥

अर्थ-दे महीपाछ । चिंतापुक आपके चैरी सपलीफ अयांत्र स्रीसिदित ऐसे वनमें मात्त होगये हैं (जापर छिपे हैं) निसमें अनेफ सपांदिरोंके चदुतसे बिट हैं और निसमें फैदसाने जैसा है.स हैं । यहां चद्वविद्ध अर्थात् चद्वचित्र युक्त बने ऐसे द्रश्माफे बदले टक्तार मानकर अर्थ किया इसका मयोजन बपलको सिट-देश समझना जहां समानस्वर प्यंननोंक्रफे सुक से द्वक मिट-जाय दसे पमक कहतें हैं जैसे बढ़ी दूसरे पदके अतमें 'विडंचनें' है ॥ २१ ॥

श्टेषका उदाहरण ।

लया दयाट्रेंण विभो रिपूणां न केवलं संय-मिता न वालाः ॥ तत्कामिनीभिश्चवियो-गिनीभिः मुहुर्महीपातविधूसरांगाः॥२२॥

टीका-हे विभो दयाहेंण त्या केवलं रिप्रणां वालाः न संयभिता इति न किंतु संयभिता एव कीहराः
वाला सुहुर्मेहीपातिवधूसरांगाः च वियोगिनीभिः तत्कामिनीभिः वाला केशा न संयमिता इति न कीहशा वालाः सुहुर्मेहीपातिवधूसरांगाः इत्यन्वयः ॥
संयमिता संस्थापिताः वालाः ख्रियः वालकाः अथवा
केशाः वियोगिनीभिः पतिरहिताभिः सुहुर्मेहीपातिवधू
सरांगाःसुहुः महीपतनेन विधूसराणिमिलनानि अंगानि
यासां येपांवा अत्र वालाः इति क्षेषे ववयोरभेदः २२॥

अर्थ-हे बिभो (है राजन्) आपने द्यापान् होकर केषछ शत्रु मोंकी स्त्रियां नहीं सँभाली ऐसा नहीं कित आपने अवस्य उनको सँभाला और उन वियोगिनी कियोने अपने विवरेषाल नहीं सँभाल ऐसा नहीं किंद्र उन्होंने भी अपने वाल सँभाल कर बिधे कैसी वे स्त्रियां हैं कि बार बार पृथ्वीमें पड़ने से में हिन होगये हैं अंग निनने अथवा वे बाल केश केसे हैं में बार बार पृथ्वीमें गिरनेसे मिलन होगयेहैं अंग मिनके कई बाहा क्यनसे शत्रुपोंके बालक ऐसा अप भी करते हैं यही बाला गाइका अर्थ खियों अथवा बालक तथा किस है और 'मुहुमहैं। पात्रविभूसरीया, होनों तीनों पर्सोंका विशेषणहैं तथा बाला शब्द सान्वय संव टी व भाषाटीयासहित ! ं (१७)

,कर्ड,पक्षमें अर्थ देता_{लै} इससे इटेप अर्टफार हुआ और घका

. यकारका,अभेद दिसामा गया ॥ २२ ॥

लिये इसे जलात्मक समझो ॥ २३ ॥

चलोपलोचम् ॥ २४॥

आपकी यशोराशिकी रत्ति करनेकी उत्सादित करती है जैस र्घदमाकी कला जडात्मक (जलात्मक) समुद्रको उत्कंतित (उत्तंभित) करती है यहां भी शेषमें हकार और छकारका अभेद है मांका विशेषण जहात्मक है और समुद्रके विशेषणक

चित्रका उदाहरण । चंद्रेडितं चट्टलितस्वरधीतसारखासनं रभुसक्लिपत्रशोकजातम्। पश्यामि पाप तिमिरक्षयकारकायमल्पेतरामलतपः क-

टीका-(अहं) जिनं (शिवंबा) पश्यामि कीहशे जिनं या शिवं चंद्रेडितम् पुनः कीदशं चट्टालितस्वरधी-

अर्थ-हे देव भक्ति (जो है सो ही) इस जडपुदि सुझगे

विशेषणम् ॥ २३ ॥

इव इत्यन्वयः ॥ जडात्मकं मूर्वं सागरपक्षे डलयोर-भेदात् 'जडात्मक' इत्यस्य स्थाने 'जलात्मकम्' इति

सागरम् ॥ २३ ॥ टीका-हे देव भक्तिः एनं जडात्मकं मां युष्मद्यशी राशि स्तोतुम् उत्कंठयति इंदुलेखा जलात्मकं मागुरम

कम् ॥ उत्कंठयति मां भक्तिरिंदुलेखेव

देव युष्मचशोराशि स्तोतुमेनं जडात्म-

(24)

तसाररतासनम् प्रनःकीदृशं रभसकिल्पतशोकजातम् । पुनः कीहशं पापतिमिरक्षयकारकायम् प्रनः कीहशं अरुपेतरामलतपः कचलोपलोचम् इत्यन्वयः॥ चंद्रे-डितं चंद्रेण ईंडितं स्तृतम् अथवा चंद्र इव ईंडितं स्वर **धीतसाररत्नासनं रत्नानाम् आसनं रत्नासनं स्वलेंके** अधीतः सारो सिद्धांतो यस्य स स्वरधीतसारः इंद्रः तस्य रत्नासनं स्वरधीतसाररत्नासनं चटलितं प्रकंषितं स्वरधीतसारखासनं येन तम्, रभसक्तिपतशीकजातं रभमेन वेगेन कल्पितं खंडितं शोकजातं दःखादिकं येन तम्, पापीनीमरक्षयकारकायं पापमेव तिमिरं तस्य क्षयकारः ध्वंसकारी कायः शरीरं यस्य तम् अल्पे तगमलतपः कचले।पलोचम् अल्पेतरं प्रचरम् अमलं तपः तेन कचानां लोपः तदेव लोचम् आलोचं दर्शनं यस्य तम् ॥ २४ ॥

क्षथं-भे निन (या शिष्ठ) की देखें (दर्शनकर्क) फैसे निन (या तियाँ हैं) कि चंद्रमा निनका पनन कर और निग्होंने हैं द का स्क्रामिटामन कंपित करदिया और शोकनान (दुम्मादिक) निर्दोंने दीनदी नष्ट करदिये और पाप कप अंपकार्य क्षय कर नेवारा निनका शार्यद्व और प्रयूप निर्मेट निप्म गिरे हुए पाछ ऐसा है दर्शन निन्हों हा अवस्ता अनुस्तरमें मार्थोका पिना पेपा ही सुद्धि निनकीं (अवस्तु पेस पोर निम्म पुढि स्थित करें कि निम्मी केश तक पिए सार्व पद हार्य के निया है हमें हैं इस्ते करें स्वरूप करा और स्वरूप सुद्धि निनकीं है ।

सान्वय सं॰ टी॰ भाषाटीकासहित । (१९) 🗅 और अनुरंपार तथा विसर्गादिकी गणना चित्रभंगके दिये न

होती है जो नीचे हारबंध चित्रसे प्रगट होता है। हारवंध चित्र ।

ĸŝ 猫 हो। हो। 27 74 खा 77 स श्नाः या 'n श fit Đ: ia शंह हिंग 251 भ्या

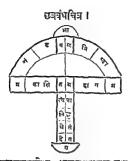
(२०) धाम्भडालंकार-परि०१.

प्रचंडवल निष्काम प्रकाशितमहागम ॥ भावतत्त्वनिधे देव भालमत्राइतं तव ॥ २५ ॥

टीका-हे प्रचंडवल हे निष्काम हे प्रकाशितमहा-गम हे भावतत्त्वनिधे हे देव अन तव भालम् अद्धृत्म् इत्यन्वयः ॥ प्रचंडं वलं यस्य तत्संवोधनं निष्काम निर्गतः कामो यस्मात् प्रकाशितमहागम प्रकाशितः महात् आगमः शास्त्रं येन भावतत्त्वनिधे भावानां समस्तपदार्थानां तत्त्वम् तस्य निधिः तत्संवृद्धो भालं मस्तकं (भालमनाद्भृता इति वा कवित् पाटः तन्न तन्न भा कांतिः अद्भुता अलम् इति)॥ २५॥

अर्थ-हे भवंडबल्युक्त कामरहित हे महत् झाम्बॉके प्रका-शित परनेवाले हे समस्तपदार्थोंक तत्त्वके निधान देव इस संसा-रमें आपका मस्तक अहत्तहै यह खत्रवंच है इसमें बकार वकार

का अभेद है ॥ २५॥



भवकाननमत्तेम भग्नमायातमःप्रभ ॥ विनयात्त्वां स्तुवे वीर विनतित्रदेशेश्वर २६ दीका-दे भवकाननमत्तेभ हे भग्नमायातमःभमे हे बीर हे त्रिदेशेश्वर अहं विनयात त्वां स्तुवे इत्यन्ययः॥ भव एव काननं भवकाननं तत्र मत्तः इभः मातंगः त्रदसंबोधनम् । तमश प्रभा च तमःश्रमे मायायातमः भभे मायातमःश्रमे भग्ने मायातमःश्रमे येन स भग्न मायातमःश्रमे सत्ते वायातमःश्रमे येन स भग्न सायातमःश्रमः तत्त्वंबोधनम् विनतः विद्शेश्वरः य-स्मिन् यत्त्वमीपे तत्संबोधनं विनतः विद्शेश्वर विनयात् मर्मोमायातत्वां स्तुवे स्तुवनं कुवे अहमिति शेषः॥२६॥ अर्थ-हे संसार रूप वनके मतवाल मार्तगरूप हे मापाक अंधकार ओर चमकक नष्टकरने वाले हे इंद्र करके वंदित हे देव (में) विनयपूर्वक आपकी स्तृति करताई यह भी छवनंध चित्र हे इसमें भी चकार वकारका अभेद हे हम छवचंधका विव्र पहले छव रूपमें लिखकर भी दिखानुके हैं इसी भाँत इसे जाता। ॥ २६ ॥

अधीत्य शास्त्राण्यभियोगयोगादभ्यास व-इयार्थपदप्रपंचः॥ तंतं विदित्वा समयं क-वीनां मनःप्रसत्तौ कवितां विद्ध्यात्॥२०॥ दीका-अभ्यासवश्यार्थपदप्रपञ्चः (कविः)शा-

स्त्राणि अधीत्य कवीनां तंतं समयं विदित्वा मनःप्रसत्ती अभियोगयोगात् कवितां विदृध्यात् इत्यन्वयः ॥ अर्थानां पदानां च प्रपंचः अर्थपदप्रपंचः
अभ्यासेन वश्यः अर्थपदप्रपंचः यस्य एवंभूतः कविः
शास्त्राणि व्याकरणकोशकाव्यालंकारादीनि कवीनां
तंतं समयं प्राचीनानां पूर्वोक्तवक्ष्यमाणादिकं सिद्धांतम्
अभियोगयोगात् विलक्षणदुर्शनादियोगात् अथवा
अभिनिवेशवशात् मनःप्रसत्तां मनसः प्रसन्नतायां
कवितां विदृध्यात क्षोकादिरचनां कुर्यात्॥ २७॥

अर्थ-अर्थो और वदोंका वर्षन अन्यागयत होतया है निसरे ऐमा कवि व्याकरण उदारण्वासादि झारोंको वदकर और मार्चान विवर्षोक पूर्वोक निदानोंको जानकर (समझकर) मनके प्रमानाके समय विवरण दक्षेत्र अयुगादिक संयोगम नदनुकर स्यूनिंस शोकादिका स्पना करे॥ २०॥

हितीयपरिच्छेदः।

संस्कृतं प्राकृतं तस्यापश्रंशो भृतभाषि-तम् ॥इति भाषाश्चतस्रोपि यांति काव्य-स्य कायताम् ॥ १ ॥

टीका-संस्कृतं प्राकृतं तस्य अपभंशः भृतभाषितम् इति चतम्रः अपि भाषाः काव्यस्य कायतां यांति इत्य न्त्रयः ॥ काव्यस्य कायतां काव्यांगतां यातीति॥१ ॥

अर्थ-संस्कृत और प्राकृत और उसका अपधंश और प्रतभाषा ये चारी भाषा काव्यका अंग होसक्तींहें इन चारीमें पाव्य रचना हांसकी देश १ ॥

संस्कृतं स्वर्गिणां भाषा शब्दशास्त्रेष्ट नि-श्चिता ॥ प्राकृतं तज्जं तत्तुल्यं देश्या-

दिकमनेकधा ॥ २ ॥

टीका-संस्कृतं शब्दशाह्मेषु निश्चिता स्वर्गिणां भाषा प्राकृतं तज्ञं तत्तुल्यम् अनेकथा देश्यादिकम् इत्यन्त्रयः ॥ शब्दशास्त्रेषु व्याकरणादिषु निश्चिता निश्चितरूपा स्वर्गिणां देवानां भाषा प्राप्टतं प्रकृतेः संस्कृतात् समुद्रतं तथं संस्कृतजं तत्त्वस्यं तद्नुरूपं अनेकथा देश्यादिकं मागधं महाराष्ट्रियम् इत्यादि ॥ २ ॥

अर्थ-ध्यायरणादि शब्दशाग्रसे निधिन अर्थात् नियमस्य संरहत देवताओंकी भाषा है अर्थात् ध्याकरण शाग्यसे संस्कार

(२४) वाभटालंकार-परि० २.

कींद्रई देवताओंकी भाषा संस्कृत कहलाती है और उस संस्कृत-से ही निकटी हुई और उसके तुल्य अनेक देशोंमें अनेक रूपकी माकृत भाषा हुई जैसे मागधी माकृत, महाराष्ट्री माकृत इत्यादि अनेरदेशभेदसे अनेक मकारकी माठत हुई ॥ रे ॥

अपभ्रंशस्तु यच्छुढं तत्तदेशेषु भापितम्॥ यद्भेतरुयते किंचित्तद्भीतिकमिति स्मृतम् ॥ ३ ॥

टीका-यत तत्त्वेशेषु शुद्धं भाषितं तत् अपभंशः। यत किनिय भूतः उच्यते तत् भीतिकम् इति स्पृतम्

इत्यन्तयः ॥ तत्तदेशेषु ययनवर्षमदिषु शुद्धं तत्तद्रीत्या ए। ज्ञादम अपभगः अपभश्यन अधमहिततया पत्यते

ानन इत्यपत्रंभः माध्रभव्यभित्रं अपशब्दे यज्ञादी तःक्रयोन पापंडयसाय (इति शब्दग्तोममहानिधिः) अथवा "यदश्रद्धमप्रध्रंथः" इति पाउतिरं केनिताः ट्रिन तत्र यत अंजुद्धं तत्त्रेशेषु भाषितं यत अपधंसः यया मगुद्रम्थान समंदर इति । भूतः । प्राणिभिः देश-

યોલિસિર્ગિયસ છે હતા છે. છે करों ता रूपर रूपर रक्षांच शुद्र बाला संस्कृतचे निज र दें। जन्ते: है उस जान्यश करत है किम मा श पुनानी है गाहि । उदार प्यार इमारच्या । यमा पाडी स्थापड मानते हैं और

देळा जुन्दे क्रान्त्रेद्ध जा सम्बन्ध माधनमे शिवद्यन अधूद आधा हर्ने के कार्रा अर्थन खता हम जयनेश कर गाँद कींग समुद्रपा इस्त्रज्ञ समहर) होते ही। बहा वह आवी। सन्था व्यक्तीयाव भाषा बोहने रुगे उसे भीतिक कहते हैं अथवा भूत (देवयोति) रासस यस पिशाचादिका भाषा भूतभाषा कहराती है ॥ ३ ॥

छंदोनिवद्धमच्छंद इति तहाब्बयं हिथा ॥ पद्यमाद्यं तदन्यच्च गद्यं मिश्रं च तष्यमुशः॥

टीका-छंदोनियद्धम् अच्छंदः इति तत् द्विधा बाङ्म यं (तत्र) आद्यं पुत्रं तद्दन्यच गद्यं तद्दमं मिश्रम् इत्य-न्वयः ॥ अच्छंदः छंदोरिहेतं बाङ्मयं काव्यं भाषा-मात्रं वा आद्यं छंदोनियद्यं पूर्वं तद्दन्यच छंदोरिहेतं गद्यं तद्द्वयं पद्मगद्यात्मकं मिश्रम्॥ ४॥

अर्प-छंदबद्ध तथा छंदरिहत इस प्रकार काय्य (या आषा मात्र) के दो भेद हैं उनमें से छंदबद्ध (क्षेकबद्ध) को प्रय और छंदरिहतको गय कहतेहें तथा निसमें गय प्रय दोनों हैं। उसको निभ (मिभित) कहते हैं॥ ४॥

अदुष्टमेव तत्कीत्त्यें स्वर्गसोपानपंक्तये ॥ परिहार्यानतो दोपाँस्तानेवादी प्रचक्ष्महे ॥ ॥ ५ ॥ अनर्थकं श्रृतिकटु व्याहतायम लक्षणम् ॥ स्वसंकेतप्रक्रसार्थमप्रसिद्धमस म्मतम् ॥ ६ ॥ ग्राम्यं यच प्रजायेत पदं तन्न प्रयुज्यते॥कचिदिष्टा च विद्वद्भिरेपा मप्यपदोषता ॥ ७ ॥ (२६)

टीका-तत् अदुष्टम् एव कीर्त्यं स्वर्गसोपानपंक्तये (भवति इति शेषः) अतः तान् परिहाय्यांन् दोषात् आदो एव प्रचक्ष्महे इत्यन्वयः ॥ तत् काव्यम् अदुष्टं दोषरहितं कीर्त्यं इह यशसे परत्र च स्वर्गसोपानपंक्तये परिहाय्यांन् परित्याज्यान् ॥ ६ ॥ अनर्थकम् इत्यादि पदेहोंपाणां गणना एव कथिता तेषां पार्थक्येन लक्ष णानि सोदाहरणानि चामे वक्ष्यंते किवत् विद्वद्विः एषां दोषाणाम् अपदोषता निवोषता च इष्टा तजाह "इतिहासपुराणादे। देवतानां नुतो स्तुती शब्दालंकारके चापं दोषाणाम् यदोषता ॥ ६ ॥ ७ ॥

अर्थ-वह गमपमात्मक काव्य दोषोस रहित रचारानिसं संसारमें कीर्ति दता है और परलोकमें स्वर्गमासिका हेतु होताहि हसमें जो त्याग्य दोष है उन्हींको पहले वर्णन करते हैं।।।।।वे दोष हम,म कार्सि है अनर्थक, २ श्वतिकटुक, १ ब्याहतार्थ, ४ अल्लाप, ५ स्वर्गकतम्ब्रुं, ५ अल्लाप, ५ स्वर्गकतम्ब्रुं, ५ अल्लाप, ५ स्वर्गकतम्ब्रुं, ५ अल्लाप, ५ स्वर्गकतम्ब्रुं, ५ अल्लाप, ७ अल्लाप, ५ स्वर्गकतम्ब्रुं, ५ आल्लाप, ७ अल्लाप, १ स्वर्गकति निर्दोषता मानी है यह इनकी निर्दोषता मानी है यह समकार है कि हिन्दाम प्रशामादिक और देवताओं की स्वृति तथा नमन तथा निर्वादिक सन्दार्थकार और आर्थ (अल्लामोत्याप स्वर्गका स्वर्गक स्वर्गका स्वर्गक स्वर्गका स्वर्गक स्वर्गका स्वर्गक स्वर्यक स्वर्यक स्वर्यक स्वर्गक स्वर्गक स्वर्गक स्वर्गक स्वर्गक स्वर्गक स्वर्गक स्वर्गक स्वर्गक

अनर्थक ।

प्रस्तुतेऽतुपयुक्तं यत्तदनर्थकमुच्यते ॥ यथा विनायकं वेंद्रे ठंवीदरमहं हि तु॥८॥

टीका-यत् प्रस्तुने अनुपयुक्तंतत् अनर्थकम् डच्यते यथा लंबोदरं हि तु बिनायकम् अहं वेदे हत्यन्वयः ॥ प्रस्तुते स्तयनकृते अनुपयुक्तं स्तुतिविरुद्धं निरर्थकम् योग्यं वा-तत अनर्थकं नाम दीपः यथा विनाय-कस्य स्तुतिविषये लंबोद्दामिति विरोपेणं स्तुतिविरुद्धं तथा च हि तु पदद्वयं निरर्थकम् ॥ ८ ॥

अर्थ-जी स्त्रुतिमें स्तृतिंक चिरुद्ध (निदास्त्रुवक) पद आगाथे अवद्या निरम्क पद आजाथे तो उसे "अन्यक्" दें प कहते हैं जैसे में छंदे पटवाले गणेशाणिको चेदना करता है इसमें गणेश-जीके चेदना करनेमें छंदे पेटवाले देसा विशेषण स्तृतिके विरुद्ध है तथा हि और तु अन्यय निर्देशक हैं॥ ८॥

(उदाहरण) दोहा-अनुपयुक्त जो स्तुतिविषे, होत अनर्पक सोह । नमन कहं गणनायको छंबपेटयुत ओड़ ॥

श्रविभट्टक ।

निष्ठराक्षरमत्यंतं बुधैः श्वतिकदु स्मृतम् ॥ एकाग्रमनसा मन्ये स्रष्ट्रेयं निर्मिता यथा९॥

टीका-अत्यंतं निषुराक्षरं बुधैः श्रुतिकटु स्मृतं यथा स्रष्टा स्यमेकाममनसां निर्मिता (अइम् इति) मन्ये



यथा हे भूपाल त्वं भूतलोपकृती भूतलस्य उपकृती उपकार रतः एव अत्र भूतलोपकृती पदे भूतानां प्राणिनां लोपः नाशः भूतलोपः तस्य कृती करणे रतः इति इष्टार्थस्य वाधकार्थातस्दर्शनात् व्याहतार्थे भवति ॥ ९०॥

अर्थ-जहां चांछितार्थसे विपरीत हुसरा अर्थ भी मणाशित हो तो हमें प्याइतार्थ द्वांच बहते हैं जैसे हे भूपात तुम भूतलीपकृतिमें रत हो अपात भृतलका रपकृति (टपकार) में रत हो यहां भृतलोपकृति हम पर्यों भृतलकी उपकृतिक सिवाय भूते लोच कृति अपात माणियांचा नाश करना पसा विरुद्ध अर्थ भी मक्श-शित होता है हमसे प्याइतार्थ दोच हुया ॥ १०॥

(टदाइरण) दोहा-पाहतार्थ गर्दै इष्टका, वापक अर्थ

ख्याय । भूतळोपकारी सुपति तुम सबते अधिकाय ॥

अरक्षण ।

शन्दशास्त्रविरुद्धं यत्तदलक्षणसुच्यते ॥ मानिनीमानदलनो ययदुर्विजयत्यसी १९

दीका—यत् शब्दशास्त्रविरुद्धं तत् अलक्षणम् उच्यते यथा मानिनीमानदलनः असी इंदुः विजयति इत्य-न्वयः ॥ शब्दशास्त्रविरुद्धं न्याकरण विरुद्धं मानिनी मानदलनः माननीनां मानवतीनां सुंदरीणां मानस्य दलनः विध्वंसकः इंदुर्श्वद्रमाः अत्र विजयति इति वि प्रवीत जयते धातोरात्मनेषदानुशासनात् परस्मेषद् प्रयागो न्याकरणविरुद्धस्तस्मादलक्षणम् ॥ १९ ॥ इत्यन्वयः ॥ निप्तुरं कठोरं यद्सरं निप्तुरासरं अथवा अत्यंतं निष्ठुरम् असरं यत्र तत् श्वतिकट्ट कर्णकटुकं श्रवणकटुकं वा एकाश्रमनसा एकाश्रण मनसा सष्ट्रा विधात्रा इयं सुंदरी यत्र अत्यंतं निष्ठुरासरं तत् श्वति कटुकं नाम दूषणं यथा इयं सुंदरी सप्ट्रा एकाश्रमनसा निर्मिता अत्र सप्ट्रा अत्यंतं निष्ठुरासरं (एतर्षणं वि-शेषतया शृंगाररसे करुणारसे च वर्जनीयं न तु वीररसे रीद्ररसे च ॥ ९ ॥

अर्थ-जहाँ अत्यंत कटेर क़न्द (शृंगारादिके वर्णनेंमें) हैं। उसे विद्वान भुतिकड या कर्णकटुक दोष कहतेहैं जैसे यह सुंदरी 'स्रष्टा' अर्थात विधातान एकाम्रचित्त होकर ही बनाईहै में ऐसा जानताहूं इसमें रुष्टा क़न्द अत्यंत कटोर है।। ९॥ (उदाहरण दोहा) अति कटोर जहें वर्ण हो, कर्णकटुक तिहि

नान । मुक्तासे माणिक मई दाष्ट्रा चार्चे पान ॥ यह भृतिकदुक दीप श्रृंगार रसेम इपित है बीररीद्वादिमें हपित नहीं ।

ञ्याहतार्थं यदिष्टार्थंबाधकार्थांतराश्रयम् ॥ रतस्त्रमेव भूपालं भूतलोपकृतो यथा १०

टीका--यत् इष्टार्थनाधकार्थातराश्रयम् (तत्) व्याहतार्थम् । यथा हे भ्रुपाल त्वं भ्रुतलोपकृतो एव रतः इत्यन्वयः ॥ इष्टार्थस्य बांछितार्थस्य यत् वाध-कार्थातरम् तदाश्रयम् यत्र बांछितार्थस्य वाधकम् अर्थान्तराश्रयं दृश्यते तत्त व्याहतार्थं दूपणं भवति यथा है भूपाल त्वं भूतलोपकृती भूतलस्य उपकृती उपकार रतः एव अत्र भूतलोपकृती पदे भूतानां प्राणिनां लोपः नाशः भूतलोपः तस्य कृती करणे रतः इति इष्टार्थस्य वाधकार्थातम्दर्शनात् व्याहतार्थे भवति ॥ १०॥

भविति ॥ १० ॥
भविति ॥ १० ॥
भवित ॥ भवितायसे विषयीत इसरा अर्थ भी मकाशित हो
ता दर्स प्याहतार्थ दोष कहते हैं जैसे हे भूषाल तुम भृतलीपकृतिमे
रत हो अर्थात भृतल्को उपकृति (उपकार) में रत ही यही
भृतलीपकृति इस पदमें भृतल्की उपकृतिके सियाय भूते लोग

शित होता है इससे प्याहतार्थ दोष हुवा ॥ १० ॥ (उदाहरण) दोहा-प्याहतार्थ गहें रहणा, यापक अर्थ स्टाचाप । भूतलीपकारी नृपति तुम सक्तें अधिकाम ॥

अस्थित । भूतव्यक्तिस्य र्यात स्थाप

शब्दशास्त्रविरुद्धं यत्त्रद्रुश्यमुच्यते॥ मानिनीमानद्रुनो ययदुविजयस्यसा ११

टीका—यत् शब्दशास्त्रविरुद्धं तत् अलक्षणम् उच्यते यथा मानिनीमानद्वनः असी हंदुः विजयति इत्य-न्वयः ॥ शब्दशास्त्रविरुद्धं व्याकरण विरुद्धं मानिनी मानद्वनः माननीनौं मानवर्तानां सुंदरीणौं मानस्य दव्यनः विश्वंसकः इंदुअंद्रमाः अत्र विजयति इति वि प्रवीत् जयते धातोशत्मनेषदानुशासनात् परस्मेषद् प्रयोगे व्याकरणविरुद्धस्तस्मादळसणम् ॥ १९ ॥

असंमत ।

शक्तमप्यर्थमाख्यातुं यन्न सर्वत्र संमतम्॥ असंमतं तमोंभोजं क्षालयंत्यंशवो रवेः१४

टीका-अर्थम् आख्यातुं शक्तमपि यत् सर्वत्र न संमतं (तत्) असंमतम् (यथा) रवेः अंशवः तमों-भोजं क्षालयंति इत्यन्वयः ॥ तमोंभोजं तमसः अंभोजं पंकम् अथवा तमः एव अंभोजम् अंशवः किरणाः रवेः अंशवः तमोंभोजं क्षालयंति इत्यव अंभोजशन्दः अंभसोजातत्वात् कमलकर्दमादी वर्तते अपि परं च योगहृद्धत्वन कमले एव स्थितः नतु पंकादा अत्र-पंकार्थे महणत्वाद्संमतं नाम दूषणम् ॥ ३८ ॥

अपं-जो अपंक कहनेमें समयं भी हो पर यह पद सपंत्र संमत नहीं हो तो उसे असंमत दोग कहते हैं जैसे सूर्यको किरण' तमोंभोन अपांत अंपकार रूप कीचड़को थो (साफकर) सक्तीं अंभोन पदका अर्थ जलसे पैदा होने वाले कमल कीचड़ शीवाल आदि सभी होसकेंद्र परंतु योगस्किय करक अभोग पदका अर्थ कमल ही सुल्पतासे होताहै कीचड़ आदि नहीं होते और यहां अंभोन पदका अर्थ कीचड़ है इसीसे अगंमत देव इसा 11 रुप ॥

(उदाहरण) देशहा-योगरुडि पदमें जहाँ, अर्थ योगयशहोप! दोष जसंमत सो पथा, ओढ ॲंगररार सोष ॥

प्रमुगपदायहो पर इस स्टी आदि शान्दिक शक्तियोंका पर्णन परते हैं वह शान्दिक शक्ति संक्षेपमें तीन प्रचारकी होतीहै (१) राहे (२) याँगिक (३) योगरूडि देखो साहित्यसार स्रोक "सापुनिर्माविधारुद्धियोगतन्मिश्रभेदतः । समुदायेशशक्तियां सेप रूटिपंचाशियः १ योगो चयनमात्रस्य शक्तिर्यद्वत्मबोधकः सभयोः शंकरी योगरुडिः नारायणी यथा रें साहित्य शास्त्रके अनुसार शान्दिक शक्ति ६ मकारकी होतीहै जैसे रूडि, यीगिक, तन्मिश्र अर्थात् पोगरुडि टनमेंसे नी धादमत्यपादिके आश्रय न होकर फेवल समदायके आध्यसे अर्थ प्रकाश कर जैसे शिय अथवा भाषामें गाडी जो गाडी हुई न होकर उसके विपरीत चलने पाली होकर गादी कहलाती है इसे रूडि कहतेहैं ॥ और जो अयपय (पर्देकि दुकडे अथवा पानुमत्यपादि) के आश्रयसे अर्थ मकाहा करे उसे योग अर्थात योगिक कहतेहैं जैसे प्रदेशिक या पाउक पदान बाला अर्थात जो पटाताही वही पाउक कहलाता है ॥ तीसरे योगहडि उसे फहतेर्ह जिसमें दोनीके आभयसे अर्थ मकाश हो अर्थात द्वकडोंसे या पात जल्ययादिसे अर्थ मकाश होकर भी दक ही पदार्थमें नियत रहे जैसे नारायण अथवा अंभीत अंभीतका अर्थ जलसे पैदा होने वाले कमल कीचड शियाल आदि पर्ड हो सकेंद्रें ती भी जलसे पैदा होने पाले एक मात्र कमल ही को मुख्यतासे अंभोन बहते हैं कीचड़ आदिकी अभीन नहीं यहतेहैं ॥ १४॥

यद्यत्रातुचितं तिहि तत्र ग्राम्यं स्पृतं यथा॥ छादयिता सुरान्युष्पैः पुरो धान्यं क्षिपाम्यहम् ॥ १५ ॥

टीका-यत् यत्र अनुचितं तत् तत्र त्राम्यं स्मृतम् यथा अहम् सुरान् पुष्पः छादयित्वा पुरः धान्यं शिपामि इत्यन्वयः ॥ छादियत्वा संष्ठ्य पुरः अग्रतः धान्यं शिपामि अक्षतं समर्पयामि अत्र पुप्पः छादः यित्वा धान्यं शिपामि च ग्राम्यं पदम् ॥ १५.१॥

अर्थ-जहां जो कोई अनुचित अयुक्त मामीण पद हो तो इस माम्पपद (माम्पपद मयुक्ति नाम) दोष कहतेई जिसे भें देवताओंको पुत्यांसे इक्कर उनके जाग धान्य बंतरताई यहां पुत्योंसे प्रना करनेको जगह उककर और अक्षत समर्पण पर-नेकी जगह धान्य बस्तरना माम्य पद है इसीसे माम्पपदमयुक्ति नाम दुषण हुषा ॥ १५॥

(उदाहरण)दोहा—नागर कवि जो ग्राम्यपद, युक्त करे नार्हे ठीक । जिमि विशाल प्रासादमें न लघु आंवर्रानीक ॥ अथ वाक्यदोप ।

पदात्मकलाहाक्यस्य तद्दोपाः संतिशा व्हिकाः ॥ अपदम्थाम्त ये वाक्यदोपा

व्दिकाः ॥ अपदस्थास्तु ये वाक्यदोपा । स्तान्ब्रूमहेऽधुना ॥ १६ ॥

टीका-चाक्यस्य पदात्मकत्वात् तद्दोपाः शाब्दि-काः संति तु अपदस्था ये वाक्यदोपाः तान् अधुना ब्रूमहे इत्यन्वयः ॥ तद्दोपाः चक्तदोपाः तद्दोपाः संति शाब्दिका इत्यत्र तद्दोपाः संति तत्र हि इति वा पाठां-तरः अपदस्थाः पदाश्रयेण न स्थिताः इत्यर्थः ॥१६॥

अर्थ-चाक्यके पर्दोमें होनेसे जो दोष पीछे कहे गर्यहें के शान्दिक अर्थात् शब्ददोष अयवा पददोष हैं और जो पदमात्रके आभप नहीं हीकर बारपके आश्रप दीप होतेहैं उन्हें अब अगाई। वर्णन फरते हैं ॥ १६॥

खंडितं व्यस्तसंबंधमसंमितमपक्रमम् ॥ छंदोरीतियतिश्रष्टं दुष्टवाक्यमसिकः यम् ॥ १७ ॥

टीका—खंडितम् इत्यादि पद्दैः वाक्यदोपाणां गणना एव कृता । स्फुटान्वयः । छंदोरोतियतिश्रष्टम् इति छंदोश्रप्टं रीतिश्रप्टं यतिश्रप्टम् इति दोपत्रयम् ॥ १७ ॥

अर्थ-चाक्यदोष इस मवारसेंहें कि १ रांडित, २ व्यरतसंबंध, १ असंभित, ४ अपनम, ५ छंदोक्षष्ट, ६रीतिश्रष्ट, ७यतिष्ठह, ८ दुष्टवाक्य, अर्थात दुषितवाक्य, ९ असत्वित्या इनके लक्षण और दे६ हरण यपाकम आगाडी कहते हैं ॥ १७ ॥

खंडितदोप ।

वाक्यान्तरप्रवेशेन विच्छिन्नं खंडितं मृतम् । यथा पातु सदा स्वामी यर्मिद्रः,स्तोति वो जिनः॥ १८॥

टीका-चाक्यान्तरप्रवेशेन (यत्) विच्छित्रं (तत्) खंडितं मतम् यथा यम् इंद्रस्तीति (स) जिनः स्वामी सदा वः पातु इत्यन्वयः ॥ अत्र जिनः स्वामी सदा वः पातु इति वाक्यं यमिदः स्तीति इति वाक्यांतरप्रवे-शेन विच्छित्रं भवति अतः खंडितं नाम दोपः॥ १८॥ (34) वाग्भटार्रकार-परि० २.

होजाये ती उसे खंडित दोष कहतेहैं जैसे वह जिनस्वामी, निनकी इन्द्र स्तुति करता है सदा तुम्हारी रक्षा करो यहाँ वह जिन स्वामी सदा तुम्हारी रक्षा करों के बीचमें जिनकी इन्द स्तुति करता है वाक्यांतर आजानेस खंडित नाम वाक्यदीप

अर्थ-नो चाक्य रूसरे वाक्यांतरके बीचर्म आजाने से विच्छित्र

इवा ॥ १८॥ (उदाहरण) दोहा-चाक्यांतरसे वाक्यमें, खंडित दें।प षवान । जिन जिनकी स्तुति सुर करें करो सदा कल्पान ॥ व्यस्तसंबंध् ।

संबंधिपददूरत्वे व्यस्तसंबंधमुच्यते ॥ यथाद्यः संपदं ज्ञाता देयात्तत्त्वानि वीऽ हिताम् ॥ १९ ॥

टीका-पूर्वार्द्धस्यान्वयः सरलः ॥ यथा अर्हता । माद्यः तत्त्वानि ज्ञाता वः संपदं देयात इत्यत्तराईस्या न्वयः ॥ अत्र अर्हताम् आद्य इत्यादिसंबंधिपददूर्त्वे

सति व्यस्तसंबंधनामकं दूपणं भवति ॥ १९॥ अर्थ-जहां सर्वधिपद दूर होताहै उसे व्यस्तसंबंध नामक देाप कहते हैं जैसे अईतोंमें तत्त्वोंकी जानने वाले ऋपम-देवनी आपको संपत्ति दो यहाँ आदाका संबंधिपद अर्रताम् हर

होनेसे व्यस्तर्सर्वथ नामक वाक्यदेश हुवा ॥ १९ ॥ (टदाइरण) दोहा-संबंधी पद दूरते, होत व्यस्तसंबंध ।

भवको दीनद्रपाल मधु कब काटोंगे परंघ प्र

शब्दार्थें यत्र न तुलाविधृताविव सं-मतो । तदसंमितमित्याहुर्वाक्यं वाक्य-विदो यथा ॥ २० ॥ मानसौकः पतद्यान देवासनविलोचनः । तमोरिप्रविपक्षारि-

प्रियां दिशत वो जिनः॥ २१॥ टीका-यत्र शब्दार्थी तुलाविधृती इव न संमिती तत् वाक्यं वाक्यविदः असंमितम् इति आहुः इत्यन्वयः ॥

तुलाविधृतौ तुलायां संस्थापिती इव यथा पदस्य अभिमेण सह संबंधः ॥ २० ॥ यथा मानसीकः

पतद्यानदेवासमविलोचनः जिनः तमोरिपुविपक्षारि-प्रियां वः दिशतः इत्यन्वयः ॥ मानसीकः पतद्यान-देवासनविलोचनः मानसं नामकं सरः तदेव ओकः

स्थानं यस्य स मानसीका इंसः मानसीकाः वासी पतत् पर्शा च मानसीकः पतत् स एव यानं यस्य स मानसीकःपतद्यानः स एव देवः मानसीकःपतद्यान देवः ब्रह्मा तस्य आसनं कमलं तद्भव लोचनं यस्य स

मानसीकःपतद्यानदेवासनविलोचनः तमोरिप्रविप-शारित्रियां तमसो रिपुः तमोरिपुः सूर्यः तस्य विपशो राहुः तस्य अरिः विष्णुः तस्य विया लक्ष्मीः तांतमो-रिपुविपक्षारिष्रियाम्। अत्र शब्दास्तु बहवः अर्थः स्वरूप एव अतः न शब्दार्थयोः तुलाविधृतयोरिव माने साम्यं एतस्मादेव असंमितनामकं वाक्यद्रपणम् ॥ २९ ॥

अर्थ-जहां अन्द और अर्थ तराजूम तुछ जेसे ठांक नहीं हों तो पाक्य विदान पंडित उसे असीमत दोष कहते हैं (बार्क असर स्वस्य होकर अर्थ अधिक होना तो श्रेष्ठ होताह परंतु असर अधिक होकर अर्थ स्वस्य होना तो श्रेष्ठ होताह परंतु असर अधिक होकर अर्थ स्वस्य होना हूपित है)॥ २०॥ जैसे जिन भगवान आपको तमोरिपुविषकारिपिया अर्थात हस्मी दो इसमें तमोरिपुविषकारिपियाक अर्थ छस्मी इसमकार इवा वित्त अध्यक्ष हमका रिपु सूर्य सुर्थका विपक्ष राहु राहुका और शृद्ध विप्णुविष्णुको प्रिया एक्सी हुई इसी मकार मानसीकः पता विद्या विद्या कर्य जिन होकर विदेशपण हुवा कि मानस-मानसरीवर है ओक स्थान जिस पक्षीका सो हंस वह इंस है बाहुन जिस देवका सो बहा। उस बहाका आसन क्रमल, फ्रमल जैसे हैं विद्योचन जेत निक्क ऐसे जिन भगवान यहां मानसीकः पत्यान देवासनिक्छोवन और क्योरिपुविषसारिपिया इनपदों असर वहुतर्ह अर्थ हेश कर्यना करनेसे स्वस्य विकलते इससे असंमित दोप हुवा॥ २१॥

असंमित दोप हुना ॥ २१ ॥ (असंमितलक्षण)दोहा~ज्ञब्द अर्थ जहँ बाक्यमें, तुर्ल न होय

समान। शब्द बहुत अरु अर्थ छषु ताहि असंमित जान॥ (टदाहरण-अन्यकविका) देहहा-अनासहेली तास रिष्ठ

तानननी भरतार । ताक सुतक मित्रका भनिये बारम्बार ॥

अपक्रम् ।

अपकमं भवेद्यत्र प्रसिद्धकमलंघनम् ॥ यथा भुक्ता कृतस्नानो गुरून्देवांश्च वं-दत्ते ॥ २२ ॥ रीया-चन्न प्रसिद्धमारंचनम् भनेत (तत्)अप् समम् यथा भुका कृतस्तानः गुरुन च देवात् वेदते स्वन्ययः ॥ प्रसिद्धस्य समस्य रुपनं प्रसिद्धकारं-पनम् अन्न भुक्ता सानकरणं तत्पश्चात गुरुणां देवानी च वेदनम् इति न प्रसिद्धकमः किंतु सानानंतरं गुरुदेवा दीनां वेदनं तत्पश्चात भोजनमिति प्रसिद्धः क्रमः तर्छं पनादेव अपक्रमं नाम कृषणम् ॥ २२ ॥

अपे-नारी वाचयंभ प्रसिद्ध कामका द्रष्टंपन हो तमे अपक्रम पानपदोष महोदं नैसे किमोने भोननकरके व्यानकिया और फिर युट और देपताओं वो बंदना वसी वहीं प्रसिद्ध क्रमका खंपन होनेमें अपक्रम वाचयदोष हुवा मसिद्धक्रम यह है कि पहले व्यान करना किर मुहदेशदियों बंदना करना फिर भोगन परना परंतु यहाँ पहले भोगन फिर व्यान फिर मुद्द देपादियंदना होनेस ही अपक्रम होनावा ॥ २२ ॥

(उदाइरणदीहा)कम मिसद छंपन किये, होत अपक्रम जाय। तिसक किये न्हाये पिया पीडे पर्टेंग विद्याय ॥

छंदोभर ।

छंदःशास्त्रविरुद्धं यच्छंदोभ्रष्टं हि तद्यथा ॥ स जयति जिनपतिः पर्व्रह्ममहानिधिः २३

टीका-यत् छंदःशास्त्रविरुद्धं तत् छंदोभएं हि यथा स परव्रह्म महानिधिः जिनपतिः जयति इत्य-न्वयः ॥ छंदःशास्त्रेण विरुद्धं छंदःशास्त्रविरुद्धं परं चे तत् त्रह्म च परवह्म परमात्मा स एव महानिधिः परव्रह्ममहानिधिः छंद्रोभ्रष्टत्वं पद्मवाक्ये छंद्रोवद्धे एव संभवति यथा स जयति जिनपतिः अत्र छोके पष्टं गुरु ज्ञेयमित्यनुष्टुष्छंदोलक्षणवेपरीत्यात् छंद्रोभष्ट त्वमेव ॥ २३॥

अर्थ-नो प्रधानमक बाक्य छंदशास्त्रसे विरुद्ध हो। इसे छंदी-भ्रष्ट कहतेंद्व जैसे य प्रश्नझ महानिधि निनवति जयको मात हो। यहां स जयति निनवति अनुषुषु श्लोकका पद है। ऑह अनुषुष् के स्क्षणोंसे विरुद्धहें अनुषुष्के स्क्षण में हैं कि "श्लोक पूर्व गुरु केयं सर्वज स्ट्रप् पंजमम क्रायादि॥ २३॥

(उदाहरण) दोहा-छंदोक्षष्ट नो पर्यमें,छंदरीति वितरीत। वांना कंतर छुप जिन, सभीको सतावे शीत ॥ दीदेक प्रयम और तीतरे नरणमें १३ माझाहोती हैं और दूसरे चीथे पदमें ११ मात्रा पदी चीयेंसे मात्रा चढनेंते छंदोक्षष्ट हुवा ॥

ा बरनस छदाधष्ट हु

रीतिभर ।

रीतिश्रष्टमिनर्वाहो यत्र रीतेर्भवेद्यथा ॥ जिनो जयति स श्रीमानिंद्राद्यमरयं दितः॥ २२॥

टीका-यत्र गतिः अनिवाही भनेत् (तन्) गीति अष्टम यथा स इंद्रायमस्वेदिनः श्रीमान् जिनः जपति इन्यन्त्रयः॥ इंद्रायमस्वेदिनः इंद्रादिभिः अमेरः देवः वंदिनः यत्र गाडी वदभीत्यादिगतीना पूर्वोपस्तया निर्धारो न भेवत तदा गोनिभएं वाहुल्येन असमस्ता-नी पदानी प्रयोगी यदुर्भी गीनः तथा च समामतारु-रुपतथा पद्मयोगी गाँडी गिनेः। तथा चीक्तं साहित्य-दुर्पणे "भाषुपुर्व्यज्ञक्षणं रूचना लाल्तातिस्का॥अव्-तिरुपयुत्तियां वदुर्भी गीनिरुच्यते १ ओजःप्रकारिक्षणं-धंपआरुपरः पुनः॥ समास्वद्रुला गाँडी गीनिरुक्तः मनी पिभः॥ २॥"हान अबोश्वरूणं प्रथमपदे वदुर्भी गीनेः दिवीये गाँडी दृति शीतिविग्राष्ट्रांतिभएम् ॥२४॥

भूभ-गार्टी भीटी विदर्भ हिन्दी रितारी शार्वार निर्माह नहीं हो तो उसे गीतिश्रष्ट कर्द्भ होने से हन्द्रादि देवताओं करके पंदित भीमान जिन भगपान जयको मानहीं । यहोडदाहरण रूप रूपगर्थ मध्यम पदमें पिद्भी शीत मतीत होतीह नेतर हारों गीडी हससे आपोशीत एक शीतिश निर्माह होतीह नेतर होती स्वीत्र देंप हुए।। जिसमें पिद्रेश कर समामस्रतित पदींगा विशेष भयाग होताहै यह शीति पद्भी कहलातीह और नहीं विशेष प्रमासात पदींगा अधिक प्रयोग होताह वह गाँडी शीति होती ह (भाषाभें हस मकारकी शीतिया मतीत नहीं होती हससे उदाहरण नहीं दिया)। स्था

यतिभट ।

पदांतिवरतिः प्रोक्तं यतिश्रष्टं चुधैर्यथा ॥ नमस्तस्मे जगत्स्नामिनं सदा नमयेऽ इते ॥२५॥ (88)

टीका--पदांतर्विरतिः बुधैः यतिश्रष्टं प्रोक्त यथा तस्मै जगत्स्वामिने अईते नेमये सदा नमः इत्यन्वयः॥ पदस्य विभक्तयंतस्य अंतः मध्ये विरतिः विच्छेदः यथा जगत्स्वामिने अईते नमः अत्र जगत्स्वामिने विभक्तयंतपदमध्ये जगत्स्वामि इत्यात्मके स्थाने पूर्व स्य पदस्य समातित्वात् विरतिरेव एतस्मात् यतिश्रष्टं नाम दूपणम् ॥ २५॥

अर्थ-जहां पदकं बीचमें बिराम अर्थात तोड़ (छंदका विभाम) आजाब तो उसे यतिश्रष्ट कहतेंई जैसे व जो जगतके स्वामी एउम नेमिनाय हें उनको प्रणाम हो यहांपर स्वामिन पदकं बीचमें पहला पद समाप्त होनेसे केयल ने टूटकर अगले पदमें चला गया और बीचमेंसे पद टूटमया इससे यतिश्रष्ट हुवा ॥ २५॥

(उदाहरण) दोहा-यातिश्रष्टमं होतहै, पदके बीच विराम । जैसे रे नर जाय गं-गा तट अज हारिनाम ॥

असत्किया ।

कियापदविद्यानं यत्त्तदसिकयमुच्यते । यथा सरस्वतीं पुष्पः श्रीखंडेर्घुमृणेः स्तवेः ॥ २६ ॥

टीका-यत् क्रियापद्विद्दीनं तत् असत्क्रियम् उच्य-ते । यथा पुष्पैः श्रीखंडिः घुमुणैः स्तवः सरस्वर्ती (अर्च-यामीति) शेषेणान्त्रयः ॥ क्रियापद्विद्दीनमित्यत्र सान्यय भे॰ टी॰भाषाटीकासहित । (४१) मविक्रियापदहीनम् इति ना पाठांतरः असत्क्रियमसती निषयमाना किया यत्र श्रीखंडः चंदनः धुरुणेः कुंकुरीः

अत्र पूज्यामि इत्यादि कियापदाभावात् असिक्तयं नाम पूपणम् ॥ २६ ॥ कपं-नादां (कियासाप्य वावयंगं) कियापद नहीं हो तो उसे अमिक्य दोप कहते हैं पुष्पोंसे चंदनसे किसासे और स्वीत्स्य

गरायतीनो इस इतने पारयमें थोई क्रियापद नहीं होनेसे अस-किय दोंप हुचा। तथा इसमें पत्रपामि अर्थात पत्रन करूँ इस क्रियाया विषे विना अर्थ नहीं होना इसीसे इस अनुक्त क्रियाका उपयोग होनेसे अर्थ हुचा॥ २६॥ (उदाहरण) दोहा-क्रिया न हो नहें पायमें,ताहि असक्रिय

(टदाहरण) दोहा-किया न हो नहें वाक्यमें,ताहि असक्किय नान । गंथासत फल विमल जल, पुष्पोंसे भगवान ॥

दृषितवाश्य ।

देशकालागमावस्थाद्रच्यादिषु विरोधिनम्। काञ्चेप्वर्थं न वभीयाद्विशिष्टं कारणं विना ॥ २७ ॥

दीका-विशिष्टं कारणं विना देशकालागमावस्था इच्यादिषु विरोधिनम् अर्थं काव्येषु न वभीयात् इत्य-न्वयः ॥ देशविरोधिनं कालविरोधिनमागमविरोधिनं मवस्याविरोधिनं द्रव्यादिविरोधिनं च अर्थमितिभावः आदिशब्देन गुणक्रियाजात्यादीनां महणमेषु विष-येषु विरोधिनं विरुद्धतया प्रतिभासमानं विशिष्टं कारणं

विशेषकारणमसंगत्याद्यलंकाररूपकं विनेत्यर्थः । यदा देशकालादिविरोधिनं वधीयात् तदा दृषितं वाक्यं भवतीति फलितार्थः ॥ २७ ॥

अयं-किसी विशेष कारणके विना देशके विरुद्ध फालफे विरुद्ध आगम (ज्ञाम्य) के विरुद्ध अवस्थाके विरुद्ध तथा द्रश्यादिके विरुद्ध अपेकी योजना करनी काव्यमें उचित नहीं, आदि शब्दसे गुणके विरुद्ध जातिके विरुद्ध इन्यादिकी योजना भी नहीं करनी चाहिये (विशेष कारणसे मयोजन कोड़ें नियत कारण अथवा असंगीत आदि अलंकार इन्यादि हैं अर्थात् कोई विशेष कारण या अर्राः गति आदि अलेकारोंमें विरुद्ध अर्थ की योगना होसकींहै अन्यत्र नहीं) (और मदि कोई विशेष कारण विना देश कालादिक पिरुद्ध अर्थको योजना करे तो यह द्वित बाक्य होताहै इसका द्वाहरण अगाही खिनते हैं ॥ २७॥

प्रवेशे चैत्रस्य स्फुटकुटजराजिस्मित दिशि प्रचंडे मार्तडे हिमकणसमानोप्म महिम । जलकोडायातं महसरसि वाल हिपकलं मदेनांधं विध्यंत्यसमशरपातेः प्रशमिनः॥ २८॥

ं टीका-प्रशमिनः मदेन अंधं बालदिपक्लम् अर ममशरपतिः विध्यति कीदशम् वालिवकलं मध-मग्म जलकीडायातम कदा चेत्रस्य भारेश किश्ते चैत्रस्य प्रदेशे स्पृटकुटजग्जिस्मिनादिशि।गुनः कमिन

दिगकणसमानोप्पमहिस मार्तंड प्रचंडे सित इत्य-न्ययः ॥ चेत्रस्य प्रवेशे वसंतर्तो स्पुटा विकसिता छटजानां गिरिमहिकानां राजिः पंक्तिः स्पुटकुटजरा-जिभ्यः स्मिता दिशः यत्र तस्मिन् हिमस्य कणाः

विद्दः तैः समानानि ज्ञष्ममहांसि वण्णतेजांसि यस्य तिस्मन् जलकोडांगे आयातं जल कीडा-यातं बालद्विप्कुलं कार्रकलभगुन्दम् असमशरपातैः तीक्ष्णरारमहारेः अत्र चैत्रस्य प्रवेशे मार्तडस्य प्रचं-ढत्वं कालविरुद्धम् मरुसरिस देशविरुद्धं मदेन अपं वालद्विपकुलम् इति अवस्थाविरुद्धम् प्रशीमनः असमशरपातः विष्यंति इति आगमविरुद्धं स्वभाव विरुद्धं च ॥ २८॥

अर्थ-फूटाइर षुटम (पदाड़ीमिझिफा) भी पंक्तियोंसे मानो हैंसरही हैं दिशा निक्षमें पंक्ष चित्रक मदेश अर्थात पसंत कानुमें गय कि यरफ के क्लींक समान है टच्चताकी तीस्थाता निसमें की सुर्यंक मुदंड होनेपर मह देश (शावड) के सरीयरोंमें मीडाफ लिखे आपा हुवा जो मदीप (मतवाला) हाथींक पर्वांका समृद टसफा शान्ति वाले (मुनीभर) तीसे पाणोंके महारसे मारत हैं यहाँ च्वांक मयेशमें सूर्यंका मबंड होना सम्मय विरुद्ध है वागव्हक सरोवशोंमें कोडा देशकिल्द्ध है हाथींक चर्चांका मदीप (मतवाला पन) अवस्थाल किल्द है तथा शीत मुनियां-के हार्योक चर्चा मारता शास्त्र (आगम) विरुद्ध है इसीसे पर्से अर्थोंक मधीण करनेसे वावपद्वित कटलाता है ॥ २८॥ (88)

(भाषालक्षण) दोहा-देश समय वय आदिके, होत विरुद्ध मतीत । ऐसी कविता जिन करो, विन कारण विषरीत ॥

(टदाहरण) बुढिया चडी पहाडते, उत्तरी सागर पार । पंछ टडाइर देखले. होलीक दिन चार ॥

इति दोपविपनिपेकैरकलंकितमुज्ज्वलं सदा विवुधेः ॥ कविहृदयसागरोत्थितम मृतमिवास्वाचते काव्यम् ॥ २९ ॥

र्टाका-विग्रधेः इति दोपविपिनसेकैः अकलंकितम् वज्ज्ञलं कविन्द्वयमागगेत्थितं कान्यम् अष्टतम् इत सदा आस्याद्यते इत्यन्त्रयः॥इति दोषा एव विपाणि तेषां निषेकाः मिश्रीभावाः तैः अकलंकितं गुद्धम् वज्ज्ञलं निमेलं कवेः ददयं कविन्द्रयं तदेव सागरः तस्मात् वत्थितं समुद्धतं काव्यम् अष्टनमित्र विग्रधेः पंडितेः मदा आस्याद्यते ॥ २९ ॥

अर्थ-प्यांतः जो दोषस्य विष उत्तरे समर्गते कारंत्री रहित निर्मेष्ट और कविकं हत्यस्य मागरमे उत्तय हुगा गो। कार्या है उस पंडित स्टांग अस्तरी। सीति पान करते हैं अर्थात् उत्तम कविताका आनन्द केता विद्यानीको अवस्य परमयिष होता हरेश।

तृतीयपरिच्छेदः ।

गुणाः ।

अदोपाविष शन्दार्थों प्रशस्येते न यैर्विन ना ॥ तानिदानीं यथाशक्ति वृमोऽभिव्य-क्तये गुणान ॥ १ ॥ औदार्थ समता कांतिरर्थव्यक्तिः प्रसन्नता॥समाधिः श्वेप ओजोथ माधुर्य सुकुमारता ॥ २॥

टीका-अदोपी अपि शब्दार्थी येः विना न प्रश-

स्येत तान् ग्रुणान् इदानीम् अभिन्यक्तये यथाशक्ति
ग्रूमः इत्यन्वयः ॥ अदोषी उक्तानर्थकादिदीपरहिती
अभिन्यक्तये प्रकटीकरणाय ॥ १ ॥ ओदार्पिमित्यादि
पदेवंस्यमाणं ग्रुणानां संस्या न्यास्याता यथा १ औदार्यम्, २ समता, ३ कांतिः, ४ अर्थव्यक्ति, ५ प्रसन्नता,
६ समाधिः, ७ श्रुपः, ८ ओजः, ९ माधुर्यम्, २ ॥ सुकुमारता, इति दशसंस्यात्मका कान्यस्य ग्रुणाः कथिता
तेषां सोदाहरणानि लक्षणानि वस्थंतेऽमे ॥ २ ॥

अप-पूर्याप्यायोक अनर्धकादि दोषोक्षे रहित हान्दार्थ भी जिन कुपोके बिना भिहताको मात नहीं होते उन गुणोको परि-तात होनेते हिचे हम अब अगाई। यवाशिक वर्णन करते हैं ॥ १ ॥ वे गुण इस मकार हैं कि १ औदार्थ, २ समता, ३ कृति, ४ अर्थव्यक्ति, ५ प्रसन्नता, ६ समापि, ७ रहेष, ८ ओन, ९ (\$ 6 3

बाराई, १०कुनुबारका, दे१० राग्य प्रश्नुदे हुरे हे (हुईई बंदा चेंग्र प्रदुष्णरूष्ण श्रम्मपुरित्रे खुरिकेत्व प्रश्नमञ्जन पूर्वते प्रदृष्टि मेर्रा 42.77

पर नाम निरम्बयनगणसप्यतिस्था मि ित्रमां गहापाने तही हार्य समते यथा ॥

। ३ १ हो भी भाजिताम स्टामीकी व्यवस्थान मानामा मानामा भीता ि । रेट्टि वर्षांस अविभिनापार ।

14 14 15 15 15 15 15 र र अप्रदेश प्रदेश के विविधा रत र, पर रह उन्हें रहे वा पुरुष्यु मा पुगार पर (प)

. २००१ - ईत्रेश्च ने २०५ वृष्युष्ट्रातिष्या । २ २^{-१}१२ , २ ३ अन् अर-पुरुष्पुत्रसम्भातः ं 'र र' कल्कान्य देशनी वशनी विनापी े -३ -४३ में भारतपण स्वात नव मेमा

८ ८ - ८ - ४३ च . घरोत राज्या भगापिती - - - । ८००, १ रु में मुखी व स्वीर स्थान 3.1 G (1.4) 14 (1.4) 1 (1.4 · इः । च्यान्द्रंट्यान्यमातीः ६ १८६६ छ। इंश्वरभारीरीवयम

there expresses the first host. To

सान्यवर्षं॰ शं॰ भाषाशैकासद्दितः। (४९) विभाजितानि शोभितानि धामानि यस्मिन् तथोक्तं राज्यं स्टक्ष्माः राजश्चिमाः स्टोस्टानम् दवस्त्रं य-

ह्मिन् तथोक्तं च राज्यम् इतिभावः। अत्र गंपशब्देन इभानां छीळांबुज्शब्देन च छत्रस्य तेनव राजश्रियाः

चारुत्वं द्योत्यते तेन औदार्य नाम गुणः ॥ २ ॥ अर्थ-(चारुलअर्थ अर्थकी श्रेष्ठता) के बायक पदांतरी करके संमिलित पदोका जहाँ आधान (नियानन हो) उसे आदापं नाम राण करते हैं ॥ १ ॥ (जैसे) धीनेमिनाय रेवतक नाम मीडापर्वत पर विरफाल तक तप करते भये क्याफरके कि मदकी गंपवाले इस्तियोंस शोभित थाम और राजलक्षीके **छीला फमलेश समान छप्रयुक्त राज्यका छीडकर यहाँ गंपस** हास्तियोंका और लीलोबुन बान्दरें हस्तियोंका तथा लक्ष्मीका और छत्रका तथा इन सबसे राज्यभीका चारूव (अष्टत्व) घोतन होताहै इससे भीदार्य नामक गुण हुवा ॥ ४ ॥ (भाषा) दोहा-भिलित चाहता बीधकर, होत पदोका याँग । ताहि फहत औदार्य गुण काव्यरशिय जे स्टीम ॥ १ ॥ प्या- गंधहस्तिशाभित सदन, श्रीरतिषंकन छत्र । नेमिराम तम फीन्ड तप, रेवत मिरि एकत्र ॥ २ ॥ समता और फांति ।

वंधस्य यदेवैपम्यं समता सोच्यते बुधेः॥ यदुज्ज्वलत्वं तस्येव सा कांतिरुदिता यथा ॥ ५ ॥ टीका-बंधस्य यत् अवैषम्यं बुवैः सा समता उच्यते तस्य एव यत् उज्ज्वलत्यं साकांतिः उदिता-(यथावक्ष्यमाणोदाहरणार्थम् इत्यन्वयः)॥ वंयस्य स्ठोकादेः अवैषम्यं विषमतारहितत्वम् उज्वलत्वम्-उदीतत्वम्॥ ६॥

अर्थ-षंध अर्थात् श्लोकादिकी रचनामें अवैपम्य विषमताका अभाव अर्थात् समता (सरलता) हातां उसे "समता" नामक गुण कहतेंहें और जहां चंच (श्लोकादि) में अर्थ तथा-पदोंकी उञ्चलता हो तो उसे "कांति" नाम गुण जानो॥ ५॥ (भाषा) दोहा-अविषमता जहें चंचमें, सो समता गुन जान। जहें उञ्चल हों अर्थ पद सो गुन कांति बखान॥

समताका उदाहरण ।

कुचकलराविसारिस्फारलावण्यधारामतु वदित यदंगासंगिनी हारवृक्षी ॥ असद-शमहिमानं तामनन्योपमयां कथय कथ महंते चेतिस व्यंजयामि ॥ ६ ॥

टीका-त्यदंगासंगिनी हारवछी ताम् अनन्योपमेन्याम् असहशमहिमानं कुचकलशविसारिस्मारलावण्य धाराम् अनुवदति अहं ते चेतिस कथं व्यंजयामि (इति) कथय इत्यन्वयः ॥ यदंगासंगिनी अंगस्थि-ता हारवछी हारलता अनन्योपमेयाम् अन्याभिः उपमातुम् अशक्याम् असदृशमिद्दमानम् असामान्य महत्त्वयुक्तां कुचकलशयोः विसारिणी प्रसारिणी रफा-रा उत्कटा लावण्यधारा यस्याः ताम् अनुवद्ति अनुकथयति ते चेतसि तव हृद्ये कथं व्यंजयामि । अञ्ज अवेषम्येन समता नाम गुणः स्यात् ॥ ६॥

अर्थ-कांतरिक अंगस्थित हारयाही (हारकी छडी) उस अनन्यायमे अर्थात् जिसकी उपमा नहीं होसके और असामाम्य महत्य युन कुचकलमों पर फेली हुई उन्कट छावण्यकी पारा हिं निसके उसके मति कहतीहें कि तेर हदय पर में किस मणारस मणाशमान हो सकीई अर्थात तेर कुचकलशोंपर छाव-ण्यकी उनकट पारा मुक्ता रूपसे शोभायमान है किर कही में हारका पक लड़ी तेर हदय पर फेम मणाशमान हो सकी हुँ अर्थात् छावण्यपाराहे सामने में मणाशमान नहीं हो सकी यहां संपक्षीविषयता नहीं होनेस समता नाम गुण हुवा ॥ ६ ॥

यहा वयका।वबमता नहा हानस समता नाम गुण हुया ॥ ६॥ (भाषा) दोहा-कुचपर अति सावण्यकी, शोभित धार अपार् । सन्तामाणकसम जटित, कहा वापुरो हार ॥

कांतिका उदाहरण ।

फलेंः इप्ताहारः प्रथममपि निर्गत्य सद-नादनासक्तः सीख्ये कचिद्पि पुराज-न्मिन कृती॥ तपस्यन्नश्रातं नतु वनभुवि श्रीफलदलेरखंडैः खंडेन्दोश्चिरमकृत पादार्चनमसी॥७॥ (५२) वाभाटालंकार-पारे॰ ३.

टीका-असी पुराजन्माने कृती प्रथमम् अपि सद्द-नात निर्गत्य वनभुवि अखंडेः श्रीफलदलेः खंडेन्दोः पादार्चनं चिरम् अकृत कि कुवंच नत्त अशांतं तपस्यन् कथंभूतोसी कचित् अपि सीख्ये अनासकः पुनः कि-भूतोसी फलेः क्रुप्ताहारः इत्यन्वयः ॥ पुराजन्मिन कृती पूर्वजन्मिन कृतसत्कर्मा सदनात् गृहात् निर्गत्य गत्वा सीख्ये अनासकः सुखभोगे आसिकरिहतः अशांतम् अदिरतं तपस्यन् तपः कुवंच् नत्तु निश्चयेन श्रीफलदलेः विद्वपद्मेः अखंडेः अखंडितः खंडेंदोः श्रिवस्य पादार्चनम् अकृत चरणपूजनं कृतवाद्

अर्थ-पर पुरुष निमने पर्व जन्में सुकर्म कियाँ मध्य प्री पर्म निरुष्ट पनकी भूमिंग आर्थित किरावश्रोस शिरानीकी बहुत मम्म तक पादार्यन (चरणपता) करनाभूषा क्या करता हुवा अविभान तरभ्यां करता हुवा क्षेत्रा पुरुषेद कर्यांस ही आहार करवना कर रम्माहै निमने तथा कथी भी सुराभागोंमें आमन्त नहीं हुवाँद पहांचर बंधमें इन्द्र और अर्थकी वस्त्रवता हुन्में बृति गुण है ॥ ०॥

्भाषा) देखि-इस कृतिने पर जन्मेमें, तजपर धनफल साप। चित्रदरलनमें हर वस्य वंश अति बितलाय ॥

अर्थस्यकि ।

यदमेयत्वपर्यस्य सार्थव्यकिः स्पृता

यथा ॥ त्वत्सेन्यरजसा छप्ते सृयं रात्रिर-भृद्दिवा ॥ ८ ॥

्टीका-यत् अर्थस्य अभेषत्वं सा अर्थव्यक्तिः स्मृता यथा त्वत्सेन्यरजसा सृषे लुते (सित्) दिवा रात्रिः अभृत् इत्यन्वयः ॥ अभेयत्वं प्रमाणस्य अनावश्यकत्वं-सुखबेश्यत्वं वा सृषे लुते तु अवश्यम एय रात्रिभवितृमहेति नात्र प्रमाणावश्यकत्वम् अतोऽ धंव्यक्तिनामको गुणः॥ ८॥

अर्थ-नहीं अर्थकी प्रमाणकी आवश्यकता न हो अथवा सुरव्योप्यता हो उसे अर्थम्यांत नामक गुण कहतेई निम तुम्हानि समाकी रामसे सुर्य छोग होनेपर दिनसे शाबी होनई जविक सुर्य छोप दोजाताह तब राजि होती है इसमें प्रमाणकी आव-व्यक्ता नहीं और अर्थकी सुरव्योपका भी है इसीस अर्थम्योत गुण दुवा ॥ ८॥

(भाषा) देहि।-नहें अभेयता अर्थभे, अर्थपितः वरवान । तुम दल रन राज्य जिपे, दिन हो रजनि समान ॥

प्रसचना ।

झटित्यर्थापकत्वं ्यत्प्रसात्तिः सोच्यते यथा॥ कल्पट्टम इनामाति वांछितार्यप्रदो जिनः॥ ९॥ (५४) वाग्भटारुंकार-परि० ३.

टीका-यत् झटिति अर्थापकत्वं सा प्रसत्तिः र-च्यते यथा वांछितार्थप्रदो जिनः कल्पहृम इव आभाति इत्यन्वयः ॥झटितात्यव्ययं शीष्ठम् अर्थापकत्वम् अर्थ-

स्य आपकत्वं वोधकत्वं सा प्रसात्तः प्रसादः वा प्रस व्रता नाम गुणः । यथा कल्पटुमवत् वांछितार्थप्रदः वांछितस्य अर्थस्य प्रदाता इति अत्र शीघार्थावत्रो

धकत्वात प्रसन्नता नाम ग्रुणः स्यात् ॥ ९ ॥

अयं-नहीं शीम अयणमानसे ही अयंका योथ होनाएँ तो दमें मसीत अयांत मसाद अथया मसजता नाम गुण कहतेंहें जैसे कराइसकी हुन्य पाछित अयंको देने वाली जिन शीभाको मान होतेंदें परा पर शीमही अयंको योध हीनेसे मसीत अयांत ममाइ या ममजता नाम गुण दुवा ॥ ९॥ (भाषा) दोहा-अयंबोध गई होता हा, सी मसाद गुण नाम! मंगर्टी मुतक मम सदा, पाछितायंत्रद राम ॥

ममाधि ।

ससमाधिर्यदन्यस्य ग्रुणोन्यत्र निवेद्य-त ॥ यथाऽश्रुभिररिस्त्रीणां राज्ञः पछवितं यज्ञः ॥ १० ॥

रीका-सन अन्यस्य गुणः अन्यम् निवेश्यते म ममाथिः । यथा अग्म्बीणाम अश्वभिः गज्ञो यशः पद्धवितम इत्यन्वयः ॥ अन्यस्य वस्तुनो गुणः अन्य-स्मिन् वस्तुनि यत्र निवेश्यते यथा शृबुवनिनाश्वभिः

(44)

राज्ञो यशिस पछवितत्वं लतावृक्षादेर्गुणो निवेश्यते अनेन समाधिनांम गुणो भवति ॥ १०॥

अप्-जहां अन्य बस्तुका एल अन्यमें निवृत्त किया जाये तो वह समापि नाम गुल कहाताहै जैसे शृत्र्योंका त्रियोंके औंद्रुवासे राजापत्र यक्ष पद्धवित होलया अर्थात यक्षमें अंदुर पूटकर सपत्र होलया (बहिको मात्रुवार) यहां शृत्रकी त्रियोंके अंमुयासे राजाके यक्षमें पद्धवित होना कता हक्षाहिका एल निषष्ट हुपा इससे समापि नाम गुल होलया। १०॥

(भाषा) देहा-सो समाधिगुण अन्यंक, हो निवेश अन्यत्र । अतिनारी असुवनमुं हों, नृषवश अंकुर पत्र ॥

भ्टेप और ओज़के रुक्षण ।

रेठेषा यत्र पदानि स्युः स्युतानीव पर-स्परम्। ओजः समासभूयस्त्वं तङ्ग्ये-प्वतिसुंदरम् ॥ ११॥

टीका-स्वा पदानि परस्परं स्थूतानि इव स्युः स्र श्चेषः । समासभ्रयस्त्वम् ओजः तत् गद्येषु अतिसुंद-रम् इत्यन्वयः ॥ स्यूतानि शुंफितानि संश्चिधानि समासभ्रयस्त्वं समासवाहुत्यं तत् ओजः गद्येषु अति-सुंद्रस्म ॥ ११ ॥

अर्थ-जहां परस्पर आपसमें ग्रीकत हुए से पद हों पह सेप नामक ग्रुप कहराता है। और समासकी बहुरता होना अर्थात मनीहर बहे समास होना ओज नामक ग्रुप कहराता है (५६) · वाम्भश्रलंदार-परि०३.

और यह ओन नामक गुण विशेष करके गर्धमें अतिसंदर होता है।। ११॥

श्टेषका उदाहरण ।

मुदा यस्योद्गीतं सह सहचरीभिर्वनचरे-मुंहुः श्रुत्वा हेलोबतधरणिभारं मुजवलम्। दराद्गच्छद्भांकुरनिकरदंभात्सुलकिता-श्रमत्काराद्रेकं कुलशिखरिणस्तिपि द-धिरे ॥ १२ ॥

टीका-यन्य हेलोवनथरिणमारं भुजवलं सहन-रीभः मद वनचरः मुदा उद्दीतं मुद्दः श्रुत्वा छल-रित्याणः ते अपि दरेष्ट्रच्छदभीकुरनिकरदंभात् पुरस्तिः धमरकारोदेकं दिये इत्यन्ययः ॥ हेल्या ग्रुर्वेद्धाः प्रमरकारोदेकं दिये इत्यन्ययः ॥ हेल्या ग्रुर्वेद्धाः वद्धातम् उधीति द्रेग्ट्रच्छदभिकुरनिकर-देशतः इति दर देपतः उद्गच्छते। य द्रश्कियः तेषां तिकरः समृदः तस्य दशतः च्याजातः पुलक्तिः। कुल-रित्यात्वाः कुलपान्या चमनकारस्य उद्देकम् आधितपं चमकारोदेकं द्रया चुनवंतः 'भदेदे निष्यः सद्धाः इत्यक्तितः प्राप्याद्धाः॥ विच्या दिम्पियित्यः सर्वेदे कुलपान्ताः अत्र प्रदाना प्रस्पाः स्युत्वेनः ध्रमे

भाग स्वात् ॥ १२॥

सान्ययसं० टी॰ भाषाटीकासदित । (५७)

अर्थ-इस (राजा) की छीला करके धारण किया है परणीका भार निसमें ऐसे भुगथलको सहयरी सहित बनवरों करके आनं-रेश एव गाया हुवा धार बार सुनकर कुल्यवंत (बडे यडे पर्वत) में भी थोंडे भोंडे निकलं हुए इमके अंकुरोंके समुहकं र्दम मिस) से गुलकित हुए हुए चमकार के उद्देशकी धारण करते में (महेन्द्र निषप सहा कुनिमान पारियात विष्य और हिमा-वल हन सात पर्वतीको कुल्यबंत कहते हैं) यहां परस्पर पर्दीमें ग्रंपना सी होनेसे खेय गुण हुवा ॥ १२ ॥ (भाषा) दाहा-डोल परस्पर पद जहां, ग्रंकित से सी छेप ।

तर्भर तर परिवनतियहि, युगसम जात निमेष ॥ ओजका उदाहरण ।

समराजिरस्फुरदरिनरेशकरिनिकरशिरः सरससिंद्वरपुरपरिचयेनेवारुणितकरतलो देवः ॥ ९३ ॥ इतिगद्यम् ॥

र्दाका-वेवः (राजा) समराजिरस्फुरव्हरिनरेशकारे निकरशिरः सरसांसदृरपूरपरिचयेन इव अरुणितकर-तलः इत्यन्वयः ॥ समरः एव अजिरम् अंगणं तत्र स्फुरंति यानि अरिनरेशानां करिनिकरस्य इस्तिसपूर-स्य शिरांसि तेषु सरसा आर्ह्यां य सिंदूरपूराः तेषां परि चयेन संगेन इव अरुणितकरतलः रकाकृतकरतलः तथाभूतो वेवः राजा भातोति शेषः । अत्र समासवाहु-स्येन ओजो नाम गुणः स्थात ॥ १३ ॥ अर्थ-देव (राना) अहणित करतल अर्थात् रक्त हीरहीं हार्योकी हथेटी जिसकी (सो झोमाको प्राप्त होरहीं है) (मानो) समरह पी अंगणमें रफुरायमान जो शबु नरेसोंके गज समृहके शिर उनपर जो सरस गीला सिंदूर पूर (सिंदूरकी पूरणा) उसके पिरचय (संयोग) से ही हायलाल होनेपेहें यहाँ इस गर्यमें समासकी बहुत्वता होनेस ओज नामक राण हवा।। १३॥

'भचितित हिंदी भाषाके गद्य सरक निवंधी उपन्यासों भें अधिक समास युक्त धावयोंका विशेष उपयोग नहीं होता इससे भाषा उदाहरण नहीं लिखा॥

माधुर्य और सौकुमार्यके लक्षण ।

सरसार्थपदरवं यत्तनमाधुर्यमुदाहृतम् ॥ अनिष्ठराक्षरत्वं यत्सोकुमार्यमिदं यथा१४

टीका-यत् सरसार्थपदत्वं तत् माधुर्यम् उदाह-तम् । यत् अनिष्ट्रशक्षरत्वं (तत्) इदम् सीकुमा-र्यम् इत्यन्वयः ॥ यथा वक्ष्यमाणोदाहरणार्थे सरसा-र्थपदत्वं सरसार्थत्वं सरसपदत्वं च अनिष्टुराक्षरत्वं वर्णानां कोमलत्वं तत् सीकुमार्यं शृंगारकरुणादि रसेषु विशेषतो याद्मम् ॥ १४ ॥

अर्थ-नं। अर्थ तथा पदामें सरसत्व हो तो उसे भाषुपंनामक गुन कहते हैं और नहीं अक्षर कटोर न हो उसे सीडुमार्य (मुदुमारना गुन्न) समझे यह मुदुमारता गुन्न गुंगार करुनादि रमोमें विशेष कर माथ और श्रेष्ठ समझानाता है ॥ १४ ॥

(भाषा) दोहा-सरम अर्थ पद हो जहाँ, तिहि माधुर्य निहार । नहें क्जोर अक्षर न हों, सो गुण हो सुकुमार ॥

माधुर्यका उदाहरण ।

फणमणिकिरणालीस्यूतचंचित्रिचोलः कु चकलशानिधानस्येव रक्षाधिकारी॥ उर-सि विशदहारस्पारतामुज्जिहानः कि-मिति करसरोजे कुंडली कुंडलिन्याः १५॥ दोका-कुंडलिन्याः करसरोजे कुंडली किम् इति

किंभूतः कुंडली फणमणिकिरणालीस्यूतचंचित्रचेलः कुचकलशनिधानस्य रक्षाधिकारी इव उरसि विशद हारस्फारताम् उज्ञिहानम् इत्यन्वयः ॥ कुंडलिन्याः कुंडलं कर्णभूषणं विद्यते यस्याः सा कुंडलिनी तस्याः करसरोजे हस्तकमले कुंडली सर्पः किय इति कथम इत्यर्थः। फ्रेंग मणिः फणमणिः तस्य किरणाली किर-णानां पंकिः तया स्यतः व्याप्तः चंचन स्फरन नि-घोलः कंचकः यस्य तथाभृतः कंडली कुच एव कलशः क्रचकलशः क्रचकलशे निधानं निधिरूपकं तस्य रक्षाधिकारी रक्षायां नियुक्त इव उरसि हृदये विशदः स्वच्छः यः हारः तद्वत् स्फारताम् बन्वल-ताम् जनिहानः प्राप्नुवन् नायिकाया हस्तस्थितं हारं दृष्टा सर्पभारया कस्यचित कामिन उक्तिरियम् अञ सरसार्थपदत्वेन माधुर्य नाम गुणः ॥ १५ ॥

अर्थ-इंडल कर्णमूपगोंस अलंकत कामिनीक हाथमें सर्प क्यों है फैसा सर्प कि फणकी मिणकी किरणपंत्रियोंस ज्यात होरही है रकुरित निचाल अर्थात कंडुकी निसकी और इच-फलको समानेका मानो रक्षाधिकारी (रखवाला) ही है और हृदयपर उम्म्बल हारकी होभाको मात्र होरहा है (अर्थात किसी संदरीन अपने यक्षास्थलके हारको हाथमें लेलिया है टसे देसकर

किसी कामीको सर्पकी खांति हुई उसका यह वचन है) यहांवर अर्थ और पदेंकी सरसता होनेसे माधुर्य नामक ग्रण हुना॥१५॥ (भाषा) दोहा-फण मणि किरण समूहसे, धेतित सरस निवाल । कुचनिधि रक्षक हार सम तियकर अहि किमिलेल ॥

सीकुमार्यका उदाहरण।

प्रतापदीपांजनराजिरेव देव खदीयः कर-वाल एपः ॥ नोचेदनेन हिपतां मुखानि इयामायमानानि कथं कृतानि ॥ १६ ॥

टीका-हे देव त्वदीय एपः करवालः प्रतापदीपां-जनराजिः नो चेत् एव (तदा) अनेन द्विपतां मुखा-नि श्यामायमानानि कथं कृतानि इत्यन्वयः॥ हे देव हे राजन त्वदीयः तावकः करवालः सङ्गः प्रताप एव दीपः तस्य अंजनराजिः कव्यल्लेशी यदि

एव दीपः तस्य अंजनराजिः कनलश्रेणी यदि नोचेदेव (तदा) अनेन खड्नेन द्विपतां वरिणां मुखानि आननानि श्यामायमानानि कृष्णानिकथं कृतानि ॥ १६ ॥

अर्थ-ें राजन यह तेम सङ्घ जो। कि बतायो दीवको क राज भी भेजी नहीं हो ती इसने शनुशींक गुढ़े पाठि केंसे कर दिरे (पर्वतः यह आपका सङ्ग मतापके दीपकके कमलकी भेगी ए। है मानों इसीसे इसने हात्रवीके मुद्दै काले करदिये हैं) यही पड़ोर असर नहीं होनेसे सुकुमारता गुण हुवा ॥ १६ ॥

(भाषा) दोहा-तय मताप दीपक मर्सा, जी नहिं ही कर-पाल । सो इन किस विध करदिवे, शबुनके मुख काल ॥

राणेरमीभिः परितोऽन्नविद्धं सुक्ताफलानाः मिव दाम रम्यम् ॥ देवी सरस्वत्यपि कं-ठपीठे करोत्यलंकारतया कवित्वम् ॥१७॥

टीका-देवी सरस्वती (क्वेर्डिद्धः) अपि अमीभिः गणः परितो अनुविद्धं कवित्वम् अलंकारतया कंठपीठे मुक्ताफलानां रम्यं दाम इव करोति इत्यन्वयः॥सरस्वती कवेः प्रतिभा वृद्धिः अमीभिः उत्तेः औदायीदिगुणैः गुणशब्देन सुनिरिति ध्वनितेथिः। अनुविद्धं स्यूतं कवि-त्वं काव्यं मुक्ताफलानां रम्यं दाम इव कंठपीठे कंटदेशे अर्लकारतया भूपणतया करोति (धारणं करोति) ॥ १७ ॥

अर्थ-सरस्वती कविकी बुद्धि इन औदार्यादि गुणेंसि अनुः विद (विरोपी हुई) ध्याप्त जी कविता है उसे आभूपण रूपसे भौतियों की रमणीक मालाकी भौत कैउदेशमें धारण करती है॥ १०॥

अथ चतर्थः परिच्छेटः।

दोपैर्मुक्तं ग्रुणैर्युक्तमपि येनोज्ज्ञितं वचः॥ स्त्रीरूपिमव नो भाति तं व्रवे लंकियोच-यस् ॥ १ ॥

्टीका-दोपैर्धुक्तं ग्रुणैः युक्तम् अपि येन उज्झितं वचः स्त्रीरूपम इव नो भाति तम अलंकियोद्ययं होवे इत्यन्त्रयः ॥ दोपेः अनर्थादिकैः मुक्तं रहितं गुणैः औन दार्यादिभिः युक्तं सहितं वचः काव्यम् उज्झितं त्यक्तम्

अलंकियोचयम् अलंकारसमृहम् ॥ १ ॥ अर्थ-दोपों करके गहित और गुणों करके सहित भी धचन

(काव्य) जिसके विना स्त्रीके रूपके समान शोभाको प्राप्त नहीं होता इस अलंकार समृद्दको (अब) वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

अलंकारगणना चित्रं वकोत्तयतप्रासो यमकं ध्वन्यलं क्रियाः ॥ अर्थालंकृतयो जातिरूपमा रूपकं तथा ॥ २ ॥ प्रतिवस्त्रपमा भ्रांतिमानाक्षेपोऽथ संशयः ॥ दृष्टांतन्य-

तिरेको चापह्रतिस्त्रल्ययोगिता ॥ ३ ॥ उत्प्रेक्षार्यातरन्यासः समासीकिर्विभाव-ना ॥ दीपकातिशयी हेतः पर्यायोक्तिः

समाहितम् ॥ ४ ॥ परिट्रित्येथासंख्यं विपमः स सहोक्तिकः ॥ विरोधोऽवसरः सारं संश्ठेपश्च समुचयः ॥ ५ ॥ अप्रस्तु-तप्रशंसा स्यादेकावल्यनुमापि च॥परिसं-

तप्रशसा स्यादकावल्यनुमाग चागारसः ख्या तथा प्रश्नोत्तरं संकर एव च ॥ ६ ॥ टीका-चित्रं वकोक्तिः अनुभासः यमकम् एते च-त्वारः ध्वन्यलंकियाः शब्दालंकाराः अर्थालंकारा-

श्र जात्याद्यः संकरांताः पंचिभः छोकेः अलंकारा-णां नामान्येव (एपामन्वयः सरलः) ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

अर्थ-इन पांच ह्याकोंने केवल अलंकारोंक नाम मात्रकी गणना है निसमें आरंभमें चित्र बक्रोकि अनुमास और यमक पे चार कुट्यालंकार हैं और जातिकी आदिले संकर पर्यत

जयांहंकारीके नामांकी गणना है इन सबके चिद्र छुद्र छक्षण भेद तथा बदाहरण अगाई छित्ते जानगा १ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ४॥ ५॥ ५॥ यत्रांगसंधिस्तवपेरक्षरेवंस्तुकल्पना ॥ स-त्यां प्रसत्ती चित्रं स्यात्ताचित्रं चित्रकृच

प्रयापतापुरान्यस्य स्थानाचित्रं चित्रकृच त्यां प्रसत्तो चित्रं स्यानाचित्रं चित्रकृच यत्॥७॥

दीका-यत्र प्रसत्ती सत्यां यत् तद्वयेः असरैः वस्तु करपना चित्रं (यथा भवति तथा) चित्रकृत् अंग-संघिः स्यात् तत् चित्रम् इत्यन्वयः ॥ प्रसत्ती सत्य (६२) ेवाग्भटालँकार-परिवे ४.

अथ चतुर्थः परिच्छेदः।

दोंपैर्मुक्तं गुणैर्युक्तमपि येनोजिझतं वचः॥ स्त्रीरूपमिव नो भाति तं व्रवे लंकियोच-

यम्॥१॥

टीका-दोपैर्धकं ग्रणैः युक्तम् अपि येन उज्झितं वचः स्त्रीरूपम् इव नो भाति तम् अलंकियोद्ययं होने इत्यन्त्रयः ॥ दोपैः अनर्थादिकैः मुक्तं रहितं गुणैः ओ-दार्यादिभिः युक्तं सहितं वचः काव्यम् उज्झितं त्यक्तम्

अलंकियोचयम् अलंकारसमृहम् ॥ १ ॥ अर्थ-दोषों करके रहित और गुणों करके सहित भी वचन (काव्य) जिसके विना छाँके इतके समान शोभाको माप्त नहीं

होता इस अलंकार समृहको (अब) वर्णन करते हैं ॥ रै ॥

अलंकारगणना चित्रं वक्रोत्तयतप्रासो यमकं ध्वन्यलं क्रियाः॥ अर्थालंकृतयो जातिरूपमा रूपकं तथा ॥ २ ॥ प्रतिवस्त्रपमा भ्रांतिमानाक्षेपोऽथ संशयः ॥ दृष्टांतव्य-

तिरेकी चापहृतिस्तृल्ययोगिता ॥३॥ उत्प्रश्नार्थातरन्यासः समासोक्तिर्विभावः ना ॥ दीपकातिशयो हेतः पर्यायोक्तिः

समाहितम् ॥ ४ ॥ परिट्तियेथासंख्यं विपमः स सहोक्तिकः ॥ विरोधोऽवसरः सारं संश्ठेपश्च समुचयः ॥ ५ ॥ अप्रस्तु-तप्रशंसा स्यादेकावल्यतुमापि च॥परिसं-ख्या तथा प्रश्नोत्तरं संकर एव च ॥ ६ ॥

टीका-चित्रं वकोक्तिः अनुप्रासः यमकम् एते च-त्वारः ध्वन्यलंकियाः शन्दालंकाराः अर्थालंकारा-श्र जात्यादयः संकराताः पंचभिः छोकेः अलंकारा-णां नामान्येव (एपामन्वयः सरलः) ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥ २ ॥ ६ ॥ ६ ॥

अर्थ-हन पीच क्षेत्रीमें क्षेत्रस्य अर्दकारीके नाम माप्रकी गणना है जिसमें आरंभमें वित्र वक्षोक्ति अनुमास और यमक ये वार हान्दाकंकर हैं और जातिकों आदिसे संकर पर्यंत अर्थार्टकारों के नामों को गणना है इन सबके खुदे हुदे स्टक्षण भेद तपा बदाहरण अगाड़ी स्थित नामें गा ? ॥ ३॥ ४॥४॥६॥

यत्रांगसंधिस्तः पैरक्षरेवंस्तुकरूपना ॥ स-त्यां प्रसत्तो चित्रं स्यात्ताचित्रं चित्रकृच यत ॥ ७ ॥

टीका-यत्र प्रसत्ती सत्यां यत् तद्वृषेः अक्षरैः वस्तु करपना चित्रं (यथा मनति तथा) चित्रकृत् अंग-संधिः स्यात् तत् चित्रम् इत्यन्वयः ॥ प्रसत्ती सत्य प्रसादगुणसत्त्वे तहूपैः तदनुकूलैः अक्षरैः वर्णेः वन्तुनः प्रतिपाद्यस्य कल्पना चित्रकृत् चमत्कारकृत् अथना चित्ररूपकृत् अंगसंचिः अंगसंकलनं स्यात् तत् चित्रं चित्रनामकं शब्दालंकारः॥ ७॥

अर्थ-महो मसाद गुण होनेपर तहूप असरास वित्र होजाव तिसे पर्तु करवना रूपक चमकार करनेवाळा अंग धंकळन होजाव तो उसे चित्र नामक शन्दाळंकार कहतेहें जैसे असरासे कमळ एज मुक्ट आदि आकार बनजावें उसे पद्मवंश एजवन्य आदि चित्रकाच्य कहते हैं॥ ७॥

पमगंधित्रका उदाहरण ।

. जनस्य नयनस्थानध्वान एनाईछनत्वि-नः ॥ पुनःपुनर्जिनः पीनज्ञानध्यानधनः --- नः ॥ ८ ॥

टीका-स जिनः नः एनः पुनः पुनः छिन्तु कीहरो।
जिनः जनस्य नयनस्थानध्यानः पुनः कीहराः इनः
पुनः कीहरो। जिनः पीनज्ञानध्यानधनः इत्यन्ययः ॥
ध्यान इत्यन मानः इति वा पाठः । जनस्य लोकस्य
नयनं स्थानं यस्य ताहरो। ध्यानः निर्योणप्रयतंकराव्दः
मानः पक्षे जनस्य नयनस्थानं तदेव मानं यस्य इनः
स्वामी पीनज्ञानध्यानधनः पीनं महत् ज्ञानं ध्यानं

सान्यपर्मं ॰ टी ॰ भाषाटी रासहित ।

(54)

प धनं यस्य स नः अरमाकम एनः पापं पुनःपुनः धारेषारं छिनत्तु नाशयतु ॥ एषः पोडशदलपद्मवंधः तथा गोमृत्रिकावंधश ॥ ८ ॥

अर्थ-चे जिन भगवान हमारे पायोपी बारबार मान परी एरें(रे जिन जानेथि नयनस्थान पहें(हे स्थान (निर्याणप्रयोग प्रयान जिन्हें: ऑह स्थानणे गड़े मान पना गड़ीतर धानतेहें अपांत मनुष्पेरेंक मयनस्थान है। है सान (मामान) जिन्हा तथा कि पर्य निर्माह कि इन अर्थान पुन्तक्ष्या स्थामित और किर परी हैं कि स्टल सान और स्थान हो है पन जिनका अन्य पोड़

शदलप्रमेपंपर तथा भाम्बिरायंच भा होसकार देवा चित्र ॥८॥ भारतस्लयम्बर्धपविषयमस्यम्



L	अयमधामाम् विद्यासभा यथा । जन जन स्थास मधास न्यात एत ति द्वि गस्थिन														
3	4	F7	Ħ	4	41	1361	4	FE)	a	e	न	fig	7	(+a	न
-	-	-	-	-	-	-		-	-	-	-	u	-	-	-
13	14:	3	*	l a	Į.	થી		172	Đ,	বা	*	ч	7	स	PT:
													-		

(९९) चाम्भटालकार-पार० ४-

गणवरगणवरकरतरचरण! परपदशरण-गजनपथकथक!॥ अमदन! गतमद! गजकरयमल! शममय! जय मयघन-वनदहन!॥ ९॥

टीका-(हे) गणवरगणवग्करतरचरण (हे) परपद शरणगजनपथकथक (है) अमदन (है) गतमद (है) गजकरयमल (हे) शममय (हे) भयवनवनदहन (त्वे) जय इत्यन्वयः॥ गणेषु बगः तेषां गणः संघः तस्य वरं वांछितार्थम् अतिशयेन करोति एवंभूती चरणी यस्य तत्संबुद्धिः हे गणवरगणवरकरतरचरण परपदं नि-र्घाणं तस्मे शरणगा ये जनाः तेषां पथः पंथाः तस्य कथकः तत्संबुद्धिः हे परपदशरणगजनपथकथक हे अमदन मद्नेन रहित है गतमद गतो मदः यस्मात तत्संत्रद्धिः तथा गजस्य करमिन करयमलं यस्य तत्संबुद्धिः हे गजकरयमल हे शममय शांतिरूप भय एव घनवनं तस्य दहनः तत्संबुद्धिः हे भयघनवनदहन स्वं जय सर्वोत्कर्षेण वर्तस्व (एतत् एकस्वर्चित्रम)॥९॥

अर्थ-गर्गोर्भ जो भेद्र सी गणपर उनके गण उनके यर पी-रिजार्भ करने बांद्र अतिहास करके हैं बरण निनके तथा रास्त्र भे निर्वाण) के अर्थ सारणायत जी जन (मनुष्प) उनके साग के उपदेश करने बांद्र तथा अमदन (कामदेव करके हित)

और गतमद मदरहित तथा गजके कर (संड) वत विशाल हैं दोनी भुजा जिनकी तथा शीतिमय और भवरूप धनवन उसके इग्प करने वाले ऐसे जो श्रीजिनभगवान् आप जय हो । यह एक स्वर चित्र है अर्थात् इसमें अकारके सिवाप और स्वर (मात्रा) नहीं है ॥ ९॥

मूलस्थितिमधःकुर्वन पात्रेर्जुष्टो गता-क्षरैः ॥ विटः सेव्यः कुलीनस्य तिष्ठतः पथिकस्य सः ॥ १० ॥

टीका-मलिस्थितिम् अधःकुर्वेच सन् गतासरैः

पाँतेः ज्ञष्टः स विटः कुलीनस्य पथिकस्य तिष्टतः

सेन्यः इत्यन्वयः ॥ अत्र इकारच्युतौ विदस्थाने वटः इति चित्रम् । विटव्शे मूलस्थिति द्रव्यात्मिकां शक्तिम्

अधः कुर्वेन भूतले संस्थापयन अथवा मूलस्थितिम् अधः कुर्वेत द्रव्यानुरूपम् आडंवरं न संपादयत् सन् गतार्शरः पत्रिः ज्ञष्टः विद्याविहीनैः सत्पात्रेः ज्ञष्टः युक्तः

अथवा गताक्षरः गतः आसमंतात क्षरः क्षरणं येभ्यः तथाभूतेः पात्रैः भांडादिभिज्ञंष्टः स विटंः महाजनः वैश्यः कुलोनस्य सत्कुलप्रसुतस्य प्रिकस्य प्रिवर्त्तमान्-स्य तिष्टतः स्थितस्य सेन्यः सेवायोग्यः।तथा च वटपरी मृलस्थिति मुलैः शिषाभिः स्थितिम् अधः कुर्वन् तलप-देशे कुर्वन् सन् गताशरः पानः गतानि प्राप्तानि अशरा-

(६८) धाम्भटालंकार-परि०४.

णि दृढानि तथाभूतैः पाँनः पनसमृद्दैः जुरः युक्तः स वदः कुर्लीनस्य की पृथिन्यां लीनस्य अध्वगमनश्रमादः वसादं गतस्य एवंभूतस्य तिष्टतः पृथिकस्य सेन्यः सेनायोग्यः ॥ १०॥

अप-इस श्रोकमें बिट शब्द इकार मात्रा हटोनेसे पट ही। जाताह और दोनों प्रकारसे अप होताह १ (विटपसमें) पिट-फा अप महाजन वैश्य है तहा मूह्यश्वितको द्याते हुए सीद सत्पात्रों या नीन बडे पार्वोसे युक्त वह बिट (महाजन) इसी-न (रादानी) शह पर चलने वाल और स्थिति रसने बाल

न (सादाना) राह्न पर चल्ला पाल ओर स्थित रतन वार मृतुऱ्यांको सेमनीय हे और मृलस्थितिका द्वानेके हो अभियान है परक्ता यह कि मृलस्थिति (सुरमदस्य) को पृथिवी आदिमें देपाकर गुमस्त्राना दूसर यह कि मृलस्थिति अपने हम्यानुहल वाकिको नीचा रसना क्षायात हम्यानुहल आडेबर नहीं बरना .

मापा मादा था) २ (बटपशमें) भूग्टस्थित जड़ोंकी स्थि निको मीचकी करते हुए बात हुए हैं नवीन पत्र निसमें पेता बट इस मार्गकी थकायदमें यूथियीमें छीन हुए पेंडे हुए पिक मुमाधिमीकी मैथनीय है ॥ १०॥

साँद दंगमे रदना (जैसे कि प्रायः धैश्योंका व्यवहार पहतही

धर्माधर्मविदः माध्यक्षपातसमुद्यताः ॥ नरके दुःचिता यांति गुरूणां वंचने रताः॥ १५ ॥

रताः ॥ २२ ॥ टीका-(अवास्मिन् श्रोके गुरूणां येचने ग्ना इन्यत्र अनुस्वारस्युनी गुरूणां यचने ग्ना इति चित्रम) (वंचने रताः इतिपते) गुरूणां वंचने रताः धर्माधर्म निदः साधुपक्षपातसमुखताः दुःखिताः नरके यांति इत्यन्वयः ॥ गुरूणां पित्राद्दीनाम् वपदेशकर्तृणां वृद्धाः नां वा वंचने प्रतारणे कापट्ये रताः निरताः धर्माधर्मे विदः धर्मम् अधर्मम् अधर्मम् धर्मम् विदः इति जानंती-स्पर्धः। साध्यक्षपातसमुखताः साधनां पक्षः तस्य पाते

ादः यनम् अयनम् अयनम् वसम् वसः हात जानताः त्वर्षः । साधुपत्रपातसमुद्यताः साधूनां पत्रः तस्य पाते समुद्यताः हति (वचनेरताः हति पत्रे) हे नर गुरूणां वचने रताः धर्माधूमेविदः धर्माधर्मविदेकिनः साधुपत्र पातसमुद्यताः साधो पत्रपति समुद्यताः अदुःखिताः के स्वर्गे यांति ॥ ११ ॥

के स्वेग यांति ॥ ११ ॥

अर्थ-इस रहिक वे कान्दर्श अनुन्तार हरानेसे चपने
होनाताहै और दंगी प्रकास अर्थ होताह पही विवेह (पंपने
पस्ते) जो गुन्यां (घड़ें) क चन्त्रमें (उननेमें) रतें (चे प्रमें) जो गुन्यां (घड़ें) के चन्त्रमें (उननेमें) रतें (चे प्रमें) अर्थ जानने वाले और साधुवां के पस अथवा डसम पस
को पात करने (विगाइने) में उसस हैं (से) इमेदित होकर
प्रतिकें आर्दे कीर (चने पस्ते) है नर नो गुरुपांके परनो
में रत रहेतें हैं प पर्माप्रमें ह विवेदी और साधुवांके परभातमें
अथवा उसम परमातमें उसतें हैं व इम्बरहित होकर का अर्थार

^{स्मा} में _{जानेद}ें। ११ ॥ क्काकुकंक्छेकांककेकिकोकेककुः ककः ॥ क्किकोकःकाककाककक्ष्रीकुकुककांकुकुः १२

टीका-कककोकः ककः (क्रीटशः कककोकः) ककाकुकंककेकांककेकिकाकिक्कुः (पुनः क्रीटशः)

काककाककर्काकुकुककांकुकुः इत्यन्वयः ॥ कं शब् कुर्वन्ति इति ककाः ककाः कोकाः(चकवाकाः) यस्मिन् स कककोकः समुद्रः ककः कं मुखं करोतीहि ककः सुखकारक इत्यर्थः । ककाकुकंककेकाककेिको कैककुः कं सुखं नस्य काकुः पुनःपुनः उक्तिः सुर जनककाकुः इत्यर्थः । प्रनःप्रनकृतिः येपा ते कंका जलपित्तणः केका मयुराणां वाणी तया अंकिताः के किनः मयुराः कोकाः चक्रवाकाः तेपाम् एककुः अद्वि तीयंस्थानमित्यर्थः। काककाककर्काङ्कुककांककुः।का का एव काककाः स्वार्थेकन तान आकर्यति प्रीण-यंति इति काककाकका ऋचः। ऋग्वेदीयमंत्रविशेषाः तत्तनमंत्रेः काकेभ्यः विलः उपिद्वयते इति तेपां मंत्रा-णां काकप्रीणनत्वमिति भावः ता एव ऋककाकुवः ध्यनिविशेषाः तान् कोकति उचरति इति काककाक क्कोकुकुकः तथाभृतः कः ब्रह्मा स ब्रह्मा अंके यस्य सः विष्णः तस्य कु स्थानम् अत्र समुद्रस्य वर्णनम् । एकव्यंजनचित्रम् अत्रोद्धंगतो रेफः ऋकारसंजातः त्वात्र गणनीयः ॥ १२ ॥

अर्थ-रंका अर्थ सन्द उसका करने वाला कक कर अर्थात सन्द करने वाले कोक वक्ष्ये हैं (विशेष) नहीं पेमा गो। समुद्र सो ककः अर्थान् सुगका करने। वालाई कका अर्थ सुध्य भी है कैसाई समुद्र क (सुल) की। कालु (च्यनि) काने। वाले गो। नंदी (मर्ट्) और कीक (चक्रवाक) इन सबका एक कुः अदिताय स्थान) है तथा काकोंको काकक भी कहतेहैं (क न्यप होनेसे) इनको आवाहन या तृप्त करना काककाकक हुवा रमपदार अर्पंदमें काफचलिके मंत्रहें सोक्रावेदोक्त काकुउसका हुकने पाला उचारणकरनेवाला ब्रह्मा वह ब्रह्मा है अंक (गोद) में जिसके ऐसे विष्यु उनका कुः अर्थात् स्थान है यह एक व्यंजन चित्रहै इसमें जो ऊपर रकारहें सो ऋ स्वर का रूपहे इससे इस की गिनती नहीं (इस श्हाकमें समदका वर्गनहीं ॥ १२ ॥ कुर्वन्दिवाकराश्चेपं दधचरणडंवरम्॥देव योप्माकसेनायाः करेणुः प्रसरत्यसौ॥१३॥ टीका-अत्र करेणुशब्दस्य ककारच्युती रेणुः इति चित्रम् (हे) देव योप्माकसेनायाः असौ करेणुः अथवा रेणः प्रसरति किंकुर्वेच दिवाकराक्षेपं कुर्वेच कीहशः करेणुः रणडंवरं च दधत् रेणुः कीहशः चरण-डॅबरं दघत इत्यन्वयः ॥ याष्माकसेनायाः युष्माकं सेनायाः करेणुः इस्ती दिवा आकारीन सह करस्य शुंडस्य आश्चेषम् आलिंगनं कुर्वन् चरणस्य संप्रामस्य डंनरम् आडंबरं द्घत् ककारच्युती रेणुः धृलिः दिवा-करस्य मूर्यस्य आश्चेषम् अवरोघं कुर्वेव चरणानां पदानां डंबरम् आयोजनं दधत् प्रसरति चलति ॥१३॥ अर्थ-(इस क्षोकों करेणुशन्दके ककार दूर कर देने में रेणु होताई तथा दोनों पक्षमें अर्थ होताई यह वित्र है) हे

सान्यपसन टा॰ भाषाटाकासाहत । (७९) हंक (पसी) और केका (मयुरोकीबाणी) करके अंकित जो (46)

मथम सर्भगश्छेपनकोक्तिका उदाहरण ।

नाथ मयूरो चत्यति तुरगाननवक्षसः कृतो चत्यम् ॥ नतु कथयामि कलापिनमिह सुखलापी प्रिये कोस्ति ॥ १५ ॥

टीका-(कांतया कथितं) हे नाय मयूरः नृत्यति (किंतिन कथितं) तुरगाननवससः नृत्यं कुतः (पुनः कांतया कथितं) नचु कलापिनं कथयामि (पुनः कांतिनोक्तं) हे प्रिये इह सुखलापी कः अस्ति हत्यः नवयः ॥ प्रस्तुतस्तु मयूरः पित्तविशेषः वकोत्तया अप रार्थमूचकं वाच्यं मयोः तुरगाननस्य यसस्य वरः वक्षः तुरंगवदनो मयुरित्यमरः पुनः प्रस्तुतस्तु कलापिनं कलापः मयूरिपच्छः सोस्ति यस्य स कलापि तं कलापिनं मयूर्यमेव कथयामीति भावः पुनः वकीन्त्या अपरार्थमूचकं वाच्यं कं सुत्वं तदालापी कलापी इति भंगळीपवकोक्तिः ॥ १५ ॥

अर्थ-किसी कांतान कहा है नाथ मयूर (मोर) नाय रहाहै पुरुपने वक्तीकिसे कहा मयु यसका डर हृदय मयूर उसका नायना केसे होसके फिर कांतान कहा नाढ़ि मैंती कलापी (मोरं) का कहती हूं फिर पुरुपने चक्तोकिसे कहा कि क सुख उसका छापी आलाप करनेवाला कलापी सो है यिय यहांपर सुरालापी कीन है यहां सभेग क्षेपके आश्रयसे वक्तीकि हुई ॥ १५॥ अभंगश्टेप बकोक्तिका उदाहरण ।

मर्तुः पार्वति नाम कीतंय नचेत्त्वां ताड-यिष्याम्यहं कीडाञ्जेन शिवेति सत्यम् नघे किं ते श्वाणः पतिः ॥ नो स्थाणुः किम्र कीठको नहि पशुस्वामी तु गोप्ता गयां दोलाखेलनकर्मणीति विजयागी-

य्योगिरः पांतु वः॥ १६ ॥

दीका-दोलाखेलनकर्मणि इति विजयागीय्योंः
गिरः वः पांतु इतीति किम् (विजयोक्तिः) हे पार्वेति
भर्तुः नाम कीर्तय न चेत् अइं त्वां कीडाब्जेन ताडयिप्यामि (गीय्योंक्तं) शिव इति सत्यं (विजयोक्तं) हे
स्व अत्रचे किं ते पतिः शृगालः (पुनर्गोयोंक्तं) ने
स्थाणुः (विजयोक्तं) किम् व कीलकः (पुनर्गोय्योंकं) निहि पशुस्वामी (पुनर्विजयोक्तं) तु गवां गोता
इत्यन्वयः ॥ अत्र भस्तुतस्तु शिवः शंकरः वक्ते।
स्मातः अपरार्थमूचकं वाच्यं शिवः श्वालः पुनः
स्मातः स्थाणुः शंपुः अपरार्थमूचकं वाच्यं स्थाणुः
कीलकः पवमेव पशुस्वामी पशुपतिः गवां गोता च
इति अभंगक्षेपवक्तेकिः॥ १६॥

भी । १६ का शिवसन्दर्भ श्रीतःबाचकरात् सूमाज्याचकरास् एवं रंभागुसन्दरम्परि शिवसाचित्वात् कोटकताचित्राच एवमेव पद्यस्थानिसन्दरम् पद्यतिशिषयाचित्रात् गोवसाचित्राम् कामाभिष्टः।

अयं-हिंडोले मूलते समय विजया और गीरीक ये (हास्या समक) ययन तझारी रक्षा करो जैसे विजयान कहा है पार्वति तुम भवांका नाम बतायो नहीं तो तुझे में क्रीडा कमलसे ताडना करूंगी गीरीने कहा सचही शिवहैं (तब विजयाने अर्थ पटटके कहा) कि क्या नुझारा पति शिव अर्थात श्रमाल है फिर गीरी ने कहा नहि स्याणुः (बांकर) है फिर विजयान कहा क्या स्थाणुः (अर्थात् कीलक) दुंठ है फिर गीरीने कहा नहि पग्र-स्थाणुः (अर्थात् कीलक) दुंठ है फिर गीरीने कहा नहि पग्र-स्थाणी (पग्रपति) है फिर विजयाने कहा तो गीयोंका रहयाला है यह अर्थगक्षेत्रकोंकि है ॥ १६॥

(भाषा) दोहां-काकु रहेष व मंगंस अर्थ आनका आत। फेर्फ़ार उत्तर कहै वकउकि तेहि जान ॥ १ ॥ (उदाहरण) पीछो पानी तिय कहै पिय कहि का हो फूस। नहि जल हो हम क्यों जहें जहें हमारे दूस ॥ २ ॥ (दूस अर्थात द्वेपी शहु)

अनुप्रास छक्षण ।

द्वल्यश्वत्यक्षराष्ट्रत्तिरनुप्रासः स्फुरद्वणः ॥ अतत्पदः स्याच्छेकानां लाटानां तत्पद-श्च सः॥ १७॥

्टीका-स्फुरद्धणः तुल्यश्चत्यक्षरावृत्तिः सः अनु-प्रासः स्यात् अतत्पदः छेकानां च तत्पदः छाटानाम् इत्यन्वयः ॥ तुल्या श्वतिः श्रवणं येषां तथा भ्रतानाम् अक्षराणाम् आवृत्तिः प्रनःष्ट्रनः आवर्तनम् उचारणम् - इत्यर्थः स्फुरद्धणः स्फुरतो माधुर्य्यादयो गुणा यव तथाभृतः सअनुप्रासः अनुप्रासो द्विविधः छेकानुप्रासो लाटानुपासश्च तत्र अतत्पदः तत्पदरहितः छेकानां छेकानुपासः इत्यर्थः (छेको नागरो निदग्धः इति शत्द-स्तोमः) तथा च तत्पदः तानि एव पदानि यत्र स तत्पदः लाटानां लाटानुपास इत्यर्थः (लाटो देश-निशेपस्तत्र वासिनो लाटाः)॥ १७॥

अर्थ-जहां तृत्यभृति (एक्से जपण विसेही) अक्षरोंकी यारंवार आयुन्ति हो अर्थात डचारण हो और माधुम्यांदि गुण पुरुत्यमान हो सी उसे अनुमास क्हतिह अनुमासके दी भेद हिं एक छेकानुमास हुसरा हाटानुमास कार्वारेश उन्हीं पदांकी आपृ-तिं म हों कुछ पणोंकी आयुन्ति हो यह छेकानुमास कहाताह और जहां पूरे उन्हीं पहोंकी आयुन्ति हो उसे छाटानुमास कहतेहैं॥ रेज ॥

छेकानुप्राप्तका उदाहरण।

अलं कलंकश्वंगारकरप्रसरहेलया ॥ चंद्र चंडीशनिर्माल्य मसि न स्पर्शमहंसि॥१८॥

टीका-हे चंद्र हे कलंक-भूगार क्रमसरहेल्या अलं (त्वं) चंडीशिमीच्यम् असि स्परी न अहेसि इत्य-न्वयः ॥ कलंकः लांछनं शूंगारी यस्य स तत्संबुद्धिः हे कलंक-शूंगार चंद्र करमसरहेल्या किरणमसरण-विलासेन अलं किरणमसारणं मा कुरू इत्यथेः त्वं चंडीशस्य शिवस्य निर्मात्यं भुक्तशेषः विष्ण्यिः अप्ति अंतः स्परी न अहेसि अमादां शिवनिर्माह्यमिति वच- (96) याग्भडाउंकार-परि० ४,

नात् न स्पर्शयोग्य इत्यर्थः अत्र पूर्वाईं अलंकलंक इति वर्णावृत्तिः तथा रकारस्यावृत्तिः उत्तराईं सकारस्य चकारस्यावृत्तिः अतः अतत्पदावृत्या छेकानुप्राप्तः १८ अर्थ-हे फलेकश्रृंगार चंद्र तू अपनी हिरण फलानेके विलाम

को (धसकर) अर्थात किरण मत फैला क्यों कि तू चंडीश (महा-देव) का निर्माल्य है (उनके शिरसे उतरा ह्याहि) इससे स्पर्श करने योग्य नहीं है (शिवका निर्माल्य अग्राह्य होताह) यह विरहिणी कोताका वचनहै इस श्लोकके पूर्वाईमें अलंकलंक इत्यादि वर्णोकी तथा रकारकी आवृत्तिहै और उत्तराईमें चकार और सकारकी आञ्चतिहै इससे अतत्पदावृत्ति होनेसं छेकार

छाटानुपासके उदाहरण । रणे रणविदो हत्वा दानवान्दानवद्दिपा।

नीतिनिष्ठेन भूपाल भूरियं भूस्त्या

कता॥ १९॥

मास दुवा ॥ १८॥

टीका-हे भूपाल रणे रणविदो दानवान हत्वा दान-वद्भिपा नीतिनिष्टेन त्वया इयं भूः भूः कृता इत्यन्वयः ॥ भुवं पृथिवीं पालयतीति भूपालः राम इति भावः तत्सं-बुद्धिहैं भूपाल रणे संग्रामें रणविदः रणकोविदान

दानवान् अप्रुराच् दानवान् देष्टि इति दानवद्विद्व तेन दानवद्विपा दानवारिणा नीतिनिधेन नीतिपरायणेन े) इयं भः पृथिवी भूः रत्नादीनां प्रसविनी कृता अत्र रण

दानवभूपदानां पुनरावृत्त्या तत्पदो लाटानुप्रासः॥१९॥

अर्थ-हे पुराल (रामचंद्र) संभाममें रणवित्त दानवेंको भारकर दानवेद्रकी राजनीतिनिष्ठण (जो आर्यहें) आपने यह पृथिकी रजादिके उत्पन्न करने वाली बनादी यहाँ रण दानव और भूयदोंके दोवार आनेस सन्यद लाटानुमास हुवा ॥ १९ ॥

लं प्रिया चेचकोराक्षि स्वर्गलोकसुखेन किस्॥ लं प्रिया यदि न स्या मे स्वर्गलो-कसुखेन किस्॥ २०॥

टीका-हे चकोराति त्वं मे प्रिया चेत् (तदा) स्वगंजीकसुखेन कि यदि त्वं मे प्रिया न स्थाः (तदा) स्वगंजीकसुखेन कि यदि त्वं मे प्रिया न स्थाः (तदा) स्वगंजीकसुखेन किम् इत्यन्वयः ॥ त्वं प्रिया चेत्तदा स्वगंजीकसुखम् अष्टताप्सरादिसंभोगरूपं तेन कि न किम्पि प्रयोजनम् इत्ययंः त्वं प्रिया न स्थाः तदा स्वगंजीकसुखेन कि स्वगंजीकसुखेनि न सुखानुभव इत्ययंः अत्र स्वगंजीकसुखेन किम् इति पादस्य हि-राइत्या पादावृत्तिको लाटानुभासः ॥ २० ॥

अर्थ-हे बकीसाति (बकोरनेक्ष) जो तू मेरी प्यारी हो तो सूक्षे ध्यांटोक्ष्क मुससे क्या प्रयोजन हे अधीद स्वार्थ सूत्र असूत पान अप्तरासमीग आदिको भी आवश्यकता नहीं और जो तू मेरी प्रिया नहीं हों। भी स्वार्टोक्षक मुससे क्यांटे अर्थात तेरे विना स्वर्गाहोक्षक मुससे क्यांटे तेरे तेरे विना स्वर्गाहोक्षक मुससे क्यांटे हों। (किंतु हुएस प्रतीत होंगे) यहां "स्वर्गेटोक्ष सुसेन किंतु हुए प्रतीत होंगे) यहां "स्वर्गेटोक्ष सुसेन किंतु हुए प्रतीत होंगे) यहां "स्वर्गेटोक्ष सुसेन किंतु हुए प्रतीत क्यांटा प्रतीत होंगे। स्वर्गेट प्रतीत होंगे। स्वर्गेट प्रतीत किंतु आनेसे यह पारा वित्र हुएस स्वर्गेट प्रतीत हुएस स्वर्गेट प्रतीत हुएस स्वर्गेट प्रतीत हुएस स्वर्गेट स्वर्गेट प्रतीत हुएस स्वर्गेट स्वर्गेट प्रतीत हुएस स्वर्गेट प्रतीत हुएस स्वर्गेट स्वर्य स्वर्गेट स्वर्गेट स्वर्गेट स्वर्गेट स्वर्गेट स्वर्य स्वर्य स्वर्गेट स्वर्गेट स्वर

(८०) वाग्यदार्छकार-परि० ४.

एकत्र पत्रि स्वकलत्रवक्तं नेत्राप्टतं विवि-तमीक्षमाणः ॥ पश्चात्पपौ सीधुरसं पुर-स्तान्ममाद कश्चिद्यद्वसृमिपालः ॥ २९॥

स्तान्ममाद कांश्रेद्यदुर्भामेपालः ॥२१॥ टीका-कश्चित यदुर्भामेपालः स्वकलववकं नेवाः

मृतम् एकत्र पात्रे विवितम् ईक्षमाणः (सन्) प्रस्तात् ममाद् पश्चात् सीधुरसं पपा इत्यन्वयः ॥ यद्वभूति-पालः यद्वराजः स्वकलत्रवक्षं स्वकीयकाताम्रस्यं नेत्राः

पालः पदुराणः त्वकळजनक स्वकायकातासुख नजाः मृतं प्रेमाश्च एकत्र पाने एकस्मिन् पानपात्रे विवितं प्रतिविवीभृतं पश्यन् पुरस्तात् मद्यपानात् पूर्वम् एव ममाद मदोन्मत्तो बभूव अत्र पूर्वाद्वे त्र इत्यक्षरस्य

मनाद मदान्मता वभूव अत्र पूर्वाद्ध त्र इत्यक्तस्य धनःधनरावृत्तिः उत्तरार्द्धे पकारस्य तस्मात् छेकानुः प्रासः॥ २३ ॥

प्रासः ॥ २१ ॥ अपं-कोई यदुराजा अपनी खांक ग्रसको और नेत्रामृत (प्रेमाश्चपत)को एकही पात्रमें प्रतिविचित देवकर मचपानसे पहछे ही मदोन्मत्त होतालया और पीछंस सीखरस (मच)

पहले ही मदोन्मत्त होताअया और पीछंसे सीछरस (मच) पान किया यहां पहले पदोंमें त्रकारक बारवार आश्वतिसे और पीछले पदमें पकारकी आष्ट्रति होनेसे अतत्तद छेकानुमास हुया ॥ २१ ॥

(भाषा) दोहा-पुनि पुनि आयत पर्ण जह सीः छेकाद्रभास। यह छाटाद्रभास हो जहँ पुनि पद हो सास ॥ १ ॥ (छेकाद्र-भासका ददाहरण दोहा)-कच रचना छाट पीपका सुन सचन पिछास। । सुस हम सुसदायक परस्त तिय हिप होत हुतास ॥ २ ॥ (छाटाद्रमसुस्त वदाहरण दोहा)-पिपपारी

सान्वय संर्व टी॰ भाषाटीकासहित। (८१)

जो संग है। तिन्हे स्वर्ग किहँ काम। विषप्पारी जो संग नहिं तिन्हे स्वर्ग किहँ काम॥ ३॥

यमक्लक्षण ।

स्यात् पादपदवर्णानामाद्यतिः संयुता-युता ॥ यमकं भिन्नवाच्यानामाद्रिमध्यां-तगोचरम् ॥ २२ ॥

टीका-भिन्नवाच्यानां पादपदवर्णानां संयुतासंयुता आवृत्तिः आदिमध्यातगोचरं यमकं स्वात् इत्यन्वयः॥ - भिन्नवाच्यानां पृथगर्थानां पादपदवर्णानां पादः छोक-स्य चतुर्थाशः पदं विभक्तयंतं शम्दात्मकं वा वर्णाः असराणि तेषां संयुता मिलिता असंयुता छिन्ना आवृ-

असराण तपा सपुता मिलिता असपुता छिन्ना आहु-तिः पुनक्तिः यमकं तत् आदिमध्यांतगोचरम् आदि-गतं मध्यगतम् अंतगतं च तस्य पादपदवर्णभेदेन संपुतासंपुतभेदेन आदिमध्यांतगोचरत्वभेदेन च अणदश भेदाः यमके पृथयर्थत्वं लाटात्रमासे चैकार्थ-त्वमिति भेदः॥ २२॥

अधादरा भदाः यभके पृथवायात्र काटासामा चवावा स्विमिति भेदः ॥ २२ ॥ अपं-पृथक अपंवाले पाद पद और असरांकी संयुत असंड रूपसे और असंयुत किन्न रूपत और अंतरत होतां पाद स्थानक रहतेंद्र यह आदिगत मच्यात और अंतरत होतां है पाद स्थानक एक परण (चतुर्याद्य) को कहतेंद्र विभव्यते अपया शब्दक्षों कहतेंद्र और वर्ण असंख्त कहतेंद्र हूँ अस्य पाद पद वर्ण अद्या तथा संयुत असंयुत सेदसे तथा आद (८२) वाग्भडालंकार-परि० ४.

. मध्य और अंतगत भेद्से यमक १८ प्रकारका हातीह यमकर्मे अन्य अर्थवाले पद ,होते हिं और लाटानुमासमें प्राप पदींका अर्थातर होना आवश्यक नहीं यही भेद हैं ॥ २२ ॥

_{षाद्यमक्के} उदाहरण । दूर्या चक्रे दयां चक्रे॥ सतां तस्माद् भवा[,]

न्त्रित्तम् ॥ २३ ॥ टीका-भवान् द्यां चक्रे तस्मात् सतां वित्तं दर्याः

चके इत्यन्त्रयः ॥ दयां चके दयां कृतवान् तस्मात सतां साधूनां वित्तं धनं दयांचके दत्तवान् अत्र प्रथम-पादस्य द्वितीयपादे आवृत्तिः (चूडा नाम चतुरक्षरा

वृत्तिः) ॥ २३ ॥ अर्थ-आपने दया करा निसंस साधुवोको धन दान दिया

(एफ जगह दर्याचनेका अर्थ दया करी हुसरी जगह दिया) इसमें प्रथम पादकी भाशति हुसरेमें डुई अर्थाद पराप्रथम चरण दूसरे चरणकी जगह फिर कहागया परंच अर्थ पलट गया यह पूडानाम खंदीह इसका ४ अक्षरका एक चरण होताहै ॥ २३ ॥

यशस्ते समुद्रान्सदारोरगारेः ॥ सदा-रोरगारेः समानांगकांतेः ॥ २४ ॥ द्विपा-मुद्रतानां निहास त्विमद्र ॥ मुदं भी

धराणामुदम्भोधराणाम् ॥ २५ ॥ दीका-चरगोरः समानांगकातेः आरोरगारेः ते सव यशः सदा समुद्राव आर इत्यन्वयः ॥ चरगोरेः गरुः डस्य समाना अंगकांतिः यस्य स उरगोरः समानांग कांतिः तस्य आरोरं दारिद्यं गन्छंतीति आरोरगाः ता-दृशा अरयः शत्रवो यस्य स आरोरगारिः तस्य आरो रगारेः ते तब सत् श्रेष्ठं वर्तमानं च यशः सदा निरं-तरं सम्रद्राच आर अगमत् इत्यर्थः अत्र द्वितीयपाद-स्य ततीयपाँदे आत्रत्तिः सोमराजीनाम छंदः पडक्षर पदात्मकृष् ॥ २४ ॥ भो इंद्र त्वम् उद्भोधराणां धरा-णाम उद्धतानां द्विषां सदं निहंसि इत्यन्वयः ॥ हे इंद्र (हे शक) उद्गताः अंभोधराः मेघाः येपु ते **उदंभोधराः तेपाम् उदम्भोधराणां धराणां पर्व-**तानाम् उद्धतानां उद्दप्तानां द्विपां शत्रूणां सुदं हर्प निहंसि नाशयासि पशच्छेदादिति भावः अत्र तृतीयपादस्य चतुर्थपादे आवृत्तिः इदमपि पडक्षर चरणात्मकं सोमराजीछंदः ॥ २५ ॥

अर्थ-उरगारि (महडके) समान अंगकी कांति (अर्पात् सुवर्णके रंगकेसि अंगकांति) है तुम्हारी और आरोर (दिदि) को मात्र होने वार्लेंड ऑर (शञ्ज) तुम्हारे ऐसे जो आप सो आपका सुंदर यश सदा समुद्रों पर्यंत गमन करता भया यहां इसरे पदकी आद्वति तिसरे पदमें पूर्ण क्एसे है और यह छह असरके चरण वाल सीसराजी खंद है।। रथा। मार्चे दंद उदत (मक्छ) और ऊषर छाय हुवेंह मेप जिनके ऐसे जो (आपके) शञ्ज पर्यंत हैं उनके हुवेंको नाश करते हो (अर्थात पर्यंतोंके पक्ष छेदन करके आपने उनका हुवें और दर्यं नाश कर (88)

दिया है) यहां तीसरे पादकी प्ररी आश्वति चौथे पादमें है तथा यह भी छहवर्णके चर वाला वही सोमराजी छंद है ॥ २५ ॥

विभातिं रामा परमा रणस्य विभातिरामा परमारणस्य । सदैव तेऽजोजितराजमान सदैवतेजोजिंतराजमान ॥ २६॥

टीका-हे अजोर्जितराजमान हे सदैवतेजोर्जितराज मान परमारणस्य ते रणस्य अतिरामा परमा रामा विभा सदा एव विभाति इत्यन्वयः ॥ अजः विष्णुः तस्य इव अर्जितं वल्लं तेन राजमानः तत्संबुद्धौ हे अजो जितराजमान ! सदैवं सभाग्यं यत् तेजः प्रतापः तेन अर्जितः संपादितः राजस हपेषु मानः सन्मानः येन तत्संबुद्धौ ह सदैवतेजोर्जितराजमान ! परमारणस्य शञ्चवातिनः ते तव रणस्य संग्रामस्य परमा बत्कृष्टा रामा मनोहारिणी रामं रामचंद्रं परशुरामं वा आति-क्रम्य वर्तते इति अतिरामा विभा शोभा सदा एव विभाति शोभते अत्र प्रथमपादस्य द्वितीये हतीयस्य चतुर्थे आवृत्तिः॥ २६॥

अप-हे अनोजितराजमान अज विच्छु तिसक बछके समान बरुकरके राजमान और भाग्य करके सहित जो तेज प्रताप हैंसे करके मान क्यिक राजायोंने सन्मान जिसने ऐसे जो आप पर (शञ्च) के मारनेवाल हम्हारे राजधा परग्रुरामके संजामस अधिक परम मनेहारिणी दीप्ति सदाही शोभाको प्राप्त होती है इसमें पहले पादकी इसरे पादमें और तीसरेकी चौथेमें आयुति है।। २६॥

सारं गवयसान्निध्यराजि काननमग्रतः॥ सारंगवयसांनिध्यदारुणं शिखरे गिरेः२७ टीका-गिरेः शिखरे अमतः सारं काननम् अदा-

रुणम् कथंभूतं काननं गत्रयसात्रिध्यराजि पुनःकथं भूतं काननं सारंगवयसांनिधि इत्यन्वयः ॥ गिरेः पर्व-तस्य काननं वनं सारम् उत्कृष्टम् अदारुणं कोमलं रम्यमित्यर्थः गवयानां गोसदृशमृगाणां सान्निध्यं सामीप्यं तस्य राजिः पंकिः यत्र तत् गवयसानिध्यरा जि सारंगाणां वयसां पक्षिणां निधि सारंगवयसां

निधि अञ्जयभगादस्य तृतीयपादे आवृत्तिः ॥ २७ ॥ भर्थ-पर्वतके शिखर पर अगाडी मुक्य वन कोमल अर्थात् रमणीक है केसा वह वन है गयय गोके समान मृग (नील-गाय) उनका साबिच्य समीपता अर्थात् एकत्रित समूह उसकी है पाति जिसमें और फिर कैसा वह बनी कि सारंग जी पक्षी

रनका निधि अर्थात् स्थान है यहां पहले चरणकी तीसरे चरणमें आयुर्ति है ॥ २७ ॥

आसन्नदेवा न रराज राजिहचेस्तटाना-मियमत्र नाद्री॥ कीडाकृतो यत्र दिगंत-नागा आसन्नदे वानरराजराजिः॥ २८॥

(८६) वाग्भटालंकार-पारे॰ ४.

टोका-अत्र अद्देश उद्देश तटानाम् इयम् आसत्रदेश वानरराजराजिः राजिः न रराज (इति) न (अपितु रराज एव) यत्र नदे दिगंतनागाः कीडाकृतः आसग् इत्यन्वयः ॥ अद्देश पर्वते उद्देश तटानाम् उत्रततटानी शिखगणामित्यर्थः राजिः पंकिः । आसत्राः संनिद्दिशा देशा यत्र मा आसत्रदेश वानराणां राजानः नेपां राजिः समृद्धो यत्र सा। वानरराजराजिः एवंधूता राजिः रराज एवं दिगंतनागाः दिगगजाः । अत्र प्रथमपादस्य चतुर्थे आग्रतिः ॥ २८ ॥

अपं-इम पर्यंतमं यह केंच शिगरों की पंकि जहां देवता निवास करते ये और वानरों के राजावों (अपाँव भेष्ठ वानरों हा जहां समुद्र था भा शोशाको बात नहीं ऐसी नहीं) हिन्तु शांभाको बातहीं ही रही था और जहां ही तदियों में बड़े बड़े दिग्यन हाथी कींडा करते ये इसमें वहते वादकी और पार्से आकृति है ॥ २८ ॥

अमरनगरस्मराश्रीणां प्रपंचयति स्फुर-त्मुरतम्चये कुवांणानां वलक्षमं रहसम् ॥ इह मह सुररायांतीनां नरेश नगेऽन्वहं सुरतम्बये कुवांणानां वलक्षमरे इमम् ॥ २९ ॥

🐪 टीका-हे वलक्षम नरेश इह नगे स्फुरत्सुरतरुचये षाणानां कुः अन्वहं सुरेः सह आयांतीनां वलक्षं इसम् अरं कुर्वाणानाम् अमरनगरस्मेराशीणां सुरत रुचये रहसं प्रपंचयति इत्यन्वयः ॥ वले पराक्रमे क्षमः समर्थः तत्संबुद्धिः हे वलक्षम इह नगे अत्र पर्वते स्फुरन् सुरतहृणां चया यस्मिन् तथाभूते पर्वते बाणानां बाणवृक्षाणां कुः भूमिः अन्वहं प्रतिदिनं सुरैः देवेः सह आयांतीनाम् आगच्छंतीनां वलक्षं धवलं हसं हास्यम् अरम् अत्यर्थे कुर्नाणानाम् अमरनगरस्य सुरपुरस्य सेंभराक्षीणां मंदास्मितलावण्यलोचनानां सुंद-रीणां सरांगनानामित्यर्थः सरतस्य संभोगस्य रुचिः वांछा तस्ये सरतम्बये सरताभिलापाय इतिभावः। रंहसम् आवेगं प्रपंत्रयति प्रकटयति (वलक्षः) धवलः हसः हसनम् अरम् अलमर्थे अत्यर्थम्। इति शब्दस्तोम्) अत्र द्वितीयपादस्य चतुर्थे आवृत्तिः ॥ २९ ॥

अपं-हे यहसम नरेस इस पर्यंतमं नहां फुरायमान फल्प-प्रसांका संचय है वाजपुत्तांकी पृष्णी निन्य देयताओं के साथ आनेवाही और अन्तत ठउमक हास करनेवाही स्वयं होकफी सुसकरात होननोवाही द्वंदिर्योक्त संभोगकी अभिष्टापाके छिये रहस आवेग अर्थात तमंत्र मण्डर करता है। यहां दूसरे चरणके चीमें चरणमें आयृति है। ३९॥

गंभारामा कुरवक ! कमलारंभा रामा करवककमेला ॥ रंभागमा ऽकुरवक कमलाऽरं भारामाऽक्रवककमला॥३०॥ टीका-हे अवक । रंभारामा कुः अरं रामा कर्थ-भूता कुः कमलारंभा पुनः कुरवककमला पुनः रंभारामा पुनः अकुः पुनः अवककमला पुनः भारामा पुनः अकुरवककमला इत्यन्वयः ॥ अवति रसतीति अव-कः तत्संबुद्धिः हे अवक रंभारामा कः रंभाणां कदली-नाम आरामो वाटिकाविशेषः यस्यां सा रंभारामा कः पृथिवी अरम् अत्यर्थे रामा रमणीया इत्यर्थः कथं भूता कः कमलारंभा कमलानां पंकजानाम् आरंभा यंत्र सा कुरवक्कमला कुरवकाणां तदाख्यवृक्षाणां कमला लक्ष्मीः शोभा यत्र सा रंभारामा रंभा देवांगना एव रामा रमणार्थ विद्यते यत्र सा अकुः न क्रांत्स-ता शोभना इत्यर्थः अवककमला वकैः वकपश्चिविशेषैः रहितं कमलं जलं यत्र सा भारामा भाभिः कांतिभिः रामा रमणीया अकुरवककमला कुत्सितो रवः शब्दः कुरवः न कुरवः अकुरवः अकुरवं कुर्वन्ति इति अकुर-वकाः तादशाः कमला मृगा हरिणाः यत्र 🧢 । अत्र प्रथमपादस्य द्वितीये तृतीये चतुर्थे

धी० ६०) "रंमा" कदर्ज ेे. इन े "कमछा" ८६० े. सारसपिदंगध पुंसि (इतिशब्दस्तोमे भर्ग-रै अवक है रक्षक करहीं रुसिंक आराम अर्थात पर्गीये वाटी पृथियों अन्यन्त रमणींक है किसी है वह पृथियों कि कम-होंगा है आरंभ मनताव नित्तमें और कुरककर पुरोंकी हो।भा करके सेयुक्त है तथा रंभा देवीवना है शमा रमणींच नहांपर तथा अनु अर्थात कुलित नहीं किन्तु सुंदर है और पर्याहत निभेश है क्मल अर्थात कल नित्तमें तथा भा कीति करके रम-पींक है तथा सुंदर हान्द करनेवाल अर्था मुंदर बाल बलते वाले कमल (अर्थात हरिका) हैं नित्तमें। इस ही।क्सें प्रथम पादकी इसेर पादभे तथा तींमरे और चीचे वादमें आहति है कमल हान्दका अर्थ कमल तथा गल तथा मृत है।। ३०॥

पद्यम्क ।

हारीतहारी ततमेप धत्ते शेवालसेवाल-सहंसमम्भः॥ जंवालजं वालमलं दथानं मंदारमंदारववायुरिद्रः॥ ३१॥

टीका-एपः हारीतहारी मंदारमंदारवराष्ट्रः अहिः
तर्त शेवाळसेवाळसहंसं जंबाळजं वाळमळं द्यानम्
अंभः धत्ते इत्यन्वयः ॥ हारीतानां पश्चिविशेषाणां
हारः अस्य स हारीतहारी मंदाराणां करपृष्टशाणां मंदारवो मंदः आरवा गतिविशेषः शब्दो वा यस्य तथा
भूतो वायुः यस्मिन् तथोकः एषः पुरो दृश्यमानः
अद्विः पर्वतः तत्त विस्तृतं शेवाळन सेवायाम् अलसाः
मंथरा हंसा यत्र तत्त् शेवाळसेवाळसहंसं जंवाळजं

(24)

रंभारामा कुरवक ! कमलारंभा रामा कुरवककमला ॥ रंभारामा ऽकुरवक कमलाऽरं भारामा ऽकुरवककमला॥३०॥

टीका-हे अवक ! रंभारामा कुः अरं रामा कथं-भूता कुः कमलारभा पुनः कुरवककमला पुनः रंभारामा पुनः अकुः पुनः अवककमला पुनः भारामा पुनः

पुनः अकुः पुनः अनककमला पुनः भारामा पुनः अकुर्वककमला इत्यन्वयः ॥ अनित रक्षतीति अन-कः तत्त्तंबुद्धिः है अनक रंभारामा कुः रंभाणां,कद्ली-नाम् आरामो वाटिकाविशेषः यस्यां सा रंभारामा कुः प्रथिवी अरम् अत्यर्थ रामा रमणीया इत्यर्थः कृथं

भूता कुः कमलारंभा कमलानां पंकजानाम् आरंभा यत्र सा कुरवककमला कुरवकाणां तदाख्यवृक्षाणां कमला लक्ष्मीः शोभा यत्र सा रंभारामा रंभा देवांगना एव रामा रमणार्थ विद्यते यत्र सा अकुः न कुत्सिः ता शोभना इत्यर्थः अवककमला वकैः वकपशिविशेषः रहितं कमलं जलं यत्र सा भारामा भाभिः कांतिभिः रामा रमणीया अकुरवककमला कृत्सितो रवः शब्दः

वंकाः ताहशाः कमला घृगा हरिणाः यत्र सा । अत्र प्रथमपादस्य द्वितीये तृतीये चतुर्ये चाद्यतिः ॥ ३० ॥ (फे॰ ३०) "भा" करणे देशातक "ध्या" करेशा गीतारि करानेतरम्य "कत्रय" व्यवीयरीमाव"क्यव्य" वेकर्व वर्षकं कर्मन्य

करवः न करवः अकरवः अकरवं क्रवंन्ति इति अकर-

रा सारमनिरंगच पुनि (रविशस्तर्गने) ।

भर्थ-है अवक है रसक कदिहाइसेंकि आराम अर्थात पर्गापे पारी पूपियों अपन रमर्णाक है बनी है वह पूपियों कि वमछांत्र है आरंभ मनताप निममें और व्यवक्रं पूसेंकी शोभा करके मंद्रक है साथ क्या है वीमना है सामा क्याणीय नहांवर तथा अनु अर्थात बुस्तित नहीं बिन्तु मुंदर है और प्रकारित निमंह है बमल अर्थात जल निममें तथा भा वांति वर्तक रमणीक है तथा मुंदर हारच करनेवाल अरथा मुंदर चाल चलनेबाल बमल (अर्थात हरिया) है निसमें । इस श्रीकंम प्रथम पादकी हमूरे पाइने तथा माति वर्तक स्मार्थ हमें अर्थात हरिया है निसमें । इस श्रीकंम प्रथम पादकी हमूरे पाइने तथा तीं सरे अर्थ पांच वादने अर्था है समल हम्यूका अर्थ कमल तथा जल तथा गुन है। है। है। है।

पद्यमक ।

हारीतहारी ततमेप धत्ते शेवालसेवाल-सहंसमम्भः॥ जंवालजं वालमलं दथानं मंदारमंदारववायुरद्रिः॥ ३१॥

टीका-प्पः हारीतहारी मंदारमंदारवराष्ट्रः अद्धिः
तर्त शेवाळसेवाळसहंसं जंबाळजं वाळमळं द्धानम्
अंभः धत्ते इत्यन्वयः ॥ हारीतानां परिविशेषाणां
हारः अस्य म हारीतहारी मंदाराणां करपृष्ठसाणां मंदारवो मंदः आरवे। गतिविशेषः शब्दो वा यस्य तथा
भूतो वाष्टुः यस्मिन् तथोक्तः एषः पुरो दश्यमानः
अद्धिः पर्वतः तत्त विस्तृतं शेवाळेन सेवायाम् अळसाः
मंथरा ६सा यत्र तत् शेवाळसेवाळसहंसं जंवाळजं

जैनालात् पंकात् शेनालाद्धा जातं वालं चूतनं मलं दथानम् एतादशम् अभः जलं निझरेरूपकं सरोरूपकं वा धत्ते धारयति । अत्र हारीतहारीत इत्यादि पदः

दयानम् एताहराम् अमः जलं निहारहप्यकं सराहप्यकं वा धते धारयति । अत्र हारीतहारीत इत्यादि पद-यमकम् ॥ ३९ ॥ अप-पह पर्वतं निहारर हारीतपहिषाँका हार (पंकि) है और कस्पृक्षोंका मंद नक्षनेवाला वायु नहार्पर है सा विस्तार-

पाले और मैबाल करके सेवामें (बलनेमें) मंद होरहे हैं हैत निसमें और जंबाल कीवड या सिवालसे उत्पन्न हुया तृतन मल धारण रिया है निसने ऐसे जल (सिरने या सरीवर रूप जल) को धारण करनेवाला है । इसमें हारीत हारीत इत्यादि पादके आदिमें पदयमक है ॥ ३१ ॥ निमितिराहल्लाकोर जावानी दिनश्रीमानी

नेमिर्विशालनयनो नयनोदितश्रीरभ्रांत बुद्धिविभयो विभवो ऽथ भृयः॥ प्राप्तस्तदे-ति नगरान्नगराजि तत्र मृतेन चारु जग-दे जगदेकनाथः॥ ३२॥ दीका-विशालनयनः नयनोदिनश्रीः अभ्रतिबुद्धिः

दीका-विशालनयनः नयनोदिनश्रीः अभतिचुद्धिः विभवः विभवः जगदेकनाथः नेमिः अथ नगरात् तव नगरातिः सृतेन प्रातः तदा भूषः चारु इति जगदे इन्यन्त्रयः ॥ नयेन नीतिमागैण नोदिता प्रेरिताः श्रीः एक्ष्मीपैन स नयनोदितश्रीः अभ्रोतायाः यद्धेः विभयो

यस्य म् अन्नतियुद्धिर्वभवः विगतः भवः मेमारा जन्मः मरणादिकृषा यस्य म् विभवः जगताम् एकनाथः सान्वय सं० टी० भाषाटीकासहित ।

जगदेकनाथः नेमिः नेमिनाथः नगराजि पर्वतराजोपरि मूतेन सार्थिना नगरात् पुरात् प्राप्तः तदा चारु जग-दे भद्रं जातमिति जगाद । अत्र जगदे जगदे विभवी

विभव इत्यादि पादमध्यगतपद्यमकम् ॥ ३२ ॥ अर्थ-विशालनेज विनय करके बेरित करी श्री जिसने और

अर्थात (हड़) मुद्धि है विभव ऐश्वर्य जिसका और नष्ट होगया है जन्ममरणादि संसार जिसका पेसे जगतक एक श्वामी नेमि-नाम जब नगरसे पर्वतराज (गिरनार) पर सारधीने पहुँचाये तेष पारंपार बहुत शेष्ठ हवा बहुत अच्छा हुया वेसा कहते भंप पहां जगदे जगदे विभवो विभव इत्यादि पदयमक चरणींके ।

यद्वपांतिकेषु सरलाः सरला यदन् चल-न्ति हरिणा हरिणाः ॥ तदिदं विभाति क-मलं कमलं मुदमेत्य यत्र परमाप

रमा ॥ ३३ ॥

मध्यमें हैं ॥ ३२ ॥

टीका-तत् इदं कमलं विभाति यद्वपतिकेषु सरलाः सरलाः यत् अनु हरिणाः हरिणा उचलंति यत्र रमा कमलम् एत्य परं मुद्रम् आप् इत्यन्त्रयः ॥ कुमलं जलं (सलिलं कुमलं जलम् इत्यमरः) उपोति-केप समीपेषु सरलाः धूपकाष्ठवृक्षाः सरला ऋजवः दरिणाः मृगाः हरिणा वाषुना समम् उचलंति उद्गच्छेति कमलं पंकजं रमा लक्ष्मीः सुदं हर्षम् ।

अत्र सरलाः सरलाः इरिणा इरिणा कमलं कमलं परमा परमा इति पादांतगं पदयमकम् ॥ ३३ ॥

अर्थ-पह जल शोभाको प्राप्त होरहा है जिसके समीपें सरल (सींघ) सरलके (रालके) १६६ हैं और जिसके पास हिरण हवाके समान दोडते हैं और जहां लक्ष्मी कमलको पात होकर परम आनंदको प्राप्त होती है। यहां सरला: सरला: हीणां दरिणा: कमलं कमलं परमा परमा पादांतगत पदयमक है ॥३३॥

कांतारभूमी पिककामिनीनां कां तार-वाचं क्षमते स्म सोडुम् ॥कांता रतेशे-ऽध्वनि वर्त्तमाने कांतारविदस्य मधोः प्रवेशे ॥३४ ॥

टीका-कांता रतेशे अध्वित वर्त्तमाने (सित)कांताग्रविदस्य मधोः मवेशे कांतारभूमी पिककामिनीनां
कां तारवाचं सोढुं क्षमते स्म इत्यन्वयः ॥ कांता कामिनी रतेशे रतस्य संगमस्य इशः रतेशः तिस्मिन्
कांते अध्वित मागें वर्त्तमाने मोपिते सित कांतानि
मनोहगाणि अर्रविदानि पंकजानि यत्र तथाभृतस्य
मयोः चैत्रस्य प्रवेशे कांतारस्य वनस्य भूमी वनप्रदे
शे पिककामिनीनां पिकांगनानां कां तारवाचं उचींनेनोह्नां वाणीं सोढुं सहनं कर्तुं । क्षमते स्म (न कापि
सोठुं क्षमते इत्यथंः)। अत्र पादानामादिषु कांतारित
पदात्रिः ॥ ३४॥

अपं-कामिना जब कि कोत मार्ग (विदेश) में हो पूछे मनोहर कमछो युक्त धेव (वसंत) के प्रवेश समय बन प्रदेशमें विकोगनाओंको कौनसी ऊंची और मनोहारिकी वार्णाको सहन करनेको समर्थ होसकीहै (अयांत नहीं होसकी)। इसमें चारों पादोंक आदिमें बोतार शुम्दकी आवृत्ति है ॥ ३४ ॥

चकार साहसं युद्धे धृतोष्ठासा हसं च या॥ दैन्यं वा साहसं प्राप्ता हिपां सोत्सा-ह संहतिः॥ ३५॥

टीका-हे सोत्साह ! या द्विपां संहतिः धृतोछासा (सती) युद्धे साहसं चकार सा हसं देन्यं वा साहसं प्राप्ता हत्यन्वयः ॥ द्विपां शक्रुणां संहतिः सेना धृतोछासा धृतः उछासो यया युद्धे साहसं विकमं सग्धः वर्षे च चकार सा सेना हसं हास्यम् अथवा देन्यं दीनत्वं कातय्यंमित्यर्थः अथवा साहसं दंई वंधना-दिकमिति भावः प्राप्ता प्राप्तवती । अत्र चतुषुं चरणेषु मध्ये साहसम् इति पदस्यावृत्तिः ॥ ३५ ॥

अपं-दे संत्साह उत्साह युक्त राजन जो शबुमोंकी फीन जोतामें आकर युद्धमें साहस (उद्योग तथा पराक्रम) करती भई सी हास्यके तथा दीनताकी तथा वंधनादिक देवको मान होती भई । यहां साहसे पद चारी चरणोंकें आया है उससे मध्यान पर्यक्षक है ॥ ३५ ॥ गिरां श्रूयते कोकिला कोविदारं यतस्त-हनं विस्फुरत्कोविदारम् ॥ मुनीनां वस-त्यत्र लोको विदारं न चञ्चाधचक्रं कृती-को विदारम् ॥ ३६ ॥

टीका-अत्र गिरां कोविदा कोकिला अरं श्र्यते च विदारं (यथा भवति तथा) सुनीनां लोकः वसति यतः विरुफ़रत्कोविदारं तत् वनं विदारं व्याधचकं कृतीको न इत्यन्वयः ॥ अत्र वने गिरां वाचां की विदा पंडिता कोकिला अरम् अत्यर्थ श्रुयते च वि-दारं दाररहितं यथा भवति तथा मनीनां लोकः मुनि समृहः वसति यतः कारणात् विस्फुरत्कोविदारं विस्कुरं तः विकसंतः कोविदाराः कांचनारवृक्षा यत्र तथाभूतं तद्वनं विदारं वीच पश्चिणः दारयति नाशयतीति वि दारं पश्चिनिनाशकं व्याधचकं हिंसकवंदं कृतीकः कृत म ओकः स्थानं येन तत् तथाभूतं न तत्र वनेऽस्ती-त्यर्थः । अत्र पादांते विदारशब्दावृत्या अंत्यपद यमकम् ॥ ३६॥ अर्थ~इम नगर याणीके विद्वान कोकिला ग्रंच सुनाई देते हैं

रकुरापमान कजनावके बुश्लीवाष्टा यह वन पश्लिवनाशक हिंगः कोंडा स्थान नहीं है । यहाँ चारों चरणीके अनमें कोविदार सम्द होनेसे अंप्यमक हुवा ॥ १६ ॥

और कांनारहित सुनियांका समुद्द यसता है इस कारणम

सान्वय सं॰ टी॰ भाषाटीकासहित। (९५)

सिंधरोचितळताग्रशङकीसिंधरोचितमु-पेत्य किन्नरेः ॥ कंदराजितमदस्तटं गिरेः कंदराजितग्रहश्रि गीयते ॥ ३७ ॥

निरः केद्रशाजितश्रहाश्र गायत ॥ ३७ ॥ टीका-सिंधुरोचितलतामशङ्कासिंधुरोचितं केद-राजितं केद्रशाजितश्रहश्र अदः गिरेः तटम् उपेन्य किन्नरेः गीयते इत्यन्वयः ॥ सिंधुराणां गजानाम् उ-चितः योग्या लुता तासाम् अये शङ्की तहिन्देशेषः

युत्र तथाभूता सिंधुः नदी तथा रोचितं शोभितं सिंधु रोचितलतामशङ्कीसिंधुरोचितं कंदराजितं कंदः मूल विशेषः राजितं पूरितं कंदराभिः ग्रहाभिः जिता ग्रहा-णां श्रीः शोभा के जन्म स्वाप्तिः स्वाप्तिः प्रदा-प्रवेतस्य तटम् स्व

पुत्रतस्य तटम् र त गानं कृयते इ फेदराजित कंदराजित इति आदियमकम् ॥ ३७ ॥ अर्थ-मिपुरों (हाथियों) के योग्य हता और उनके अगार्धा मारुर्धेक एस हैं निप्त सिंध नदीमें पेसी तर्दे करके सीचत अर्थात सोभित और करेंद्रों करके पूरित तथा कंदराजीकरके नाता है परीकी सोभा निसने पेसा नो यह पर्यंतका तट पही

अपात क्षास्त्र आर करहा करक पारत तथा करवाजाकर जोता है योग्ने क्षामा नाम पर पर्वता तर पर्व आरू क्वियांकरक गान किया जाता है। यहा तिपुर्वानित तिपुर्वाचित और केवराजित कावियमक के ॥ १०॥ चसन्सरीगोऽत्र जानो न कियादपर सरोगों य-दि राजहंसः॥भीतं करं को न करीति तिस्तिः

टीका-अस्मिन कलंकोज्ज्ञितकानने शैले कः सिद्धः कलं गीतं न करोति अत्र वसन् कश्चित् जनः सरोगः न परं यदि राजहंसः (तदा) सरोगः स्या-दिति शेषेणान्त्रयः ॥ कलंकेन दूषणेन उज्ज्ञितं वर्जिः तं काननं वर्न यत्र तस्मिन् कलंकोज्झितकानने शेले पर्वते कः सिद्धः कलं गीतं न करोति अपि त सर्वे एव मधुरगानं कुर्वन्ति अत्र पर्वते वासं कुर्वन् कश्चिदिप जनः सरोगः रोगयुक्तो न भवति अतीवस्वास्त्र्यकरोऽयं शेल इतिभावः परं परंत यदि अत्र राजहंसः वासं करोति तदा सरोगः स्यात् सरिस गच्छतीति सरोगः सरिस गत्वा कीडां करोतीत्यर्थः पर्वतीयं सरसापि युक्त इति भावः। अत्र सरोगः सरोगः कलंकः कलंक इति मध्यगतपदयमकम् ॥ ३८॥

(गंध्यं) मधुर गान नहीं करता है अयाँत सभी करते हैं और गढ़ी वमकर कोई भी मनुष्य मरोग (रोगयुक) नहीं होती (अयांत अतिस्थास्यकारक हे) परंतु यदि यदी रागर्डम विगाम कर ती यह मरोग (सर सोगर उसमें गमन करनेगाड़ा) होत अर्थात वटी मरोग भी हैं। यही पहले दें। परेंगें सरोग सरीग धीर विदेह दें। परेंगिं करोड़ करोज़ मध्यात पर्याप हैं। दें।।

अर्थ-इस कलंकरहित वनयुक्त पर्वतपर कीनसा सिद

जहर्वसंते सरसीं न वारणा वसुः पिका नां मधुरा नवा रणाः ॥ रसं न का मोह

नकोविदाऽऽर कं विलोकयंती वकुलाव विदारकम् ॥ ३९ ॥

टीका-वसंते वारणाः सरसीं न जहः पिकानां मधु-रा नवा रणाः वश्चः का मोहनकोविदा वृक्कलान विलो-क्येती (सती) विदारकं कं रसं न आर इत्यन्त्रयः॥ वारणाः इस्तिनःपिकानां कोकिलानां नवा नृतना रणाः शब्दाः वधः शोभंते । का काचित् अपि मोहने को-विदा मोहनकोविदा अथवा कामोहनकोविदा कामस्य **उद्दर्ग वितर्कः तस्मिन् कोविदा ज्ञानवती सुंदरी वकु-**लान् वकुल वृक्षान् विलोकयंती सती विदारकं विशेषेण दारकं चित्ते व्यथाकारकम् अथवा विशेषेण दारं करो-तीति विदारकः भर्ता तत्संबंधिनं के रसं न आर न प्राप आपि त प्राप एव । अन ननारणाः ननारणाः निदारकं

विदारकम् इति अंत्ययमकम् ॥ ३९॥

अर्थ-पर्संत ऋतुमें हन्ती सरोवरीको नहीं त्यागत हैं और पिकों (कोकिटों) के नवीन २ मधुर शब्द शोभाको प्राप्त हवा करते हैं (पेसी पसंत ऋतुमें) कामकी जी वितर्कना ससमें कोविद अर्थात जाननेवाली श्रंदरी बहुल (मोलसरी)के वृक्षोंकी देसती हुई कीनसं विदारक (दुःखदायक) रसको नहीं माप्त होती भई (अथवा दारक नाम भर्ता विशेष करके तत्संबंधि कीनस रसको न मात हुई अथोत वस्तमें सभा मकार संभोग रसको मात्र होती भई) । यहां पहले दी पदोंने नवारणा नवारण और विद्धरोंमें विदारकं विदारकं अंत्यवदयमक है ॥ १९॥

(९८) वाभग्नलंत्रार-परि॰ ४.

वरणाः प्रसूननिकरावरणा मलिनां वहं-ति पटलीमलिनाम् ॥ तरवः सदात्र शि-न्विजातरवः सरमश्च भाति निकटे

सुरुसः ॥ ४० ॥

देका-प्रमुननिक्रगरणाः वरणाः तस्यः अलिगे मिन्नां पदन्ते वदंति अत्र न मरमः निकटे सम् मरमः शिरितातस्यः भाति इत्यत्त्रयः ॥ प्रमुनि-न गत्ते पुरुषमुद्रानाम् आरम्णम् आत्वादने ययो स्यादशा परणा वरणास्याः सस्यः अलिनो अमरणी मिन्तो स्यामणा पदली विके वदंति धारपंतीस्यर्थः स्य मरमः मरीपरस्य निकट ममीप सरमः समितिः स्य मरमः सरीपरस्य निकट ममीप सरमः समितिः रितिताहरसः निकित्य सप्रस्यः जातः उपस्यिः सर सः इत्यत्वादस्य । ४०॥।

भनं नहान हृत्यांव आण्डाहित ता वरणाह वृत्त है थी भन्ने ये इत्याम वित्तवाहा शरण कर १९ व तीर पड़ी सरी-याचे निकट सटर मत्यादा सरम शाणा आनावी साम बीताही वर्ण करन याटक महिद तौर जनसे वरणा परणाहि हेशी महार सद करण ने सामनुष्युक्त है व हुन् श

यसायया दिजिङ्ग्य विभवः स्यान्मदः समः ॥ नयातयास्य जायतः स्पर्देयवः स्वत्मः ॥ ४० ॥

(99)

दीका-यथायथा द्विजिह्नस्य महत्तमः विभवः स्यात् तथातथा अस्य स्पद्धेया एव महत् तमः जायेत इत्यन्वयः ॥ द्विजिह्नस्य दुर्जनस्य अमे अन्य-त् पृष्टतः अन्यत् कथयतः तस्य द्विजिह्नत्वम्। महत्तमः अतिशयेन महात् इति महत्तमः विभवः संपत्तिः अस्य दुर्जनस्य तथातथा स्पद्धेया एव परामिमविच्छया

दुजनस्य तयातया रपद्यया एव परामिमनच्छ्या महत् तमःमहान् मोहः जायेत अत्र महत्तमः इत्यस्य द्वितीयुष्ट्वे चृतुर्थपारे च आवृत्तिः ॥ ९३ ॥

अर्थ-जैसे जैसे हुजैन मनुष्यका अभिक अभिक गिभव बहता नाता है वैसेही पैसे स्पद्धं पराई अपनतिकी इच्छा पद् घट्टर महान् मोह उपन होताह । यहां दूसरे और चीपे पादक अंतर्म महत्तम शन्दकी आश्विह ॥ ४१ ॥

दास्यति दास्यतिकोपादास्यति सति कर्करात् शापम् ॥ भवति भवति द्यन-यों भव स्तिमितस्तेन वदक त्वम् ॥४२॥

टीका-हे बद्धका दासी अतिकोपात् भवति फकंतान् आस्यति सतिशापं दास्यति हि अनर्थो भवति तेन त्वं स्तिमितो भव इत्यन्वयः ॥ ककंत्रान् चूर्णितपापा-णखंडान् आस्यति आ समंतात् अस्यति तिपति

परिचार जारचा जा समाग्र जरना हिमार असुक्षेपणे घातोः।स्तिमितः निश्वलो भव । अत्र संयुता-संयुत्तभेदेन दास्थित दास्यित इत्यादिपदानाम् आनुत्तिः ॥ ४२ ॥ अर्थ-है वालक तुम्होरे कंकर फंक्रनेसे दासी अतिकापसे शाप देगी (अर्थात् माली देगी) निससे अनर्थ होगा इस कारण नृ निश्चल रह अर्थात् चपलता मत कर। इसमें दास्पति दास्पति इत्यादि संयुत और असंयुत पदोंकी आश्चित है अर्थात प्रथम पादमें दास्पति दाम्पति और तृतीय पादमें भवति भवति आदिमं है इससे आदियमक है ॥ १२ ॥

कुलं,तिमिभयादेव करेणूनां न दीव्यति ॥ नदीव्यतिकरेऽणूनां प्राणिनां गणनापि का४३

टीका-नदीव्यतिकरे तिमिभयात् एव करेणूनां कुळं न दीव्यति अणूनां प्राणिनाम् अपि का गणना इत्यन्ययः ॥ नदीव्यतिकरे नदीसंगमे तिमिभयात् घृद्धमत्स्यभयात् करेणूनां कुळं इत्तिनां पूर्वं न दीव्यति न कीडति तदा अणूनां शुद्धाणां प्राणिनां जीवानां का गणना कापि न इत्ययं। तिमिः महाकायां मत्त्यः (इतिशव्दस्तोमः)। अत्र द्वितीयपादस्य व्यत्यामात् तृतीयपाद आगृतिः ॥ ४३ ॥

अर्थ -नर्शक मगम्भ वह मन्योंकि भयभ हिनियोशा समृद भा क्रीहा नहीं कर मका है (वहीं वर) छोटे २ जीवीकी ती क्या निनर्ता है। इसमें दूसरा पाद उलट कर तीसरेंसे हैं॥ ४३॥

गांगाम्बुधवरांगाभे। सुसुक्षुच्यानगोः े चरः ॥ पापार्तिहरणायास्तु सः सञ्जानो जिनः सताम् ॥ ४४ ॥ टीका-स गंगांबुधवलांगामो सुमुक्षुध्यानगोचरः सज्ज्ञानः जिनः सतां पापार्तिहरणाय अस्तु इत्य-न्वयः ॥ गंगाया अंबु गांगांबु तद्गत् धवला अंगस्य आभा यस्य स तथा सुमुक्षणां ध्यानेन गोचरः सुसु-क्षुजनसाक्षास्करणीय इत्यर्थः सत् समीचीनं ज्ञानं यस्य तथाभृतः जिनः सतां साधूनां पापार्तिहरणाय

पापञ्चेशानिवारणाय अस्त । इदं पद्यं प्रक्षिप्तं यमको-

दाहरणे नव भवति किंतु अनुप्रासोदाहरणं भवति ४८ अपं-व गंगानकः समान दरम्यक शरीरकी कृतिवाले और मुसुध नतिक भ्यानगोवर होनेपाले भेष्ट ज्ञानपुक्त जिन भगवान साधुकाँके पात्र कृत्र विवारण बरनेके लिये हो। यह श्रीक सेपक मालूम होता है यह पमकका उदाहरण नहीं हो स्था हिंतु अनुमास देकानुमासका उदाहरण है। १४ सा

जनमात्मकीर्तिशुश्रं जनयग्रहामधाम-दोःपरिघः॥ जयति प्रतापपूपा जयसिहः क्ष्मासृद्धिनाथः॥ ४५॥

हमाभृद्धिनाथः ॥ ४५ ॥

टीका-क्ष्माभृद्धिनाथः प्रतापपूषा उदामधामदोःपरिषः जयसिंदः जनम् आत्मकीर्तिशुभं जनयन्
(सन्) जयति इत्यन्वयः ॥ क्ष्माभृतां राज्ञाम् अधिनाथः अधीश्वरः प्रतापपूषा प्रताप पूषा मूर्य इव उदामधामदोः परिषः उद्दामं उत्कटं धाम तेजः यस्य तथा-

भूतं दोः भुजः एव परिचः भुद्गर इन यस्य तथोकः जयसिंहः जनं छोकम् आत्मकीर्तिज्ञुश्रम् आत्मनः कीर्तिभिः यशोभिः ज्ञुश्रं धवछं जनयन् कुर्वन सन्

जयित सर्वेत्किपेण वर्तते । अत्र प्रथमद्वितीयपादादी जन जन इत्यस्य तथा तृतीयचतुर्थपादादी जय-जय इत्यस्य आवृत्तित्वात् आद्यमक्म् ॥ १९ ॥ अर्थ-राजाओंके राजा सूर्य समान तेजस्यी और अति बल्धि हाथ जिनके अर्गलाखरूप हैं ऐसे जयसिंह अपनी कौतिंस कोकोंको रवेत करते हुए जयको बात होते हैं ॥ ४५ ॥ मामाकारयते रामा सासा सुदितमान-सा ॥ याया मदारुणच्छाया नानाहेला-मयानना ॥ १६ ॥ दीका-याया मदारुणच्छाया नानाहेलामयानना

मयानना ॥ ४६ ॥

टीका-याया महारूणच्छाया नानाहेळामयानना
सासा मुदितमानसा रामा मां आकारयते इत्यन्वयः
मदेन मद्यपनिन अरुणा रक्ता छाया कांतिः यस्याः
नानाहेळामयानना नानाहेळामयं विविधविळासपूर्णम् आननं यस्याः तथाधृता मुदितमानसा ॡएचित्ता सासा रामा कांता माम् आकारयते ममावाहने करोतीत्यर्थः। अत्र पादेषु आदो अंतेच मामासासा याया नाना इत्यादि वणावृत्तिः॥ ४६॥

अर्थ-जो जो मधायान करके लाल पहनवाली और नाना मकारणे हेलामप मुख्याली होजाती है सो सो की प्रस्तवित होकर मुझे पुलाती है। पहाँ सब चरणोंके आदि और अंतमें मामा तथा सासा मामा और नाना वर्णोंकी आदानि होनेसे पर्ण-प्रमुक्त हुना ॥ ४६॥

(भाषा) दोहा-अर्थ पलट आवत बहुरि, जहां वर्ण पद पाद ! यमक ताहिको कहत हैं, अंत मध्य अह आद ॥ १ ॥

इति नामगाजेकोरे चतुर्थपरिष्ठेदस्य पूर्वर्दम् ।

अथार्थालंकाराः।

स्वभावोक्तिः पदार्थस्य सिकयस्याकिय-स्य वा ॥ जातिविंशेपतो रम्या हीने तत्रार्भकादिष्र॥ ४७॥

टीका-सिकयस्य अकियस्य वा पदार्थस्य स्वभा-वोक्तिः जातिः तत्र द्वीने अभैकादिष्ठ विशेषतः रम्या इत्यन्वयः ॥ सिक्तयस्य चेतनस्य अकियस्य जडस्य वृक्षादेः स्वभावस्य चेक्तः कथनं सा जातिनां मालंकारः एपा स्वभावोक्तिशब्देन प्रायशो व्यवद्विषते । सा स्वभावोक्तिः द्वीने निकृष्टे तथा अभैकादिष्ठ वालादि-पु विशेषतः रम्या रमणीया ॥ ४०॥ अपं-क्रियावान (चैतन्य) तथा क्रियारहित (जह युसा-दिक) पदायोंके स्वभावका वर्णन हो उसे जातिनामक अयया स्थायोक्ति नामक अयोर्छकार कहते हैं यह हीन तथा बालका-दिकमें विशेष स्मर्णक होता है ॥ ५७ ॥

वर्हावलीवहलकांचिरुचो विचित्रभूर्यतः चारचितचारुदुकुललीलाः ॥ ग्रंजाफलः प्रिथतहारलताः सहेलं खेलंति खेलगतः / योऽत्र वने शवर्थः ॥ ४८ ॥

टीका-अत्र वने वर्हावलीवहलकांचिरुचः विचित्र भर्यत्वचारचितचारुद्रकुललीलाः ग्रांजाफलम्थितहार-लताः शवर्यः सहेलं खेलगतयः खेलाति इत्यन्वयः ॥ बर्हावली मयूरपिच्छानां श्रेणी सा एव वहला विशा-ला काची मेखला तया रोचंते इति वहांवलीवहल-कांचिरुचः विचित्रभूर्यत्वचा विविधवर्णभूर्यवृक्षस्य बल्कलेन रचिता दकलस्य पहस्य लीला याभिः ताः गंजाफलेः यथिता हारस्य लता याभिः तथोक्ताः शव-र्यः भिल्लनार्यः खेलगतयः खेले कीडायां गतिर्यासां तथाभृताः सत्यः सहेलं सविलासं खेलंति कीडंती-ेत्यर्थः । अत्र हीनानां भिल्लवालानां स्वभावस्य कथन-त्वात स्वभावोक्तिरलंकारः ॥ ४८ ॥

सान्त्रय सं॰ टी॰ भाषाडीकासहित ।

अर्थ-यहाँ वनमें भोरपंसीकी पॉकिकी भेखरा (तगडी शोभित और विनित्र भीनवत्रमें रहामी प्रार्थित सीना रचे विरमितियासे मुख रमाम है हारकी छड़ी निन्हाने देशी भिद्धी मुत्या की हेलापुंचक संस्था मन समापे हुने संस्ती है। य हीननाति भिद्धवालाजीके स्वभावका १८४न होनेसे स्वभावी भलंकार हुवा ॥ ४८ ॥

पाकृत उदाहरण । आरत्तनेणभीसणवञ्जणुक्ता च्छि ॥ उद्धिसअवीमभुअवणिविणेवे

सी दसमुहो एमा ॥ ४९॥ दीका-(अस्य संस्कृतम्)आरक्तनयनभीपणग्दन

समृतः कुरंगाक्षि॥उद्धसितावशतिभुजयनविनिवशो दश छकः एषः ॥ अस्यान्त्रयः । हे कृतंगाक्षि एष दशमुनः आरक्तनयनभीपणवदनसमृहः उद्यमिनविशतिभुज-वनविनिवेशः इत्यन्त्रयः ॥ आरतः नयनः भीएणः भवंकरः बदनसमृही यस्य सःतथा उद्यक्तितो विशति थुजानां वनस्य विनिवेशी यस्य । सीतां प्राने करूनाः भित् राक्षस्या विकारियम् । अञ्च रायणस्य स्त्रभावः भ्यनत्यात् स्वमावोक्तिरलंकारः ॥ ४९॥ अपं-(सीताम विसी रासगीन वटा) हे कुरवालि ! यह

वण देशा है कि लाल लाल हरावने नेव युक्त दश सुरशावाला पण पता हा पर काल काल कराया पर के पता में सहित है। भीर हम के बढ़े बीस हार्योंडा समूह है। इसमें राहकों सपका बर्णन होनेसे रक्तावालि हवा ॥ ४९॥

(१०६) बाग्भटालंकार-परिं थे

(भाषा) जड अथवा चैतन्यका, स्वभाव वर्णन होइ। स्वभा-वोक्ति तिहे कहत हैं, जाति कहत हैं कोइ॥१॥(उदाहरण) छोचन लाल डरावने तापर तीसी सन । भयदायकवीसी भुना दशमुख ऐसो पेन॥२॥

उपमालक्षण ।

उपमानेन सादृश्यमुपमेयस्य यत्र सा ॥ प्रत्ययाज्ययतुल्यार्थसमासेरूपमे यता॥ ५०॥

टीका-यत्र प्रत्ययाव्ययत्त्यार्थसमासेः उपमानेन उपमेयस्य साहशं सा उपमेयता इत्यन्वयः॥ प्रत्ययेः यतिप्रभृतिभिः अन्ययैः इवादिभिः तुल्यार्थेः समतुल्या दिभिः तथा समासेः कर्मथारयबद्दबीह्यादिभिः उपमा-नेन रुपमीयते अनेन इति उपमानं तेन साहश्यज्ञान सायकेन उपमेयस्य उपमातं योग्यः उपमेयः तस्य सादृश्यं साम्यम् रपमेयता उपमा इत्यर्थः। वस्तुतस्तु उपमेयोपमानधर्मवाचकेश्वत्भिः पूर्णोपमालंकारः। एप उपमेयादिषु एकस्य द्वयोः त्रयाणां वा लोपात लहो। पमालंकारः । स चाष्टविधः तथाचोकं ऋवलयानंदे "वण्योंपमानवर्माणामुपमावाचकस्य च । एकहि॰ भ्यतुपाद ँभिन्ना छुनोपमाऽष्ट्या^शहति॥ यण्यः उपमेयः नेः इयोः मादश्यदेतुः मनोज्ञत्वशक्तत्वादिः वाचकः

इवादिशब्दः ॥५०॥

सान्वय सं॰ टी॰ मापाटीकासहित । (१००)

अर्थ-जर्दो प्रत्यव बत्त आदि और अन्यय इव आदिक तथा हुस्य सम समान आदि घाचक शन्दों करके तथा कर्मश्रारय पद्दमीहि आदि समास करके उत्पानवासे उपस्पर्धत समानता करी जाये तो उसे उपया अर्छकार कर्दते हैं प्रयानन यह कि (१) उपमेप (१) उपमान (१) धर्म (४) वाचक इन चारिक होनेसे प्रणापसार्वकार होता है और इनमेस किसी चंकले या

देशि या तैलके खोप होनेस छुनोपमा अर्डकार होता है (हुपर-खपानेदमें खुनोपमाक आठ भेद खिरो हैं) निसर्वा दरमा करी लगी उसे उपमेप पहते हैं जिसकी तुल्यता पर्णन करी जाने इसे उपमान कहते हैं और जी साहच्यानाव दोनोंमें पापा जांप इसे पर्म कहने हैं और जी समताधातक शब्द होता है उसे पायक फहते हैं जीसे जंदरमत उर्ज्यलं मुखं अर्थात बोदमा मेंदर सुरा है इसमें मुख उपमेप हैं चौद उपमान है सा बायक और सुंदर पर्म है श ५०॥

गत्या विश्वसमंदया प्रतिषदं या राजहं-सायते यस्याः पूर्णश्रशांकमंडलांभव श्रीमत्सदेवाननम् ॥ यस्याश्चातुकरोति नेत्रयुगलं नीलोत्पलांनि श्रिया तां कुंदा प्रदर्ती त्यजन् जिनपती राजीमर्ती पाः तु वः ॥ ५१ ॥ दोका-जिनपतिः तां कुंदाषदतीं राजीमर्ती त्यजन

वः पातु तो को या विभ्रममेदया गत्या मतिपर्दराजदे-सायते च यस्याः आननं सदा एव पूर्णशश्चिमडलग (१०८) बाग्भटालंकार-परि० ४.

इव श्रीमत च यस्या नेत्रपुगलं श्रिया नीलोत्पलानि अनुकरोति इत्यन्वयः॥विश्रमः मदोनमत्तस्य इव चेष्टा तेन मंदया गत्या प्रातिपदं पदं पदं प्रति राजहंसायते राजहंस इव आचरति आननं सुखं पूर्णशर्शांकमंड-लम् इवं पूर्णचंद्रविवम् इव श्रीमत् शोभायुक्तं नेत्रयुगलं श्रिया शोभया नीलोत्पलानि नीलकमलानि अनुक-रोति नीलकमलानीवाचरतीत्यर्थः अत्र प्रथमचरणे या (राजीमती) उपमेयः राजहंसः उपमानं मंदगति र्धर्मः इवार्थेक्यङ् प्रत्ययः वाचकः।द्वितीये चरणे आन-नम् उपमेयः पूर्णशशांकमंडलम् उपमानं श्रीमत् धर्मः इव वाचकः इतिपूर्णोपमालंकारः । तृतीयपादे नेत्रयुग-लम् उपमेयः नीलोत्पलानि उपमानम् अनुकरोति तुल्यार्थिकयावाचकः अस्य धर्मलोपत्वात धर्मेलुप्ता लुप्तोपमार्लकारः। कुंदामदती इत्यत्र दंता उपमेयः कुंदा त्रम् उपमानं धर्मस्य वाचकस्य च लोपात धर्मवाचक खता ब्रुतोपमा अलंकारः ॥ ५**१** ॥ अर्थ-जिनपति नेमिनायनी उस खुंदक्छीके समान दोती-

अर्थ-निनपति नैमिनायनी उस खुंदक्छीक समान दोती-वाली राजमतीको त्याग करते हुये तुम्हारी रक्षा करी फैसी राजमती कि जो मुलती हुई मेद मेद खालसे राजदंसकी भति आयरण करती है और जिसका सुख पूर्णमाके चंद्रमंडलके समान सुंदर है और जिसके दोनों नेथ सुंदरतामें नील कमलकी समानना करते हैं इस क्षांचके पहले पाइमें या (राजमती) तो उपमेप रे और राजदंस उपमान तथा मंद्रगति उभय प्यापी भर्म है और तुस्मतायोतक प्रत्यय (जो राजदंसायतेक साथमें है) यायक है हसी भति हसेर परवामें आनन (मुत्र) उपमेप हैं पूर्ण हाशांक मंडल उपमान है भीमत उभय स्थापी भर्म है पूर्ण हाशांक मंडल उपमान है मीमत उभय स्थापी भर्म है सीर हम साप्त पायक है हमसे पूर्णोपमा अलंकार हुवा और तीसरे परवामें नेजवुगल उपमेप मीलोपल उपमान और अव- षशीति वाचक है यह। साहस्य बोधक उभयम्यापी धर्म नहीं कहे जानेसे धर्मनुका अलेकार हुवा और वीस वाचक है यह। साहस्य बोधक उभयम्यापी धर्म नहीं कहे जानेसे पर्मनुका अलेकार हुवा अर वीस वाचक और पर्म दीके नहीं कहे जानेसे धर्मनुका उस लोका हुवा अर वीस वाचक और पर्म दीके नहीं कहे जानेसे धर्मनुका उस लाका हुवा भार शिंत हराहरणोंमें जानलेना। ॥ ५९ ॥

चंद्रबहदनं तस्याः नेत्रे नीलोत्पले इव ॥ पक्रविवं हसत्याष्टः पुष्पधन्वधनु श्रेवः ॥ ५२ ॥

टीका-तस्पाः पुष्पधन्त्रधनुर्धनः वदनं चंद्रवत् नेत्रे नीकोत्पर्छे इन ओष्ठः पकवित्रं इसति इत्यन्नयः॥ पुष्पधन्ना कामदेनः तस्य धनुरिव श्रूः यस्याः सा पुष्पधन्नधनुर्भूः तस्या अत्रापि धर्मकोपातनुत्रोपमा-संकारः॥ ५२॥

अर्थ-टस फामदेषके पनुष तुत्य पुष्टनीयाली संदरीका सुख पंदमाक समान है और दोगों नेव नोटि कमलके तुत्य हैं और हंड पके हुए विषका टबहाल्य करते हैं इस शोकमें समेव सा-इस बोपक पर्मका होन होनेंस हुत्तीयमा अलंकार है। ५२।

मारुतम् ।

मदभरिअमाणसस्मविणिचं दोखाअर स्स संसिणो च तह विरहे तीअ मुहं सं-कुइअं मुद्दअ कुमुअं व ॥ ५३ ॥

दीका-(अस्यसंस्कृतम्) मदभतमानसस्यापि नित्यं दोपाकरस्य शशिन इव तव विरहे स्त्रियाः सुखं संक्रचितं सभग । क्रमुद्रमित्र (अस्त्रान्ययः) हे सभग मदभूतमानसस्य अपि दोपाकरस्य शशिन इव तव विरहे स्त्रियाः सुखं कुमुद्दमित्र नित्यं संकृत्वितम् इत्यः न्वयः ॥ मदेन गर्वेण भृतं मानसं यस्य अथवा मदेन मद्येन भृतं मानसं यस्य पशे मदः कस्तुरी तां विभार्ति इति मद्भृतः मृगः स मानसे उत्संगे यस्य तथा दोपा-करस्य दोपाणाम् आकरः दोपाकरः तस्य चंद्रपक्षे दोपाकरः निशाकरः तस्यै तथा भृतस्य शशिन इव तव विरहे वियोगे स्त्रियाः मुखं कांतायाः मुखं कुमुद्दिमव संक्रीचतं चंद्रस्य विरहे कुमुदसंकोचनं युक्तम् एव अत्रा प्यपमालंकारः ॥ ५३ ॥

अर्ध-हे सुभग मद् (कस्त्र्त) घारण करनेनाले मृग सी हैं हृदयमें जिसके (अर्थात मृगोक) और दोषा (रात्रि) के करने बाले चंद्रमा तिसके समान । मद् (गर्ब) से भरा हुवा मानस (चित्त) है जिसका और दोष (दुष्टता) जिसकी आकर (दान) ऐसे जो हुम हो हुम्हारे विरहमें स्त्रीका मुख कुमोदनीकी भौत

सान्वय सँ॰ टी॰ भाषाटींकासहित । (१११)

संकुचित होरहा है (चंदमांक विरहों कुमोदनीका संकुचित होना उचितही है) (यहां मद्भुत मानसस्य और दायाकरस्य चंदमा और सुभग पुरुष दोनोंके विशेषण होषक आभयत हो सक्ते हैं) (यहां भी उपमा अल्कार है)॥ ५३॥

उपमालक्षण भाषा । (सोरढा) वपमेयह उपमान, वाचक धर्म समानपन । ताहि

कपमा जान, शशि सो सुंदर तियबदन ॥ १ ॥ (छुतोपमा) इन चारोंमें कोई, इक बिन दो बिन तीम बिन । छुत्र कामा सोह, यिनारे छुति पंकम नयिन ॥ २ ॥ अन्योन्योपमा ।

तं णमहद्वीतराअं जिणं दमुद्दलिअदृढअर कसाअम्॥ जस्स मणं व सरीरं मणं सरीरं व मुप्पसणम् ॥ ५४ ॥

करताजक्षा जस्त नणा न तरार नणा सरार व सुप्पसणम् ॥ ५४ ॥ दीका-(अस्य संस्कृतम्)तं नमत बीनरागं जिन दमोहलितहढतरकपायं यस्य मन इव शर्गरं मनः

देमाहालतहत्वतरकपाय यस्य मन हव रागर यनः
शरीरिमेव सुप्रसन्नम् (अस्याग्वयः) तं वीतरागं दमो
इिल्तहद्वतरकपायं जिनं नाय यस्य यनः इव शरीरं
शरीरिम् इव मनः सुप्रसन्नम् इत्यन्वयः॥ वीतः विगतः
सागे यस्मात् इति चीतरागः तं दमेन चार्टीद्रयनिप्रहेण उद्दिलतः दूरीहृतः हदतरः कपायः अंतःकरण
दोषः येन तं नमत मणार्मं कुरुत सुमसनं प्रसन्नता
युक्तम् । अन्न मन इव शरीरं शरीरिमेव मनः इत्यन्यो

न्योपमेयोपमानत्वेन अन्योन्योपमालंकारः॥ ५४॥

(११२) बाग्मेटार्सकार-वरिं० ४.

अथ-उन घोतराग और दश (इंदिय निग्रह) करके दूर कर दिया है दृढ़तर कपाय (अंतःकरणके ईपादि दोप) निन्हांने ऐसे निन भगवानुको नमस्कार करो निनका मन शरीरकी भांत और शरीर मनको तरह मसन रहता है यहां शरीर और मन परस्वर उपमेय और उपमान होनेसे अन्योन्यापमा अलंकार हवा ॥ ५४॥

अनन्वयालंकार ।

ये देव ! भवतः पादौ भवत्पादाविवाशिः ताः ॥ ते लभंतेऽहतां भव्यां श्रियं त इव शाश्वतीम् ॥ ५५ ॥

टीका-हे देव ये (जनाः) भवत्पादौ इव भवतः पादौ आश्रिताः ते अद्भुतां भव्यां शाश्वतीम् श्रियं लभे-ते ते ते इव इत्यन्वयः ॥ अद्भुताम् अद्वितीयां भव्यां समीचीनां शाश्वतीम् अविनाशनीम् अव एकवेषोपमे-योपमानत्वात् अनन्वयोपमालंकारः अनन्वयालंकार इत्यर्थः (उक्तं च साहित्यद्पंणे) "उपमानोपमेयत्वमे-कस्येव त्वनन्वयः" इति ॥ ६६ ॥

अर्प-हे देव जो मनुष्य आपके चरणों जैसेही आपके चर णोंके आश्रित हैं वे अहुत समीचीन और निश्चन रुस्भाको माप्त फरते हैं सा वे (अक्त) उन जैसेही हैं यहां एकहीं में उपमान और उपमेपत्य होनेसे अनन्योपमा (अनन्यप) अरुंकार द्वेषा ॥५५॥

अनन्द्यन्त्रशण भाषा ।

रीहा-ट्यमेय र ट्यमान दोह, एक वन्तुमें होय ॥ नाम भनन्यप नाहिको चौद चौदमी जीव ॥ १ ॥

समुचयोषमार्छकार ।

आलोकनं च वचनं च निगृहनं च या-सां स्मरत्रमृतवत्सरसं कृशस्त्वम् ॥ तासां किमंग !पिशितास्थिपुरीपपात्रं गा-त्रं विचित्य सुदशां न निराकुलोसि ॥५६॥

न भा पत्य छुट्सा पा गरासुरातात । उपा दीका-हे अंग वासां सुदृशाम् आलोकनं च वचनं प निग्रहनं अनृतवत् सस्सं स्मरन् त्वं कृशः तासां पिशिनास्थिपुरीपपां गात्रं विचित्य कि न निराकुलः असि हत्यन्वयः ॥ आलोकनम इंसणं वान्यनं संभा-पणं निग्रहनम् आलिगनम् अमृतवत् सरसम् अमृतन् तृत्यं सुवदं स्मरन् कृशः स्मरन् सन् दुवंल एव पिशितास्थिपुरीपाणां मांसास्थिमलानां पाधं स्थानं गात्रं शरीरं विचित्य कि न निराकुलः असि अपितु निराकुल एव अत्र आलोकनादीनां बहुनाम् उपमे-यानाम् एकेनामृतेन उपमानन सादश्यम् अतः सम्रुव-

योपमालेकारः ॥ ५६ ॥ अर्थ-दे अंग (हे शिष्य) जिन सुंदर नेत्रवाली खिपेंके दरोन और बचन और आलिगनको अमृतके समान सरस जान- फर तू ड्वंल हो रहा है टनके मांस हाड और विद्यांक पात्र शरीरको चितवन फरके तू व्याक्षल भी हो ही रहा है यहां आलो-फन यचन और निगूहन तीन उपभेषांका अफ्त एक टपमान होनेसे समुचयोषमा या समुचय अलंकार हवा॥ ५६॥

दोहा-इक साधक बहुकार्य बहु, वर्ण्य एक उपमान । सोइ समुख्य जिमि नयन, कर पढ कमळ समान ॥

मालोपमा ।

कलेन चंद्रस्य कलंकमुक्ता मुक्तावलीवो-रुगुणपपन्ना ॥ जगञ्जयायाभिमतं ददाना जैनश्वरी कल्पलतेव मृतिः॥ ५७॥

टीका-जैनेश्वरी मृतिः कलंकमुक्ता चंद्रस्य कला इव उरुगुणप्रपन्ना मुक्तावली इव जगन्नयाय अभि-मतं ददाना करुपुलता इन इत्यन्वयः॥जिनेश्वरस्य ऋप भदेवस्य मृतिः जैनेश्वरी मृतिःकलंकमुक्ता कलंकरिता चंद्रकला इव उरुगुणेन महता मुत्रेण प्रपन्ना ग्रंफिता. मुक्तावली मुक्तापंक्तिरिव जगन्नयाय लोकत्रयाय अभि-मतं वांछितं ददाना करुपुलता इव अन एकस्योपमेयस्य न्नीणि चंद्रकलादीनि उपमानानि अतः मालोपमालं-कारः। तथा च द्पेणे "मालोपमा यदेकस्योपमानं वहु इश्यते" इति ॥ ५७॥

् अर्य-जैनेश्वरी मृतिं कलंक रहित चंदकलाके समान है तथा 'रहेशुण (डीरे) में पिरोई हुईं मोतियोंकी लडींके समान है सान्वय सं॰ टी॰ भाषाटीकासहित । (११९

तथा त्रिलोकीको बोर्जिनफल देनवाली कल्पलताके समान यहां एक मृतिः उपमय है और चंतकटादिक तीन उपमान इससे मालोपमा है उदाहरणाम अन्य अलंकार भी झलकते परंद निनके उदाहरण हैं वेही मुख्य दिसात हैं॥ ५७॥ माठोपमारुक्षण भाषा ।

देहि।-एक वर्ष्य उपमान बहु, मालोपमा वसान। वदन कमल सम अति सरस, संदर चन्द्र समान॥ विभिन्नालुगव्चनां नाति हीनाधिकां च

ताम् ॥ निवर्भति बुधाः कापि लिंगमेदं तु मेनिरे ॥ ५८ ॥ दीका-चुधाः कापि तां विभिन्नार्रिमवचनां हीनाः

पिकां च निवभंति तु लिगभेदं न मनिरे इत्यन्वयः॥ बुधाः पूर्वाचार्याः ताम् उपमां विभिन्ने लिगवचने यस्या ती च हीनाधिकां हीना च अधिका च हीनाधिका ता निवर्भति भिन्नालिंगं भिन्नवचनां हीनाम् अधिकाम् अपि जपमां कचित् नियोजयंतीत्यर्थः कवित्र किंगभेदं न

अर्थ-पहलके विद्वान् कहीं कहीं पृषक्ष लिंग और पृथक वयन अध-१६० त १४। १५। १६। १५। १०। १०। आर ११ १०। ति उपमाको भी उपयोग करते हैं और कहीं लिय भेटको नहीं गनते हैं (इसका उदाहरण यह है) ॥५८॥ हिममिव कीर्तिर्धवला चन्द्रकलेगातिनि-

र्मेला वाचः ॥ ध्वांक्षस्येव च दाक्ष्यं नम व वक्षश्च ते विपुलम् ॥ ५९ ॥

फर तृ हुपंछ हो रहा है टनके मांस हाड और विद्यांक पात्र शरीरको चितवन करके तू व्याकुछ भी हो ही रहा है यहां आछो-फन वचन और निगृहन तीन उपमेयोंका अमृत एक टपमान होनेंसे समुद्ययोगमा या समुद्रय अळंकार हुवा॥ ५६॥

दोहा-इक साधक बहुकार्य बहु, बर्ण्य एक उपमान । सोइ समुख्य जिमि नयन, कर पद कमल समान ॥

मालोपमा ।

कलेन चंद्रस्य कलंकमुक्ता मुक्तावलीवो-रुगुणप्रपन्ना ॥ जगञ्जयायामिमतं ददाना जैनश्वरी कल्पलतेव मृतिः॥ ५७॥

टीका-जैनेश्वरी मूर्तिः कलंकमुक्ता चंद्रस्य कला इव उरुगुणप्रपन्ना मुक्तावली इव जगन्नयाय अभि-मतं ददाना करूपलता इव इत्यन्वयः॥जिनेश्वरस्य ऋप भदेवस्य मूर्तिः जैनेश्वरी मूर्तिः कलंकमुक्ता कलंकरिद्वता चंद्रकला इव उरुगुणेन महता सुत्रेण प्रपन्ना गुंफिता मुक्तावली मुक्तापंक्तिरिव जगन्नयाय लोकन्नयाय अभि-मतं वांछितं ददाना करूपलता इव अन एकस्योपमेयस्य न्नीरिण चंद्रकलादीनि उपमानानि अतः मालोपमालं-कारः। तथा च द्र्पणे "मालोपमा यदेकस्योपमानं चहु दृश्यते" इति ॥ ५७॥

💫 अपं-जॅनेश्वरी मूर्ति कलंक रहित चंदकलाके समान है तथा पडेयुण (डोरे) में पिरोई इहें मोतियोंकी लडोके समान है

सान्वय सं ॰ टी ॰ भाषाटीकासहित । (११५ तेषा बिलोबीको बांधिनफल देनवाली कन्पलतांब समान पहां एक मातिः उपमेप है और चंदकलादिक तीन उपमान इसते मालीपमा है उदाहरणाम अन्य अलंकार भी सलकते परंव निनके उदाहरण हैं वेही मुख्य दिखाते हैं॥ ५७॥

मालोपमारुक्षण भाषा । दौहा-एकः वर्ण्यं उपमानः बहु, मालोपमा बसान । वदन क्रमल सम् अति सरस्, सुंदर चन्द्र समान ॥ विभिन्नांट्रगव्चनां नाति हीनाधिकां च ताम् ॥ निवर्भति वृधाः कापि लिगभेदं तु मेनिरे ॥ ५८ ॥

दीका-चुधाः कापि तां विभिन्नलिंगवचनां हीना-पिकां च निवभंति तु लिंगभेदं न मेनिरे इत्यन्वयः॥ बुधाः पूर्वाचार्याः ताम् उपमां विभिन्ने लिगवचने यस्या तों च हीनाधिकां हीना च अधिका च हीनाधिका तो

निवप्रति भिन्नलिंगं भिन्नवचनां हीनाम् अधिकाम् अपि डपमां कचित् नियोजयंतीत्यर्थः काचिच लिंगभेदं न अप-पहलके विद्वान कहीं कहीं एवक लिंग और पृथक वजन ा उपमाको भी उपयोग करते हैं और कहीं लिय भेदको नहीं ानते हैं (इसका टदाहरण यह है) ॥५८॥

हिममिव कीर्तिर्धवला चन्द्रकलेवातिनि-र्मेला वाचः ॥ ध्वांक्षस्येव च दाक्ष्यं नभ व वक्षश्च ते विपुलम् ॥ ५९ ॥

कर हु दुर्बल हो रहा है उनके मांग हाड और विद्यार पान शरीरको चितवन पत्रके तु ज्याकुल भी हो हो रहा है पही आछी-पन पचन और नियूहन तीन इपमेषीका असून एक उपमान होनेसे समुचयीपमा या समुचय अर्थकार हुया।। ५६॥

दीहा-उक साधक बदुकायं बद्द, बण्यं एक उपमान । सोड

समुचय निमि नयन, कर पद कमल ममान ॥

मालोपमा ।

कलेन चंद्रस्य कलंकमुक्ता मुक्तावलीवी-स्रुणप्रपन्ना ॥ जगत्रयायाभिमतं ददाना जैनश्वरी कल्पलतेव मृतिः ॥ ५७ ॥

टीका-जैनेश्वरी मृतिः कलंकमृक्ता चंद्रस्य कला इव चरुगुणप्रपन्ना मुक्तावली इव जगन्नयाय अभि-मतं ददाना करुपुलता इव इत्यन्वयः॥जिनेश्वरस्य ऋप भदेवस्य मृतिः जैनेश्वरी मृतिःकलंकमुक्ता कलंकरिता चंद्रकला इव चरुगुणेन महता मुत्रेण प्रपन्ना गुंफिता. मुक्तावली मुक्तापंकिरिव जगन्नयाय लोकत्रयाय अभि-मतं वांछितं ददाना करुपुलता इव अत्र एकस्योपमेयस्य जीणि चंद्रकलादीनि चपमानानि अतः मालोपमालं-कारः। तथा च द्र्षणे "मालोपमा यदेकस्योपमानं वहु दृश्यते" इति ॥ ५७॥

्र अर्थ-जनभरी मूर्ति कलंक रहित चंदकलाके समान है तया (डोरे) में पिरोई हुई मोतियोंकी लडीके समान है सान्यय सं॰ टॉ॰ भाषाटीकासहित। (११५) तभा विलोबीको बांजितकल देनवाली कल्पलताके समान है यहाँ कुछ सर्तिः त्यांस है और शंतकलाटिक सेल उपसान हैं

तथा १४४०१६१६ वाश्विक्यक द्वायाका कर्माना है यहाँ एक मूर्ति: उपमेप है और चंद्रक्छादिक तीन उपमान हैं इससे मालोपमा है उदाहरणोंमें अन्य अलंकार भी झल्कते हैं परंतु निनके उदाहरण हैं पेही मुख्य दिखाते हैं ॥ ५७॥ मालोपमालक्षण भाषा ।

दोहा-एक पण्ये उपभान बहु, मालोपमा बदान । बदन कमल सम अति सरस, सुंदर चन्द्र समान ॥ विभिन्नान्त्रमानमन्त्रां नानि तीनाधिकां न

विभिन्नलिंगवचनां नाति द्वीनाधिकां च ताम् ॥ निवर्भति बुधाः कापि लिंगमेदं तु मेन्ति ॥ ५८ ॥

पास ॥ १८५ ॥ मेनिरे ॥ ५८ ॥ दीका-चुचाः कापि तां विभिन्नार्लम्बचनां हीना-

पिकां च निवर्भति तु छिंगभेदं न मेनिरे इत्यन्वयः ॥ धुषाः पूर्वाचार्याः ताम् उपमां विभिन्ने छिंगवचने यस्या तां च हीनाधिकां हीना च अधिका च हीनाधिका तां निवर्भति भिन्नळिंगं भिन्नवचनां हीनाम् अधिकाम् अपि उपमां क्रियत् नियोजयंतीत्यर्थः क्रांचेच लिंगभेदं न

मेनिरे इति भाषः॥ ६८ ॥ अर्थ-पहरूके विटान कहीं कहीं पूथक लिंग और पूपक बयन की उपमार्था भी उपयोग करते हैं और कहीं लिंग भेरनी नहीं

मानंत रें (रवका बदाइरण यह है) ॥५८॥ हिममिव कीर्तिर्धवला चन्द्रकलेवातिनिः र्मला वाचः ॥ ध्वांक्षस्येव च दाक्ष्यं नम

इव वक्षश्च ते विव्रसम् ॥ ५९ ॥

(११४) षाग्भटालंकार-परि० ४०

कर तू दर्बल हो रहा है उनके मांस हाड और विद्यांक पात्र शरीरको चितवन करके नू ज्याकुछ भी हो ही रहा है यही आछी-कन घचन और निगृहन तीन उपमेपींका अमृत एक उपमान होनेसे समुचयोषमा या समुचय अटंकार हुवा ॥ ५६ ॥

दोहा-इक साथक बहुकार्य बहु, चर्ण्य एक उपमान । सोइ

सम्रचय जिमि नयन, कर पढ कमल समान ॥ मालोपमा ।

कलेन चंद्रस्य कलंकमुक्ता मुक्तावलीवी-रुगुणप्रपन्ना ॥ जगञ्जयायाभिमतं ददाना

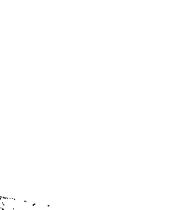
जैनेश्वरी कल्पलतेव मृतिः॥ ५७ ॥ टीका-जेनेश्वरी मृतिः कलंकमुक्ता चंद्रस्य कला इव उरुगुणप्रपन्ना मुक्तावली इव जगन्नयाय अभिः

मतं ददाना करुपळता इव इत्यन्वयः॥जिनेश्वरस्य ऋप भदेवस्य मूर्तिः जैनेश्वरी मूर्तिःकलंकमुका कलंकरहिता चंद्रकला इव उरुगुणेन महता सूत्रेण प्रपन्ना गुंफिता.

मुक्तावली मुकापंकिरिव जगत्रयाय लोकत्रयाय अभि-मतं वांछितं ददाना फलपळता इव अत्र एकस्योपमेयस्य त्रीणि चंद्रकलादीनि उपमानानि अतः मालोपमालं-

कारः। तथा च दर्पणे "मालोपमा यदेकस्योपमानं वहु दृश्यते" इति ॥ ५७ ॥

्र अर्थ-नैतेश्वरी सूर्ति कलंक रहित चंदकलाके समान है तया विद्या (होरे) में निरोहें हुई मोतियोंकी लडीके समान है



षर हू दुवंछ हो रहा है टनके मीस हाह और विद्यार पाप करिएको चितवन परके तू व्याङ्ग्छ भी हो ही रहा है पढ़ी आछी पन पचन और निगृहन तीन टपमेपोंका अनृत एक टपमान होनेसे समुख्योपमा या समुख्य अळंडार हुया॥ ५६॥

दोहा-इक साधक बहुकार्य बहु, चण्ये एक उपमान । सोह

समुचय गिमि नयन, कर पद कमल समान ॥

माछोपमा ।

कलेन चंद्रस्य कलंकमुक्ता मुक्तावलीवी-स्रुणप्रपन्ना ॥ जगत्रयायाभिमतं ददाना जैनश्वरी कल्पलतेव मृतिः ॥ ५७ ॥

टीका-जैनेश्वरी मृतिः कलंकमुक्ता चंद्रस्य कला इव चरुगुणप्रपन्ना मुक्तावली इव जगन्नयाय अभि-मतं ददाना करुपलता इव इत्यन्वयः।।जिनेश्वरस्य ऋप भदेवस्य मूर्तिः जैनेश्वरी मृतिःकलंकमुक्ता कलंकरहिता चंद्रकला इव चरुगुणेन महता सुनेण प्रपन्ना ग्रांफिता. मुक्तावली मुक्तापंक्तिरिव जगन्नयाय लोकन्नयाय अभि-मतं वांछितं ददाना करुपलता इव अन एकस्योपमेयस्य न्नोणि चंद्रकलादीनि चपमानानि अतः मालोपमालं-कारः। तथा च द्र्षणे "मालोपमा यदेकस्योपमानं वहु हश्यते" इति ॥ ५७॥

्रे अयं-जंनेश्वरी मूर्ति फलंक रहित चंदकलाके समान है तया बंद, (डोरे)में पिरोई हुई मोतियांकी लडीके समान है तथा त्रिलोकीको बांडितफल देनेवाली करपलताके समान है यहाँ एक मूर्ति: उपमेप है और चंद्रकलादिक तीन उपमान हैं इससे मालोपमा है उदाहरणोंमें अन्य अलंकार भी हालकते हैं परंद्र निनके उदाहरण हैं यही मुख्य दिखाते हैं॥ ५०॥

मालोपमारुक्षण भाषा ।

दोहा-एक पर्ण्य उपमान बहु, मालोपमा बखान । यदन कमल सम अति सरस, संदर चन्द्र समान ॥

विभिन्नालगवचनां नाति हीनाधिकां च ताम् ॥ निवर्गति चुधाः कापि लिगभेदं तु मेनिरे ॥ ५८ ॥

दीका—चुपाः कापि तां विभिन्नार्लगवचनां हीना-पिकां च निवधीत तु लिंगभेदं न मेनिरे इत्यन्वयः ॥ बुधाः पूर्वाचायाः ताम उपमां विभिन्ने लिंगवचने यस्या तां च हीनाधिकां हीना च अधिका च हीनाधिका तां निवधीत भिन्नार्लगं भिन्नवचनां हीनाम् अधिकाम् अधि उपमां कवित् नियोजयंतीत्यर्थः काचिच लिंगभेदं न मेनिरे इति भावः॥ ५८ ॥

अप-पहलेक विदान कही कही प्रयक्ष लिंग और प्रयक्त वचन की उपमाकी भी उपयोग करते हैं और कहीं लिंग भेदको नहीं मानते हैं (इसका उदाहरण यह है) ॥५८॥

हिममिव कीर्तिर्धवला चन्द्रकलेवातिनि-मेला वाचः ॥ ध्वांक्षस्येव च दाक्ष्यं नभ इव वक्षश्च ते विष्ठस् ॥ ५९ ॥ टीका-ते कीर्तिः हिमम् इव धवला वाचः चंद्रकला इव अतिनिर्मेला दाक्ष्यं ध्वांक्षस्य इव वक्षः नम इव विपुलम् इत्यन्वयः॥ हिमम् इव कीर्तिः अत्र उपमानो-पमेययोः लिंगे पार्थक्यं चंद्रकला इव वाचः इत्यत्र चचने पार्थक्यं ध्वांक्षस्येव दाक्ष्यमित्यत्र ध्वांक्षः काकः तस्य दाक्ष्यं चातुर्ये प्रसिद्धम् अत्रोपमानस्य हीनत्वं ते वक्षः हृद्दयं नम इव आकाशमिव विपुलं विशालम् इत्यत्र उपमानस्य अधिकत्वम् ॥ ५९ ॥

अर्थ-(हे राजन्) तेरी कीर्ति हिम (वरफ) जैसी भेत है और वयन चंद्रकला जैसे निमंल हैं और वसुराई काक जैसी निमंल हैं स्मूम कीर्ति हिम जैसी यह कीर्ति की लिंग जैसी वाज उपमान हिम नदुंसक लिंग है इसमें कीर्ति की लिंग और इसका उपमान हिम नदुंसक लिंग है इसमें मिन्न लिंग है वचन चंद्रकला जैसे इसमें वचन चंद्रकला कीर चंद्रकला एक घचन होनेसे मिन्न वचन है चतुराई काक कीर चंद्रकला एक घचन होनेसे मिन्न वचन है चतुराई काक कीर्या वहां उपमानमें होनता है और हद्य आकाशसा इसमें इपमानमें अधिकता है ॥ ५९॥

ग्रुनीयं ग्रहदेवीव प्रत्यक्षं प्रतिभापते ॥ खद्योत इव सर्वत्र प्रतापृश्च विराजते॥६•॥

टीका- इनं छुनी प्रत्यशं गृहदेवी इव प्रतिभापते च प्रतापः सर्वेत्र खद्योत इव विराजते इत्यन्वयः ॥ भूजी कुकुरी अत्र पूर्वाई उपमानस्याधिकत्वम् उत्तरा-दं दीनत्वं वा ॥ ६०॥ क्षपं-पद तुरवृशि प्रत्यक्षं प्रदक्षा देवीसी दिगाई देती दे भीर मनार मच जगह गयीन सर्पक्ष भांत दीनिमान है यहाँ प्रादेशें उपमानका अधिकता है और नो रस्पोतका अधे (अधिपा कृति) प्रयोजना करें तो उत्तराईमें उपमानकी हानता है॥ ६०॥

सफेनपिण्डः प्रोढोमिराच्यः शाङीव शं-स्वभृत ॥ श्रातन्मदः करी वर्षन् विद्युला-

निवं वारिदः ॥ ६१ ॥

टीका-सफेनापंडः प्रीटोामः आव्धः शार्झा इव शंखभूत श्रीतन्मदः करी वर्णन विद्युत्वान वारित इव इत्यन्वयः ॥ फेनापंडः सह वर्तमानः सफेनापंडः प्रीटाः कर्मयः तरंगा यस्य स प्रीटोमिंः तथाप्रतः शन्धः समुद्रः शार्झी विष्णुः इव शंखभूत शंखपरक इत्यपंः ॥ श्रीतंतः सर्वतो मदाः यस्मात् स श्रीतन्म-दः करी इस्ती वर्णन् वृष्टि कुर्वन् सन् विद्युत्वान् तिड-त्वान् वारिदः मेष इव अन्न प्वोद्धं उपमेयस्य उत्तराई ष उपमानस्य विशेषणाधिषयम् ॥ ६१ ॥

च उपमानस्य विशेषणाधिक्यम् ॥ ६१ ॥ अभ-मागोक पिडो सदित और बडी तरेगोंवाला समुद्र बिच्च भगवान्का तरह शेत धारण करनेवाला है अधीत विच्च भगवान् भी शेत रातते हैं और समुद्र भी शेत रातता है तथा

भगवान भा राज रस्तत है आर समुद्र भा काल रसता है तथा मद जिरता द्वारा दार्था पर्यते हुए विश्वलावाल वादलता समान है अथात पादलामास भी जल बरसता है और हार्थीमी भी मद्का जल बरसता है हुसुक पर्याद्धम उपमेषमें विशेषणकी

अधिकता है और उत्तराईम उपमानमें ॥ ६१ ॥

(१२०) धाग्भटालंकार-परि०४.

भिन्नं खंडं न्यूनाधिकत्वयुक्तम् अखंडं पूर्णे समम् एवं चतुर्विधं रूपकमित्यर्थः कुवलयानंदे तु रूपकं पिइधं निरूपितम् ॥ ६४ ॥

क्यं-नहीं साथम्पेसे उपमान और उपमेपका भेद नहीं हो (अथांत उपभेष और उपमानका सावपव सदृप वर्णन किया जावे) तो उसे रूपक अलंकार कहते हैं वह चार मकारका होता है (१) समस्त अथांत समासपटिन (१) असमस्त समासके विना फिर यह भी दो मकारका है एक अगांद वर्ण पा

कता है (१) नावन अपात समीसपाटन (१) असमत समासके बिना फिर यह भी हो प्रकारका है एक अमंद एवं पा सम हुसरा संड न्यूनाधिक (चंदालांका कारिकाओं के अनुहुज नुगलपानंदमें रूपकर्भ छः भेद छिरो हैं अभेद और तद्द हन दीनों के फिर अधिक न्यून और सम तीन तीन भेद किये हैं गैसे अभेदसम अभेदन्युन अभद अधिक नद्दमसम तद्दगन्युन तद्दप अधिक)॥ ४४॥

र्षपर) ॥ ६४ ॥ कीर्णाधकागल्यकगजमाना निवद्धताराः स्थिमणिः कुतोषि॥ निशाषिशाचीव्यचरः दृधाना महात्युलकध्वनिफेत्कतानि॥६५॥ र्यका-कीर्णायकागलकगजमाना निवदनागस्थिः

मितिः महार्युष्ट्रकथानिकेन्द्रतानि दशाना निशापि शाक्षी कुनः अपि य्यचरत इत्यन्ययः ॥ कीर्णः मं≱ीर्मः अयकारः स एव अस्टकः कशकत्यः तेन राजमानाः नियद्धाः मान्यकारेण पर्गिदनाः तारा एत

राजमानाः निवडाः मान्याकारेण परिदेनाः नाग एव अस्थीनि नानि एव मणयः यस्याः उन्हकानौ ध्यनपः एव फुन्हनानि फुन्कागणि नानि महास्ति एयद्यागा ना कुतः अपि करमाद्देशात् आगत्य व्यचरत् परि-वभ्राम अत्र उपमेयभूतायाः निशायाः उपमानभूतया पिशाच्या साधम्यात् सम्यगास्यानात् अभेद एव निशापिशाचा इत्युपमेयोपमानयोः समस्तत्वात् समस्तम् अलंडरूपकम् ॥ ६५ ॥

अर्थ-संचित हुवा जो अंथकार वेही हुई अलक लटा रूप गिस परके शोभित और मालाकार जो तारागण वही हुए हुट्टी रूप मणि निसके और टन्टुयोंकी ध्यति बही है यहाँ फुंकार शब्द उसे धारणकरनेपाली विशाची राससी रूप राभी पर्टीस (आकर) विचरती भई यहा निशा उपीभी और विशा यो उपमान दोनोंका साथय एक रूप हाँनेसे रूपक अलेकार हुवा और निशाविशाधी यह त्यमेय और टपकान एक समा-स्रोत होंगेसे समस्त और सायय साधम्य वर्णन करतीसे अर्थंड हुवा शेर निशाविशाधी स्वायय साधम्य वर्णन करतीसे अर्थंड

संसार एव कृपः सिललानि विपत्तिजन्म द्वःखानि ॥ इह धर्म एव रज्जस्तस्मादु-दरति निर्मय्रान् ॥ ६६ ॥

टीका-संसारः कृष एव इह विपत्तिजन्मदुःखानि सिळ्ळानि धर्म एव रज्जुः निमंग्राच तस्मात् उद्धरित इत्यन्वयः ॥ विपत्तेः जन्मनश्च दुःखानि तानि एव इह संसारकृषे सिळ्ळानि निमंग्राच निश्चपेन मगान् तस्मात् संसारकूपात् धर्मः रज्जः एव उद्दरति उद्दारं करोतीत्वर्थः अत्र संसारस्य उपमेवभूतस्य कृपेन उप मानभूतेन असमस्तेन सावम्यात् अभेद इति असः

मानम् अखंडरूपकम् ॥ ६६ ॥

अर्थ-संसार कुत्र है अर्थात् कृतकष है इसमें विराधि जन्म इनके दुस्तरी जन्म काहि पर्म कृत रजनुदी हुवे हुनोंकी इसमेंसे निजानतीहै पढ़ी संसार और कृत्र ये दोनों तथा पर्म और रजनु ये दोनों पढ़ समाससे सिन्नकर समाप्तीत एक पद्द कृत नहीं इन दिन्तु जेंद जुत्रे हैं इससे असमस्त असंड क्यूक दुया॥१९॥

अपरं मुखेन नयनेन रुचि गुरभित्वमञ्ज भिव नासिकया॥ नवकामिनीवदनचन्द्र-

मिय नासिकया ॥ नयकामिनीयदनचन्द्र-ममः तहणा रमेन सुगपतिपपुः॥ ६७॥ र्यक्रा-तरुणाः स्मेन नपकामिनीयदनपंद्रमणः

अवर्ग मुर्गेन रुचि नयनेन अञ्जय देव सुर्गिन्ये नामिक्रया युगपत निष्णुः इत्यन्त्रयः ॥ तरुणाः युग्धनः स्मेन रागेण नेपा नपोदा कामिनी नेपकाः सिनी तस्याः यदनेषत् चेट्रमाः सम्य नपकानिनीवृत्य चेट्रममः अवस्य औष्टं मुर्गेन रुचि कृति नपोने अञ्ज कमल्याय सीर्गेच्यं युगपत एकस्मिन् एव सार्थ

निरमुः थिवेति स्म अत्र उपमेयस्य गहनस्य सर्वेदवेवप्रतिहितो धमेः उपमानस्य घेड्रमपातु कश्चित्रेन क्षतिः खंडं नवकामिनीवदनचंद्रमस इति समस्तं च अतः समस्तं खंडं रूपकमिति ॥ ६०॥

अर्थ-तरूण पुरुष भेमसे नई कामनीक सुखरूपक चंद्रमाके होतोंको सुखसे और उसकी फांतिको नेत्रीसे और कमल नेसी सुग्वको मासिकार एकही सम्पर्भे पान करत भये चहा उप-भय घट्नका सच प्रचंपसे मतिपादित धर्म और उपमानभूत चंद्रमाके साचयच पर्म एकत्र पूर्णतपा चर्चन नहीं होनेसे खंड हुगा और घट्नचंद्रमका यह समासीत है इससे समस्त खंड रूपक अलंदार हुवा ॥ ६७ ॥

ज्योत्स्रया धवलीकुर्वन्तुर्वी सकुलपर्वन ताम् ॥ निशाविलासकमलप्रदेति स्म नि शाकरः ॥ ६८ ॥

टीका-निशाविलासकमलं निशाकरः सकुलपर्व-ताम् उवि ज्योत्स्रया धवलां कुवेन् (सन्) उदेति सम इत्यन्वयः ॥ निशाविलासाय यत् कमलं निशावि-लासकमलं निशाकरः चंद्रः कुलप्वेतैः सह वर्तमानां सकुलप्वेताम् उवि पृथिवां ज्योत्स्रया चंद्रिकया अत्र निशाविलासकमलं निशाकरः एतयोः उपमानोः-पमेययोः लिगपार्थवये असमस्तं खंडं रूपकम्॥द्दा।

. अर्थ-रात्रीका विद्धास कमलहूप जो चंदमा है साँ छुटु-पर्यतों करण सहित प्रविधीको अपनी चाँदनी करके धोली (सुफद) करता हुया उदय होरहा है यहाँ निशाविलासकमल (१२४)

और निशाकर इन दोनों उपमान और उपभेषमें हिंगभेद है तथा समासात एक पद रूप नहीं है और दोनोंके साधम्पेका सावपव वर्णन भी एकत्र नहीं हुवा इससे असमस्त खंड रूपक अलेकार हुवा॥ ६८॥

हस्ताग्रविन्यस्तकपोलदेशा मिथोमिल त्कंकपकुंडलश्रीः ॥ सिपेच नेत्रस्रवद-श्वधारदों:कंदलीं काचिदवश्यनाथा ॥६९॥

टीका-इस्तामनिन्यस्तकपोलदेशा मिथोमिलत्क्रं कणकुंडलश्रीः काचित् अवश्यनाथा नेत्रस्नवदश्वधारे

द्दीःकंद्रली सिपेच इत्यन्वयः ॥ इस्तामे विन्यस्तः कृपोलदेशः यया सा इस्तामिन्यस्तकपोलदेशा मिधः परस्परं मिलंती कंकणकुंडलयोः इस्तालंकार-कृणोलंकाग्योः श्रीः शीभा यस्याः तथाभृता का-चिन् अवश्यनाथा अवश्यः नाथो भर्ता यस्याः सा अस्याथीनपितका नवाभ्यां स्वद्धिः अथुणी घारः धागभिः दोःकंदली दोर्भुज एव कंदली कदली तौ मिपेच अभिषिकवती । अत्र समस्तं खंडं रूपकम

प्रयं-हरनमें। अब अवीत् हमेटीगर धर रहना है क्योज प्रदेश निमने निममे भित्र गर्वे हे हाथके केहण और कारके हैं हुंटलडी सीना पहले निमके देनी कीई अन्यार्थनगनिका अर्थात् नहीं है बहामें पनि निमक्षा वेमी कीना निर्धीमें सिर्मी

अत्रापि लिंगमेदः ॥ ६९ ॥

हुर्द अधु भारोंसे धुजाहर जो बंदली (फेला) है वसे सींवती भर्द (अयोव पतिअयश होनेसे होगगहुल होकर हाभपर फरोल रसकर अधुपात करती भर्द निससे हाभहर करलीया सींवना हुया) इसमें भी दी। और बंदली वर्षमेय और उपमानमें लिंग भेद है तथा समस्त है अस्तु यहां समस्त रोड हपक है। ६९॥

रूपक है ॥ ६९ ॥
(स्पक रूसण भाषा) दोहा-रूपक उपमिति वर्ण्यका, हो सागम्य अभेद । अथवा हो तहूप वश. न्यून अधिक सम भेद॥ १॥ (उदाहरूक) विच सार मरावि करनतर, सवकी प्रत आहा। तम तरिण यहांवेतका, निश दिन करत मकाश ॥ १ ॥ कीर्ति करी दिन विच स्वा करता कराति है। विवा करता भाषी कर्मान्त साम अधिक साम भाषा ॥ १ ॥ कीर्ति कर्मान्त वाकी साम अधिक साम अधिक साम अधिक साम अधिक साम अधिक साम अधिक साम अधिकाश ॥ २ ॥ भाषा अधिकाश ॥ भाषा भाषा अधिकाश ॥ भाषा अधिकाश ॥ भाषा ॥ भाषा अधिकाश ॥ भाषा ॥ भाषा अधिकाश ॥ भाषा अधिकाश ॥ भाषा ॥ भाषा अधिकाश ॥ भाषा ॥ भा

इनमें प्रथम देहिका पूर्वार्द्ध न्यून अभेद और उत्तराई भी कि अभेदका उदाहरण है और दूसरे देहिका पूर्वार्द्ध सम अभेदका उदाहरण है और उत्तराई तहुप समका उदाहरण है ॥

भतिवस्तूपमा ।

अनुत्पत्ताविवादीनां वस्तुनः प्रतिवस्तु ना ॥ यत्र प्रतीयते साम्यं प्रतिवस्तृपमा तु सा ॥ ७० ॥

टीका-सन् इवादीनाम् अनुत्पत्ती वस्तुतः प्रति-वस्तुना साम्यं प्रतीयते सा त प्रतियस्तुपमा इत्य-न्त्रयः॥ड्वादीनां साधम्यं व्यअकानां वाचकशब्दानाम्

अनुत्पत्ती अनुपादाने सति वस्तुनः उपमेयस्य प्रति-

(१२६) वाग्भग्रलंकार-परि० ४.

वस्तुना उपमानेन साम्यं प्रतीयते सा प्रतिवस्तूपमा रुकारः (साहित्यदर्षणे उक्तंच) "प्रतिवस्तूपमा सा स्यात् वाक्ययोर्गम्यसाम्ययोः।एकोपि धर्मः सामान्यो यत्र निर्दिश्यने प्रथक् "॥७०॥

अर्थ-जही इवादिक नहीं होकर वस्तु अर्थात उपमेपशे मतिरन्तु उपमानभूत अन्यवरनुसे पृथक् समता प्रतीत हो तो उसे मतिबरनुषमा अलंकार कहते हैं ॥ ७० ॥

बहुवीरेऽप्यसावेकी यदुवंशेऽद्वतोऽभव-त् ॥ किं केतक्यां दलानि स्युः सुरभीण्य-खिलान्यपि ॥ ७१ ॥

विस्तान्याप ॥ ७१ ॥

दीका-भदुवीरे यदुवंशे अपि असी एकः अद्धतः
अभवत कि कनक्याम अग्विलानि दलानि मुरभीणि
स्युः इत्यन्ययः॥ यद्ववीरे बद्दवीवीयः यस्मिन् । असी
श्रीकृष्णः अद्धतः अमायाग्णः कि केनक्यां केतकी

सुगंधयुक्तानि म्युः अपि तृ न मशंणि पत्राणि सुर्गाणि भवंतीत्ययं । अत्र इवादीनामनुषादानेषि यदुवंशस्य दपमयभूतम्य उपमानभूतायाः केत्रस्या मद्द्र साम्यमः तीतः प्रतितमनुषमार्यकारः॥ ७३ ॥

गुर्ने अग्विलानि समग्राणि दलाणि पत्रानि गुरभीणि

अर्थ-बर्त बीरवाट बर्गतांम मा पत्र थे भीकृत्य अद्ग रीते मारे क्या केनदी है सभी यह गुलंबयुक्त होते हैं (अयोद सान्वयसं॰ टी॰ भाषाधिकासहित । (१२७) सभी सुगेषयुक नहीं होते किंतु पर हो ही मुगीभन होते हैं।

सभा सुर्वयञ्चक नही हात ।कृतु प्रञ्ज दा हो मुगापेत हात ॥) यही इव आदिवः कृत्द न होनेस उपमयभन यद्वेशका टपमान भृत केतकीस पूर्वक साधम्य होनेस मितवन्त्रपमा अर्ववायद्वाव १

(मतिपस्तृपमा छ० आया) देाहा—जहां वस्तु प्रतिपस्तृपा, पृषक् साम्य दरसाव । मतियस्तृपम ताहिया, वक्तः स्कृषिकत नाव ॥ १ ॥ (टक्तहरण) पनि पदर्भा गुजर्गनी, सार्वपश नव

भूप । कहा चोदनीकी कहें, संयत सिखु अनुष ॥ २ ॥ भानि ।

वस्तुन्यन्यत्र कुत्रापि तत्तृत्यम्यान्यवः

स्तुनः ॥ निश्चयो यत्र जायेत श्रांतिमान् स स्मृतो यथा ॥ ७२ ॥

स स्मृता यथा॥ ७२॥ टीका-यत्र कुत्रापि अन्यत्र वस्तृति तत्तुल्यस्य व्यापन्त्रतः विभागान व्यापन स्थापन व्यवस्य

अन्यवस्तुनः निश्चयो जायेन स भौतिमान स्पृतः इत्यन्वयः॥ यथापदस्य अभिमेण सहोहाहरणमृतः

कः संबंधः। वस्तुनि उपमेथे तत्तृत्यवस्तुनः उपमानस्य निश्चयः प्रतितिः श्रांतिमान् श्रोंतिनांगारुदेगरः ॥०२॥ सर्प-यहा वहा अन्य पानुने तपुन्य अन्य पानुषा निथय

(प्रतीति) हा उमें श्रीतिमान अयोव श्रीति अलगा पडने हैं (भेसे निम्न उदाहरण हैं) ॥ ०२ ॥ उदाहरण पाएन । हैसकमलेनिवअणे प्रीलप्यलंतिनअणे-

हेमकमलंतिवअणे णीलुप्यलंतिनअणे पमुअच्छिकुमुमंति तुद्धहितप्विचडति भमराणं रिस्क्रेली ॥ ७३ ॥ टीका-(अस्य संस्कृतम्) हेमकमलिमिति वद्ने नीलोत्पलिमिति लोचने प्रमुताक्षि कुमुममिति हि तव हासिते निपतित अमराणां श्रेणी (अस्यान्वयः) हे प्रमुताक्षि तव बद्ने हेमकमलम् इति लोचने नीलो-त्पलम् इति हसिते कुसुमम् इति (आंत्या) अमराणां

श्रेणी निपतिति इत्यन्वयः ॥ श्रांत्या इति शेपेणा न्ययः ॥ हेमकमलं स्वणंपकजम् अत्र वदनादिषु हेम कमलादीनां श्रांत्या श्रमराणां श्रेणीनिपतनात् श्रांति-मान् अलंकारः ॥ ७३ ॥

अर्थ-है विशास नेत्र संदर्श तेर सुत्रमें सुर्यणे कमस्त्री और नेत्रोंमें नीसकमस्त्री और हास्पमें पुष्पोकी (भ्रातिसे) भ्रमोंकी पंक्ति आसक होकर उनरर पड़ती है यहां पदन आ-दिशोंमें स्पर्य, कमस्त्रदिक्की भ्रातिसे भ्रमर पंक्तिका पड़ना कहा हमसे भ्रातिमान् अश्रात् भ्राति असंकार हुए। ॥ ७३॥

(धांतिप्रशंग भाषा) दोढा-नदां अन्यकां अन्यकें, धांति धांति सो नात । तय मुख पंकन मानहे, भोरा धमत नदाना। है॥ आहेर्ष ।

टक्तियंत्र प्रतीतिर्वा प्रतिपेधस्य जायते ॥ आचक्षते तमाक्षेपमलंकारं बुधायथा०४॥

आचक्षतं तमाक्षपमलकारं वृधायथा०४॥ टाका-यत्र प्रतिपेवस्य उक्तिः या प्रतिनिः जायते

्रे बुचाः तम् अलंकारम् आक्षेषम् आचक्षते इत्पन्यपः॥ यथा इति अधिमोदारम्णमृचकं प्रतिषेधस्य सत्तया प्रतीत्या च वाशन्दात् प्रतिपेधस्य कैमर्थ्यात् आभा-सादपि आक्षेपालंकारः स्यात् ॥ ७४ ॥

जर्थं∽नहां मित्तेपकी दक्ति (कथन) हो अथवा मतीति हो तो दसे पिदान आक्षेप अलंकार कहते हैं और कई पा क्रान्दसे प्रतिपेयके केमर्थं (आयोत् अमुक क्या है) तथा प्रतिपेषके आभाससे भी आक्षेप अलंकार होता है ऐसा कहते हैं ॥ ७४ ॥

आक्षेपका उदाहरण ।

इंद्रेण किं यदि स कर्णनरेन्द्रसृहरेरावते न किमहो यदि तब्विन्द्रः ॥ दंभोलिना प्यलमयं यदि तत्प्रतापः खगोप्ययं ननु सुधा यदि तत्प्रता ॥ ७५॥

र्दाका-यदि स कर्णनरंद्रसनुः (तदा) इंद्रेण किय अहो पदि तिहिपेंद्रः (तदा) ऐरावतेन किय पदि तत्म-तापः (तदा) दंभोलिनाप्यलम् ननु यदि सा तत्पुरी (तदा) अयं स्वगः अपि सुषा इत्यन्वयः ॥ कर्ण-नरंद्रसनुः कर्णनृपतेः पुत्रः जयसिंहः दंभोलिना वन्नेण। दंभोलिः वन्नः (इतिशस्तो॰) सुषा मिथ्या वृथा च अत्र प्रतिपेषस्य इंद्रादेः केमर्थ्यात् आसेपा-लंकारः ॥ ७६॥

अर्थ-पदि यह फर्णोसंह राजाका एउ (नर्पासह) हे तब इंद्रोस क्या और जब उसका बड़ा हाया है तब पेरावत से क्या और जय उसको मताप है तब वचकी आवश्यकता ही क्या है (१३0) वाग्भटार्रंकार-परिं० ४.

और जब उसकी नगरीई तब स्वर्गभी वृथाही साहि पहां प्रतिपेध

इंदादिकके केमर्यं (क्या पेसा) होनेसे आक्षेपालंकार हुवाण्पा

इत्यन्वयः ॥ नरकस्य कोडं निकटे निवासः स्थितिः तस्मिन् रसिकं नरककोडनिवासरसिकं हिंस। च अर्र्त

आस्ति स जनः मुतराम् हिंसानृतस्तेयतत्परः अस्तु

टीका-यस्य मनः नरककोडिनवासरसिकम् ।

सोऽस्त्र हिंसान्टतस्तेयतत्परःस्रतरांजनः७६

यस्यास्ति नरककोडनिवासरसिकं मनः॥

अतिशयेन ॥ ७६ ॥

भतिष जर्रकार हुया ॥ ७६ ॥

न स्तेयं च हिंसानवस्तेयानि तेषु वत्परः सुतराम्

अर्थ-निसका मन नरफके चीवमें निवास करनेका रसिक है पद मनुष्य अर्थन दिमा झूट और चोरीमें तत्पर रही यहाँ प्रति-भेर नरक कोड नियाम तथा हिसा स्तेयादिकी उक्ति होनेंसे भी

इच्छंति ये ण कित्ति कुणंति करुणाकणं वि ये ण अ ॥ ते धणजक्स व णरा दिति

र्दाग्रा-(अस्य संस्कृतम)इच्छंति ये न फीर्ति क्चीत करणाकणमपियेन चते धनयशायनणः दर्जन चर्न मर्गममयेषि (अस्यान्वयः)ये नराः कीर्ति न इच्छेति च ये करणाकणम् अपि न कुर्वति न चनवता इन मरणममये अपि धनं ददनि इत्य-न्त्रयः ॥ घनयञ्जा धनग्जकाः व द्वार्थे अःययः॥ व

धणं मरणममये वि ॥ ७७ ॥

सादृश्ये (इति श॰ स्ती॰) अत्र प्रतिपेषस्य प्रतीतिः तस्मात् आक्षेपालंकारः ॥ ७७ ॥

अर्थ-नो कीर्तिकी इच्छा नहीं करने और निनमें परुणा (इसा) का भी छेश नहीं है व मनुष्य सक्की भीत पनके रस्पाले हैं मर्तनेके समय तो घन देहींगे अर्पात् औरके पास पन छोड़ही जायेंगे पहीपर धनके प्रतियेषकी प्रतीति हाँगेसे आक्षेत्र अरुकार हुया॥ ७७॥

(आक्षेप छ० भाषा) दोहा-उक्ति होय प्रतिवेधकी, प्रतीति या जामास । या किमर्थ हैं। ती सुक्ति, आक्षेपनु केंहें तासारिश

(उदाहरण मतीतिपर आक्षेपका) को कम गस चाहत नहीं, मा मन फरणा छेश । ये जन धन भरते समय, छोड जाहि निःशेप ॥ २ ॥ (भ्रंय पढ़नेक्षे आक्षेपके उदाहरण नहीं हिसे अन्यत्र देस होता) ॥

संशय व निश्रय ।

इदमेतिद्दं वेति साम्याद् बुद्धेर्हं संशयः॥ हेतुभिर्निश्चयः सोपि निश्चयान्तः स्पृतो यथा॥ ७८॥

टीका-साम्प्रात् एतत् इदं वा इदम् इति चुद्रेः संशयः (संशयः) स च हेत्तुभिः निश्चयातः अपि निश्चयः स्मृतः इत्यन्वयः ॥ यथापदमिमिनोदाहरणा-धं साम्पात् सादृश्यात् इति चुद्रेः संशयः एतत् इदं वा इदं स संशयः संशयाळंकारः हिमं संदेहाळंकार- . (१३२) वाग्भडाईहार-परिं० ४.

नामत्वेनापि वदंति हेतुभिः कार्रणः निश्चयांतः निश्च-

यरूपः स निश्चयः निश्चयनामालंकारः ॥ ७८॥ अर्थ-समान भाव होनेसे यर पदार्थ बर है अपना बर है

ऐसे बुद्धिका संशाप हो तो वह संशापनामक अर्छकार होताहैतणा इसका नाम कई "संदेह" अर्छकार भी कहते हैं और नो कार णोंसे निधयरूप हो जाये तो उसे निधय कहते हैं अर्थात् उसका नाम निधयालंकार होता है ॥ ७८ ॥

संरायका **उदाहर**ण ।

कि केशपाशः प्रतिपक्षलक्ष्म्याः कि वा प्रतापानलधूम एपः। दृष्टा भवतपाणि-

गतं ऋषाणमेवं कवीनां मतयः स्फुरंति ७९ दोका-भवत्पाणिगतं ऋषाणं दञ्चा कवीनां मतयः

टीका-भक्तपाणिगतं कृपाणं दृङ्घा कवीनां मतयः एवं स्फुरंति एपः किं प्रतिपक्षलक्ष्म्याः केशपाशः किं वा प्रतापानलधूमः इत्यन्वयः ॥ हे राजन् इति शेषः भवतां दृष्ट्यानं कृषाणं कृद्धं दृष्टाः सादश्यान कवीनां

भवतां हस्तगतं कृपाणं खद्गं हट्या सादश्यात् कवीर्नां बुद्धिषु एवं संशयः संजातः किम् एप प्रतिपसल्हम्याः प्रतिपक्षे या लक्ष्मी तस्याः अथवा प्रतिपसस्य शत्रो र्लक्षमीः स्त्री तस्याः केशपाराः करे ग्रहीत्वा आकृष्टः

इति भावः । किं वा प्रतापानलस्य घूमः इति संशये संजाते सित संशयालंकारः ॥ ७९ ॥ अपं-हे राजन आपके हापमें सङ्ग देसकर कवियोंकी इदि

इस मकार स्फरने छगी (: अर्थाव साहरयतासे ऐसा संशय

किषपेंकी एदिमें होने लगा) कि क्या यह प्रतिपक्ष एस्मीके या सहयो सीके केशपाश हैं (बोटी) है (अर्पात शहकी स्त्रीफी बोटी पकड़ रक्सी है)या मतापरूप अभिक्ष धूर्वी है इस मदार संदाय होनेसे संदाय अपना संदेह नामक अलंकार हुवा॰श।

इंद्रः स एप यदि किं न सहस्रमक्ष्णां लि क्ष्मीपतियंदि कथं न चतुर्भुजोऽसी॥ आः स्यंदनध्वजधृतोद्धरताम्रचृद्धः श्रीकर्णदेव चपसुतुरयं रणाग्ने॥ ८०॥

टीका—स एप यदि इंद्रः (तदा) अक्ष्णां सहस्रं किं न असी, यदि रुक्ष्मीपतिः तदा चतुर्धुजः कथं न आः अयं रेणामे स्यंदनध्वजपृतोद्धरताष्ट्रचुडः श्री कर्णदेवनपृतुः इत्यन्वयः ॥ स्यंदनस्य रथस्य ध्वजे धृत उद्धरः सत्कटः ताष्ट्रचुडः कुक्कुटः येन सस्यंदन ध्वत उद्धरः सत्कटः ताष्ट्रचुडः कुक्कुटः येन सस्यंदन ध्वजपृतीद्वरताष्ट्रचुडः श्रीकर्णदेवनृतस्य सृतुः प्रवः श्रीजयसिंददेवोस्ति अबहेतुभिः संशयस्य निराकरणात् निश्चपाठंकारः॥ ८०॥

अपं-पद यदि इंद है तो इसके हजार नेज घरों नहीं हैं और जो एरभीपति विष्णु हैं तो य चतुर्धन घरों नहीं हैं औह (चिदित हुपा) यह रणके अगाड़ी रमकी ष्यनामंदेडम कुक्ट्र निसके देसा यह भोजजंदिय राजाका युत्र जयसिंहदेय है यहाँ कराजोंसे संजय निष्टल होकर निश्चय होगया इससे निश्चया-रूपार हुपा ॥ ८० ॥ (१३४) वाग्भटार्टकार-परिं०.४.

(संशय और निश्चय छसण भाषा) दोहा-नहें समताते गुर्दिमें: संशय संशय जान । कारणते निश्चित भये, निश्चय नाम चसान ॥ १ ॥ (उदाहरण) तब ग्रुख झाशि या कमळ है, कवि मति होत हरान । कम उन निश्चि झाशिइति न दिन, ताते भी फळ मान ॥ २ ॥

दृष्टांतालंकार् ।

अन्वयख्यापनं यत्र कियया स्रतदन्वः योः॥ तं दृष्टांतमिति प्राहुरलंकारमनीः पिणः॥ ८१ ॥

पिणः ॥ ८९ ॥ दीका-यत्र स्वतदन्ययोः क्रियया अन्वयस्यापनं

दीका--यत्र स्वतद्ग्ययोः क्रियया अन्वयख्यापन तम् अळंकारमनीपिणः दृषांतम् इति प्राहुः इत्यन्त्रयः।। स्वस्य वर्ण्यस्य उपमेयस्य तदन्यस्य उपमानस्य

दृष्टांतभूतस्य च अन्त्रयख्यापनं संबंधेन याथातथ्येन कथनम् अलंकारमनीपिणः अलंकारशास्त्रस्य विद्रांसः

तं हप्टातं हप्टांतनामकम् एव आहुः ॥ ८९ ॥ अयं-नहां वर्णनीय और हससे दूसरे दपमान या हप्टान मूर्रा का किया बेष्टा गुण व्यापारादिसे संबंध पूर्वक यापातम्य करके क्यन हो (अर्थात् नीसे यह येसे यह हत्यादि क्यन हो) से

डमें बर्डेकर बायके धाता विदाय खेले इष्टीतनाम बर्डकर क्हतेंदें ॥ ८२ ॥ पतितानां संसर्ग त्यजंत द्वरेण निर्मेखा गुणिनः ॥ इति कथ्यअस्तीनां हारः परि हरति कुचुगुलस्य ॥ ८२ ॥ टीका-हारः इति कथयन् (सन्) जस्तीनां कृच-युगळं परि हरति (इतीति किम् निर्मेळाः ग्रुणिनः पित-तानां संसर्ग टूरेण त्यजंतु इत्यन्वयः ॥ जस्तीनां वृद्य-स्त्रीणां स्तनयोः पितित्वात् तत्र ग्रुणवतो हारम्य च न शोभा इति तत्परिहारेण ग्रुणिनां पितत मंप्-'-परिहारसाम्पप्रतीतेः हर्णाताळकारः॥ ८२॥

अर्थ-हार यह कहना हुवा यद्धातियोंके क्वाओंको प्रान्यण फरता है कि निर्माल खुणियोंको प्रतिनोंका संसमं हरसेहा छोड देना चाहिष (युद्ध खियोंके कुच पतित होतेही हैं इससे निर्मल खुण (सूत्र) चाला हार उनका त्यागता है वसही निर्मल खुणि योंको पतितों हा संसमं छाड़ देना चाहिष) इसमें हारक पतित क्वपर होंगा नदेनेका इष्टांत हे इससे द्वांत अलेकार हुवा॥८२॥

् हर्षात कर भाषा) देशहा-वर्णनीय कह अन्यका, य्यातस्य सम्भाषा ताहि फहन हर्षात कपि, काव्यरसिक जननावाशश (ददाहरण) पतितों के संसर्गक्षेत्र देतहँ गुणी विसार । गुद्ध

कामिनी पतित कुच, निकट न सोहतहार ॥ २ ॥

व्यतिरेक।

केनचिद्यत्रधर्मेण हयोः संसिद्धसाम्ययोः॥ भवत्येकतराधिक्यं व्यतिरेकः स उ-च्यते॥ ८३॥

टीका-यत्र द्वयोः संसिद्धसाम्ययोः केनचिद्धमेंण एकतराधिक्यं भवति सः व्यतिरेकः उच्यते इत्यन्वयः॥ (१३६) याग्भटार्सकार-परि० ४.

संसिद्धसाम्ययोः उपमेयोपमानयोः एकतरस्य इयो मेध्ये एकस्य उपमेयस्य उपमानस्य वा ॥ ८३॥

मध्य एकस्य उपमयस्य उपमानस्य या ॥ ८२ ॥ अर्थ-नहां पर उपभेष अथवा उपमानकेकिसीधर्ममें (उर्वः डिमें) अधिकता हो तो उसे व्यतिरेक अलंकार कहते हैं ॥४०१।

अस्वस्तु पौरूपगुणाज्जयसिंहदेव पृथ्वी षतेमृगपतेश्च समानभावः ॥ किं त्वेकतः प्रतिभटाः समरं विहाय सद्यो विशंति वनमन्यमशुंकमानाः ॥ ८४ ॥

टीका-जयसिंद्देवपृथ्वीपतेः च मृगपतेः पीरुप गुणान् समानभावः अस्तु अस्तु कितु एकतः प्रतिभवाः

स्त्राः समरं विद्वाय वनं विशंति अन्यम् अशेकगानाः (वनं विशंति) इत्यन्ययः ॥ एकतः पृथ्वीपतेः प्रतिः भरा विपतिणः अन्यं सिदम् अशेकगानाः निः-शृंदिताः अगणयंतः संत एव वनं विशंतीति अप

मिहान गृहाः पीहपाशिक्यान् व्यक्तिपारिकारः॥१८४॥ अने-नविवर्दक गृह्याः और मुगानि (धर्) का गृहव मुन्दे मान जान है। तो है। दिए एक (गृह्या) में दर्गरः

बैन्दिकी: राष्ट्रीः पुढः भूभिन्ने। छोड् कर वनमें छित्रतार्थे। इति स्टिश्नोंश ने करके उसके प्रतिवाधी वनमें पूर्व प्रदेशिक स्टा राजांक वराक्षमें सिरेक वराष्ट्रमेंस अवित्ता बैनियाणी केट इन्हेंबर है से ४४ में (भाषा ध्यतिरेकार्लः) दोहा-उपमेय रु उपभानके, धर्म यीच कोइ एक। जापिक होय जहेँ ताहिकों, कहत कविध्यतिरेक॥ १॥ (उदाहरण) पर्ल्में नृष अरु सिंह सम, नृपते पर रण छोड । के हरित निःशंकहो, क्षञ्ज जान पन औड ॥ २ ॥

अपह्नुति ।

नेतदेतदिदं ह्येतादित्यपह्नववपूर्वकम् ॥ उ च्यते यत्र साहस्यादपहनुतिरियं यथा ८५

टीका-पत्र माहश्यात् एतत् एतत् न हि एतत् इदम् इति अपह्नवपूर्वकम् उच्यते इयम् अपहृत्रतिः इत्यन्वपः ॥ साहश्यात् साम्यात् अपह्नवपूर्वकं प्रति-पेधपूर्वकम् अपहृतः वस्तुनाऽसर्वेन कथनरूपकाप्लापः अपहृत्रतिः पदार्थासर्वे तत्साम्यत्वाद्पला-पोक्तिः॥ ८५ ॥

अर्थ-जहां समानताके आभाससे यह यह नहीं है किंतु यह यह है ऐसा निष्पासे १ पूर्वक वर्णन किया जावे तो उसे अपहतु-हिंदी केंद्रिया कर्नाह कि कुच्छानां है सके ६, उह भेद हिर्सेंद्रे श्रद्धापहतृति हैंजबहतृति पर्यस्तापहतृति श्रोतापहतृति छकाप-हृत्वति और फतवापहतृति ॥ ८५ ॥

नैतन्निशायां शितसुच्यभेद्यमंधीकृता-स्रोकनमंघकारम् ॥ निशागमप्रस्थितपं-चवाणसेनासमुस्थापित एप रेणुः ॥ ८६ ॥

टीका-एतत् निशायां शितमूच्यभेद्यप् अयोकृता छोकनम् अंधकारं न एषः निशायमप्रस्थितपंचवाण (१३८) वाग्भटालंकार-परि० ४.

सेनासमुत्थापितः रेणुः इत्यन्वयः ॥ शितमूच्या तीक्ष्ण

सूच्या अभेग्नं भेत्तमशत्त्रयम् अतिगादिमिति भागः अधीकृतम् आलोकृतं दर्शनं येन तथाभृतम् अंधकारं तिमिरं न कि तिहं निशायाः आगमे प्रस्थिता प्रतिलं पंचताणस्य कामस्य सेना तथा समुत्यापितः रेणुः धूलिः एव अव अंधकारमितिपेथे रेणुसमारोपात् अपहृतुनिरलंकारः ॥ ८६ ॥

अर्थ-गर्गामं यह तहत्र महर्सेशी अभेष (पोर) और निर्मा

कुछ दीरे। नहीं ऐसा अंपर्तार नहीं है हिंदू रातरें आयमी समाय करती हुई नो कामदेवधी सनीई उससे उठी हुई पृत्रि पा भेरकाका निषय करते आप्य काम देवधी सेनामे उठी हुई पृत्रित आरोबण करनेते आहन्ति अलंकार हुए॥ ८४॥ (भाषा अरानुनिक्क) देशा-अपनृती साहायने, पर वर नारं पर सात । ज्याम न पन विष्तृति विरद्ध अपि पूम रह

सार्वाक्षात् सालास्य

नुन्ययोगिया ।

उपमेयं ममीकर्तुमुपमानेन योज्यते ॥ तुर्च्यककार्यक्रयया यत्र मा तुर्च्ययोः पिना ॥ ८७ ॥

यत तृत्वेहकात्रक्षियया उपमोनन उपमेषे समी कर्नु योज्येत सा तृत्ययोगिता इत्यत्यया ॥ गृह्या एहहात्रक्षिया तया समीकर्तु साहश्यी कर्नु (अस्तुता प्रस्तुतानां चैकधर्माभिसंबंधात्तृत्ययोगिता इतिसा-हित्यद्पेणे)॥ ८०॥

अपं-नही तुस्य पक काल किया करके उपमानका ट्रपंपपेस समभाव करनेको योग किया जांच तो उसे तुस्ययोगिता कहतेई (साहित्यदर्पणमें बस्तुत और अभग्तुतका एकथमींप संबंध होनेसे तुस्ययोगिता हो पमा लक्षण लिखाई ॥ ८० ॥

तमसालुप्यमानानां लोकेऽस्मिन्साध्वः रमेनाम् ॥ प्रकाशनाय प्रभुता भानोस्तव च दृश्यते ॥ ८८ ॥

दीका-अस्मिन् लोके तमसालुप्यमानानां साधुव-तमेनां प्रकाशनाय भानोः तव च प्रभुता इश्यते इत्य-न्वयः ॥ तमसा अंधकारेण मोदेन च भानोः सूर्यस्य तव राज्ञश्च प्रभुता प्रतापः अञ्च उपमेयस्य प्रस्तुतस्य च राज्ञः उपमानेन अप्रस्तुतेन सूर्येण एककालक्रिय-यासमीकरणानुहथयोगिता स्यात् ॥ ८८ ॥

अर्थ-इसं क्षेत्रमें अंधवार या भोह वरषे एम हुए माधु मार्गोके मकाहा करनेको सूर्य अध्या आववा मताप है। दिगाई देता है यही उपभागभूत राजा और उपमानस्त गृयंता मताप दर्शन रूप पर काळीय हुत्य कियास समीकरण दोनेसे हुत्य

योगिता अलंकार हुवा ॥ << ॥

(भाषा) दीहा-जहां पर्ण्य उपमानकी, समता ही दक्षणीर । सम्परीगिता ताहि की, बहत कवी बरगीर ॥ १ ॥(मेस)तमणे- पित शुभ मार्गके, जगमें करण प्रकाश । प्रकट प्रताप नरेश कर, या रवि किरण विकाश ॥ २ ॥

उत्मेशा ।

कल्पना काचिदौचित्याद्यत्रार्थस्य सतो न्यथा ॥ द्योतितेवादिभिः शब्दैरुत्प्रेक्षा सा स्मता यथा ॥ ८९ ॥

टीका-सतः अर्थस्य औषित्यात् यत्र इनाहिमः शहैः काचित् अन्यथा करपना द्योतिता सा उत्येता स्मृता इत्यन्वयः ॥ ततोर्थस्य विद्यमानार्थस्य औषिः त्यात् योग्यत्वात् काचिदन्यथा करपना अन्यप्रकाः रेण काचित्संभावना इवादिभिः शहैदः इव मन्ये शंके इत्यादिभिः द्योतिता लक्षिता सा उत्येक्षा (कुवल यानंदे तु वस्तृत्येक्षा हेतृत्येक्षा फलोत्येक्षाभेदाविधो त्येक्षा कथिता)॥ ८९॥

अर्थ-नहां पिद्यमान स्पष्ट अर्थकी द्वियत भावसे इचित शब्द करके काई और करूपना खोतन करा जांचे तो दसे दिमेसा अर्द्धकार कहतें दें चंत्राठोककी कारिकानुसार खुचलपानेंद्रमें इसके तीन प्रकार दिखे हैं चस्त्रोक्षेत्रा हित्रोक्षा फलोत्रेक्षा ॥ ८९॥

नभस्तले किंचिदिव प्रविप्राश्रकाशिरे चं-द्रह्रचिप्ररोहाः ॥ जगद्गिलेत्वा हसतः प्रमोदाद्वंता इव घ्वांतनिशाचरस्य ॥९०॥

सान्वयसं ० टी॰ भाषाटीकासहित । (१४१)

टीका-नभस्तले किंचित इव प्रविष्टाः चंद्ररुचि-

प्ररोहाः जगत् गिलित्वा प्रमोदात् इसतः ध्वांतनिशा-चरस्य दंता इव चकाशिरे इत्यन्वयः ॥ नभस्तले आकारो किचिदिव अल्पमाञ्चं यथा स्यात्तथा प्रविष्टाः प्रवेशं गताः चंद्ररुचिप्ररोहाः चंद्रकिरणांकराः जगत गिलित्वा संसारं मसित्वा प्रमोदात् हर्पात् इसतः दास्यं फुर्वतः ध्वातनिशाचरस्य ध्वांतम् अंधकार एव निशा-चरः राक्षसः तस्य दंता इव चकाशिरे दीप्ति गतवंतः अत्र सतः चंद्रकिरणांकुरस्य इसतो निशाचरस्य दंतरूपेण कल्पना इत्युत्प्रेशा इयं तु वस्तूत्प्रेशा॥९०॥ अर्थ-आकाशमें थोड़ेसे निकसे हुए चंदमाकी किरणोंके अंदुर रेसे हैं जैसे संसारकी बसकर आनंदसे हँसते हुए अधकार रूप राक्षसके दांतही हों यहां विश्वमान अर्थवाले चंद्र किरणांहरको र्हेंसते हुए अंधकार रूप राक्षसके दांत कल्पना करनेसे उत्पेक्षा अलंकार हुवा (यह वस्तु उन्मेक्षा है इसी तरह जहाँ हेतुकी अन्य फरपना है। यहाँ हेंद्र उल्लेक्षा और जहाँ फलकी अन्य करपना हो षद्दा पलउत्मेशा समझलेनी)॥ ९०॥ (भाषा) दोहा-उचित अर्थ जहँ युक्तिसे, और करपना होय। रामेशा तिर्दे कहत हैं, वस्तु हेतु फल जीय॥ १ ॥ (उदाहरण) तिप उर दोइ उरोजको, कनक सताफल नान। तीले नेन कडाक्षको, पुष्पबानके बान ॥ २ ॥ कतिन धरन पर धरनंत, सुंदरि हो। पग लाल । तब गति समता लहनकीं, सेवत कमल मराल ॥ ३ ॥

, Fi

(१४२)

वाग्भडालंकार-पारे० ४. अर्थातरन्यास ।

ः उक्तांसिद्ध्यर्थमन्यार्थन्यासो व्याप्तिपुरः

सरः॥ कथ्यतेऽर्थांतरन्यासः शिष्टोऽशिष्टः

श्च स हिधा ॥ ९९ ॥

टीका-उक्तिसिद्धचर्यं व्याप्तिपुरःसरः अन्यार्थंन्यास (स) अर्थातरन्यासः कथ्यते स च श्चिष्टः अश्चिष्ट

द्रिधा इत्यन्वयः॥ उक्तसिद्धचर्थं कथितस्य प्रामाण्याः च्याप्तिपुरःसरः युक्तिपूर्वकः अन्यार्थन्यासः अन्यस्

अर्थस्य विन्यासः श्रिष्टः श्लेपसहितः अश्लिष्टः श्लेप रहितः ॥ ९३ ॥

अर्थ-जहां कहे हुए वाक्यकी सिद्धिक लिये युक्तिपूर्वक अन्य अर्थका उपयोग किया जांच ती उसे अर्थातरम्यास अर्छशार

कहते हैं वह दो प्रकारका होता है एक क्षेप पर्वक दूसरा केप

शोणत्वमक्ष्णामसिताञ्जभामां गिरां प्र-

अक्ष्णां शोणत्वं तु गिरां प्रचारः अपरप्रकारः वभूव

चारस्त्वपरप्रकारः ॥ वभृव पानान्मधुनो वधूनामचितनीयो हि मुरानुभावः ॥९२॥

टीका-मधुनः पानात् वधृनाम् असिताव्जभासाम्

हि सुरानुभावः अ,चितनीयः इत्यन्वयः ॥ मधुनः . मद्यस्य मधुररसस्य या पानात् वधूनां सुंदरीणाम असितान्जभासां नीलोत्पलच्छवीनाम् अक्ष्णां नेत्राणां शोणत्वं रस्तत्वं तु पुनः गिरां वाचां प्रचारः प्रयोगः अपरप्रकारः अन्यथाभूतः हि युक्तोयमर्थः सरातुभावः अप्रवा स्वराणां देवानाम् असुभावः अथवा स्वराणां देवानाम् असुभावः प्रभावः आर्चतनीयः पुरावनीयः मधुर-रस्त्व पानभोजनानंतरं यत्र कृत्रविद्रमनेन सुकुभारेषु देवानाम् वेशो भवेदिति लोकोक्तिः मधुनः पानानंतरम् अक्ष्णां शोणत्वमित्यादिविद्धः सुरातुभावः आर्चतनीय इत्यत्र श्रेपवरोन अर्थातरन्यासालंकारः ॥ ९२ ॥

अप-मधु (मख) अथवा मधुर रस वीनेके वीछे सुंद्रिरियों के नीलोग्लरहरीते नेत्र छाल होगये और वालीका मचार भी अन्य मकारका होगया हो। सहस्त्र निक्का मभाव भवार देवा हो। सिक्का मभाव अपवा सुद्र देवा हनका अनुभाव मभाव दुर्भावनीय होताही है पढ़े मयवान जनित नेत्रों हो। छोले आहे कपनमें युक्ति प्रवेक देवां नायवान जनित नेत्रों हो। छोले आहे कपनमें युक्ति प्रवेक देवां नायवान जिले नेत्रों हो। छोले आहे कपनमें युक्ति प्रवेक देवां नामें से अर्थातर न्यास करे वा जाने से अर्थातर न्यास करे हा। आदि मयवा नभाव होता हो। है नया मधुर रस खा वीकर जहां तहां जाने से सुक्तार (नाहक ने महुत्यों के देवादिका आदेश होनाना छोतों के दे ही हसीसे छेव पूर्व क्यांतर न्यास होयया॥ ९२॥

श्टेषरहित अर्थातरन्यास ।

शुंडादेंडेः कंपिताः कुंजराणां पुष्पोत्सर्गे पादपाश्चाह चक्कः ॥ स्तब्धाकाराः किं

प्रयच्छंति किंचित्कांता यावन्नोद्धतैवीं-तज्ञांकम् ॥ ९३ ॥

टीका-कुंजराणां शुंडादंडैः कंपिताः पादपाः चार पुष्पोत्सर्गे चक्रः स्तब्धाकाराः यावत् उद्धतेः वीतर्शक्ं (वथां स्पात्तथा) न आक्रांताः (तावत्) किं किंचित प्रयच्छंति (न प्रयच्छंतीत्यर्थः) इत्यन्वयः ॥ कुंजः राणां गजानां शुंडादंडैः शुंडाचातिः पादपाः वृक्षाः चारु शोभने यथास्यात्तथा पुष्पोत्सर्गे पुष्पाणाम् उत्सर्गः त्यागः तम्, स्तब्धाकाराः संबद्धह्दयाः कृषणा इत्यर्थः यावत् उद्धतेः महाद्धः निःशंकं न आक्रांताः तावत् किमपि न प्रयच्छंतीति अत्र पूर्वपदृद्धयस्योक्तः स्यायेतनपदृद्धेन अन्यार्थन्यास्रक्षेण सिद्धिवर्णिता अतोऽश्चिप्रार्थातरन्यासः ॥ ९३ ॥

अर्थ-हाथियोंके शुंडापातसे कंपित हुए एक ययायोग्य पुण्ये। का डरसर्ग (त्याग) करते हैं क्योंकि जड (कृपण) मतुष्य जब तक प्रवत्मनुष्य करके निश्चंक आक्रांत नहीं होता (द्यापा नहीं जाता) तब तक क्या वह कुछ भी देता है अयांत कुछ नहीं देता यहां पहले दोषादों के क्यनकी सिद्धिकेटिय पिछले दो पादोंका अर्थातर न्यास किये जानेसे रेख रहित अर्थारन्यास अरुकार हुवा ॥ ९१ ॥

(भाषा) दोहा-उक्त सिद्धि हित होत जेंह, अन्य अर्थ विश् म्यास । रेरपारेडण प्रकारस, दो अर्थातरम्यास ॥ १ ॥ (उदा- हरणं) मधुपीय राते नयन, सीखं नेन चनाया नयळवष्ट्रकी विकल उनि, खायो सुरानुआय ॥ १ ॥ हस्ति शुंड आहत तरू, देतदु सुमन विसाराओट लगे पर कृषण जन, फीडी देत उधार ॥ २॥

समासोक्ति ।

उच्यते बकुमिप्टस्य प्रतीतिजनने क्षम-म ॥ सधमं सा समासोक्तिरन्योक्तिर्वा-मिधीयते ॥ ९४ ॥

टीका-इएस्य प्रतीतिजनने क्षमं वकुं संधमंत्र रुच्यते सा समासीकिः वा अन्योकिः अभिधीयते इत्यन्त्रयः ॥ इएस्य विवक्षितार्थस्य प्रतीतिजनने क्षमं प्रतीत्प्रत्पादने समर्थं संधमं समानधमंत्र अन्यत् वस्तु रुच्यते सा समासीकिः अथवा अन्योक्तिः अभिधीय-ते कथ्यते ॥ ९४ ॥

अर्थ-यंगेन फरने याग्य पदार्थकी प्रतीति उत्पादन फरोन-षाल समानवर्धी अन्य पदार्थका वर्णन क्रिया जांव तो उसे समासोक्ति अथवा अन्येक्ति अर्थकार फहते हैं ॥ ९४ ॥

मधुकर मा कुरु शोकं विचर करीरहमः स्य कुमुमेषु॥ घनतुहिनपातद्विता कथं सा मालिती प्राप्यते॥ ९५॥

टीका-हे मधुकर शोकं मा कुरु करोरद्दमस्य छुप्तु-मेयु विचर घनतुहिनपातद्दिलता सा मालती कथं (१४६) वाग्भग्रार्लकार-परि•४. प्राप्यते इत्यन्वयः ॥ घनतुहिनपातदलिता घनश्र

प्राप्यत इत्यन्वयः ॥ घनताहनपातदालता घनथ असौ तुहिनपातः हिमपातः तेन दलिता विनष्टा सा मालती कथं प्राप्यते कथमपि न प्राप्यते इत्यर्थः॥ अत्र विवक्षितस्य मालतीकुसुमस्य विनष्टस्य प्रतीतये

जन विभागतस्य भारताकुतुमस्य विभावस्य निर्माणन तत्सपर्यमस्य अन्यत् वस्तुनः करीरकुतुमस्य कथनः त्वात् समासोक्तिरन्योक्तिरलंकारो वा ॥ ९५ ॥ अर्थ-हे भ्रमर नृक्षोच मत कर केरके वृक्षोंके पुर्णोपर ही विवर क्योंकि विशेष पाला (शोत) पडनेते विनष्ट हुई वह

मारुती केरे मात्र हो सक्ती है। यहां विवासित मारुतीके विनष्ट इर पुष्पकी मतीतिके क्षिय समानधर्मी करार(केर) के पुष्पी का कथन होनेसे सभामोकि अक्षकार हुवा इसे ही अन्योकि भी कहसक्ते हैं॥ ९५॥ चितयति न चूतलतां याति न जातिं न केतकीं क्रमते॥कमललताभग्नमना मधुन

कणित इत्यन्वयः ॥ कमललतया पश्चिन्या भग्नं मनः यस्य तथाभृतः मधुपपुना चृतलताम् आम्रलतां जाति मिल्लकां न कमते न अभिगच्छति किंतु केवलं कणः ति तामप्राप्य रातित्ययः (श्लोकायं मिल्लकाः) ॥ ९६॥ अयं-तमललता अयात् प्रिनोक्षं विना भव हा रहाई मन निमका पेसा तरण श्रमर आमका स्ताका नितवन नहीं करता

सान्ययसं॰ टी॰ भाषाडीकासहित 🗐 (१४७)

और व्यमलीकी तरफ भी नहीं जाता तथा बेतकीके वाम भी नहीं फिरताहै किंद्र पश्चिमीको न पाकर केवल रोताही है यह शोक सेवक है कई पुस्तकोंने नहीं है ॥ ९६॥

(भाषा) देहा-चर्णनीय जहेँ सन्दुर्श, फरण समयं प्रतीत । कद्या जाय साथमं कद्ध, समासिकि यह रीत ॥१॥ (उदाहरण) यियर फरीरण सुनुम पर, अलि चितित मत होय। नृहिन विनष्टा मालती, फिसविष पावत तोय ॥ २ ॥

विभावना ।

विनां कारणसद्भावं यत्र कार्यस्य द्र्यान्य ॥ नस्मिक्यणीतकप्रभावनातसा विन्मानना ॥ ९७॥

दीका-यत्र कारणसद्भावं विना निर्सार्गकगुणोरकपै भावनात् कार्यस्य दर्शनं सा विभावना इत्यन्वयः ॥ निर्सार्गकगुणः स्थाभाविकगुणः तस्य उत्कर्षः अति-शयत्यं तस्य भावनात् यत्र कारणासत्वे कार्यस्य दर्शनं भवत्वा विभावना विभावनाखेकार इत्ययः॥ ९०॥

अर्थ-नही कारणके विना दुष है। स्वाभाविक गुणाववेषी भागनोर पार्थका होना मगड है। तो। उसे विभावना अलंबार कहते हैं।। २७॥

अनध्ययनिवहांसी निर्देश्यपरमेश्वराः। अनऌंकारसुभगाः पातु गुप्माञ्जिने-श्वराः॥ ९८॥ टीका-अनध्ययनिद्धांसः निद्रंव्यपरेगेश्वराः अनि छंकारसुभगाः जिनेश्वराः युष्मान् पांतु इत्यन्वयः ॥ अनध्ययनिद्धांसः अध्ययनवर्जिताः विद्वांसः द्यानः वंतः निद्रंव्यपरेमेश्वराः नास्ति द्रःयं येषां तथापृताः परमेश्वराः एश्वर्यसंपन्ना इत्यर्थः अनछंकारसुभगाः अछंकागभावे भूषणासत्वेषि सुभगाः शोभना इत्यत्र अध्ययनादिकारणाभावेषि विद्यतादिकार्यंदर्शनात् विभागनाछंकारः ॥ ९८॥

अर्थ-चिताही पढे चितात् (कार्ता) और विनाही हार्यों रेपर्यंथात्र और विनाही अर्थताहीक मुख्य देही निर्मेश भी सरअंदेर तुम्हारी कार्य कही पड़ी अरुपयाहि कार्योक विनाही वित्रवाहि कार्यों का होता मिळ है इसमें विभावना अर्थार हुए।। ९८॥ (भाषा) देशा-चित्र कारण्यात्र नहीं, कहि विभावना

(भाषा) देशा-विन कारण कारण जारो, कदि विभीषी नाम । नेप झार्विन व्यंति सुपति, होत बागु गय नाम ॥१॥

र्वापकः ।

आदिमदयांत्रवर्येकप्दार्थेनार्थमंगतिः ॥ वास्यम्य यत्र जायेत तरुक्तं दीपकं यथा ॥ ९९ ॥

र्दाका-यत्र आदिमध्यतिवर्धेकपद्मित गावसस्य अर्थनेमतिः त्रायेत् तत् दीवकम् उत्तम दृश्यत्ययः॥ यथः उद्ग्डरणसृचकम् । आदिवतिनाः मध्यविती अंतर्वार्तिना एकंनेव पदार्थेन क्रियारूपेण कारकरूपेण वा वाक्यस्य अर्थस्य संगतिः ॥ ९९ ॥

अर्थ-जहां आदिवर्ता या अध्यवर्ता या अंतवर्ता किसी एक पदार्थ (कियारूप या कारकरूप) से यात्रवर्क अर्थकी संगति द्वीय तो उसे दीपक अलंकार जानी॥ ९९॥

जगुस्तव दिवि स्वामिन् गंधर्वाः पावनं यशः॥किन्नराश्च कुलाद्रीणां कंदरेषु मुहु-र्मुहुः॥-१००॥

टीका-हे स्वामित् तव पावनं यथः गंधवाः दिवि किंद्रसः कुलाद्दीणां केदेखु मुहुमुंहुः जमुः इत्यन्ययः॥ अत्र जमुः इति आदिगतं क्रियापदम् चभयोवाययो-मध्ये समन्वितम् अतः दीपकालंकारः॥ १००॥

अपं-हे श्यामित आपके पवित्र यशको संपर्ष श्यामें भीर कियर कुछप्पतींकी कंदराओंमें वारेवार मान करते भीय पर्टी जगुः अर्थात् गात भीय यह आदिवत वित्यापद हुमरी। जगह भी समन्त्रित होता है हतार दीवक अर्थवार हुवा ॥ २००॥

विराजंते तमिस्राणि चोतंते दिवि तार-काः॥विमांति कुमुदश्रेण्यःशोभंते निशि दीपकाः॥ १०१॥

टीका-तमिश्राणि विराजते तारका दिवि द्योतंते कुमुद्धेण्यः विभाति द्येषकाः निशि शोभेते इत्य- न्वयः ॥ अत्र पृथक् पृथक् क्रियातिरेकेऽपि पदार्थ-स्त्वेक एव नार्थभेदः अतो दीपकालंकारः ॥ १०१ ॥

अर्थ-अंधेरे विराजतेई आंकाशोंम तारे चमकते हें छुपुर शो-भित हो रहेंहें और दीपक रातमें शोभायमान होरहे हैं यहां पर पद्मिष कियापद अनेक हैं तो भी सबका अर्थ एकहाही हैइससे दीपक हुवा ॥ १०१ ॥

(दीपकालं भाषा) दोहा-दीपक एकपदायंसे, अर्थ संग ती होष। गायत यहा दिवि मेरुपें, मयु सरु किहार सोया। १॥

अतिशयालंकार ।

वस्तुनां वक्तमुरकर्पमसंभाव्यं यद्वच्यते॥ वदंत्यतिशयाख्यं तमलंकारं वृधा यथा॥ १०२॥

टीका-नस्तूनाम् उत्कर्षे वक्तं यत् असंभाव्यम् उच्यते बुधाः तम् अतिशयास्यम् अलंकारं वदंति इत्यन्त्रयः॥ (यथा इति उदाहरणासूचकम्) वस्तूनां पदार्थानाम् असंभाव्यम् असंभवात्मकम् अर्थस्य वक्तुम् असंभाव्यं यत्रोच्यते सोतिशयालंकारः॥ १०२॥

अर्थ-अर्थकी उत्कर्षताके वर्णन करनेको जहाँ असंभाष्य यचन कहे जार्ने तो उसे पंडित अतिशयालंकार कहतेहँ॥१०२॥

त्वद्दारितारितरुणीश्वसितानिलेन संम्-च्छितोर्मिषु महोद्धिषु क्षितीश्च ॥ अंत-

छंठद्विरिपरस्परश्टंगसंगघोरारवैर्मधुरि-पोरपयाति निद्रा ॥ १०३ ॥

टीका--हे क्षितीश ! त्वदारितारितरुणीश्वसितानि-लेन संमुच्छितोमिषु महोद्यिषु अंतर्कुठद्विरिपरस्पर शृंगसंगचोगर्वः मधुरिपोः निद्रा अपयाति इत्य-न्वयः ॥ स्वया दारिता निहता ये अरयः शत्रवः तेपा तरुण्यः कामिन्यः तासां श्वसितानिलेन निःश्वास-वातेन संमर्चिछताः कर्मयः कह्योला येपां तथाभृतेष महोदाधिपु समुद्रेषु अंतलुंठंतः इतस्ततः चलंतः य गिरयः पर्वताः तेषां परस्परं शृंगांणां संगः संवर्षः तस्य घोराः प्रचंडाः आरवाः शब्दाः तेः मुररियोः मुरारेः विष्णोः समुद्रे शयितस्यति भावः निद्रा अपयाति निर्गच्छतीत्वर्थः अत्र राज्ञो यशः प्रतिपादयितुं शत्रुव-निताश्वसितेन संमू िंछतो मिसमुद्रेषु छुठत्पवेतर्शंग-संगशब्देन विष्णोर्निद्राभंगादिकम् असंभाव्यकथनम् अतएव अतिशयालंकारः ॥ १०३ ॥

अर्थ-है राजन आपकेमारे इप शृश्योंकी निय्योंकी निःशास-वापु फरके समुद्रोंकी तरंग बढ़ जानेपर तसके भीतर छुरते इत / पहाडोंकी चीटियोंके संवर्षके मबण्ड शन्दसे समुद्रमें सीते हुप विष्ण भगवानकी निद्रा खुट गई यहाँ राजाकी कीतिक बढ़ानेकें छिय शश्योंके तियोंकी भासवायुक्ते समुद्रकी तरंग बढ़ना और तसके भीतर पहाडोंका छुदयना और उनके परस्पर टक- (१५२) वाग्भटार्डकौर-परि० ४.

रानेके प्रचंड शब्दसे विष्णुकी निदा खुळना इत्यादिक असंभाव्य कथन होनेसे अतिशयाळंकार द्ववा ॥ १०३ ॥

एकदंडानि सप्त स्युर्येदि छत्राणि पर्व-ते ॥ तदोपमीयते पार्श्वमूर्थि सप्तफणः फणी ॥ १०४ ॥

टीका-यदि पर्वते सप्त छत्राणि एकदंडानि स्यः तदा पाथमूर्पि सत्तफणः फणी उपमीयते इत्यन्वयः॥

तद्। पार्श्वहास स्तक्तका कणा उपमायत इत्यन्वयः ॥ पार्श्वः पार्श्वनाथः ॥ १०४ ॥ अपं-यदि पर्वतपर सात छत्र एक दंडवाले हों तो पार्यनापके शिरपर जो सात कर्णांगला सर्व है उसकी उपमा दी जासकी

है यहां पार्थनाथकी कीर्तिकं उन्कर्षके लिए सात छत्रोंकी एक दंड होना इत्यादि असंभाष्य कथन होनेसे अतिशपालंकार हुया॥ १०४॥

(भाषा) सेंगरता-चम्तु षडाई हेत, असंभारय पर्णन नाही। तेहि अतिशय कहि देत, कास्य रसिक ने अति तिषुण ॥ १ ॥ (दराहरण) दोहा-तय विषु तिय भाषा पपन, चित्रत मिष्ट्र गिरि शंग । संपर्यणके सन्दर्भ, पिष्णु नींद भद्र संग ॥ २ ॥

हत्।

यत्रोत्पादयतः किंचिदर्थं कर्तुः प्रकार्यः ते ॥ तद्योग्यतायुक्तिरसी देतुरुकी वुधः र्यथा ॥ १०५ ॥ टीका-पत्र किंचित् अर्थम् उत्पाद्यतः कर्तुः यो-ग्यतायुक्तिः प्रकाश्यते युपेः असी हेतुः उक्तः इत्यन्वयः ॥ यथाशब्दस्तुदाहरणसूचकः । हेतुनामा-रुकारः ॥ १०५ ॥

अर्थ-गरी कोई अर्थ उत्पादन करनेवाले कर्ताकी पोम्मताकी मुक्ति मकाश करी जावे तो उसी विदान लोग हेतु अलंबार करते हैं ॥ १०५॥

प्राकृत उदाहरण ।

जुन्नण समओम्मत्ता तत्ता विरहेण कु-णइ णाहस्स्। कंठभ्यंतरयोलिदमहुररसं चालिया गीअस्॥ १०६॥

टीका-(अस्य संस्कृतम्) यीवनसमयोन्मत्ता तता विरहेण करोति नाथस्य कंठाभ्यंतरचेिलतमपुरस्वरं वालिका गीतम् ॥ इति योवनसमयोनमत्ता नाथस्य विरहेण तता वालिका कंठाभ्यंतरचेिलतमपुरस्वरं गीतं करोतित्यन्वयः॥ योवनसमयेन उन्मत्ता नाथस्य पत्यः विरहेण तता वालिका कंठाभ्यंतरे एव पोलितः अनाविष्टृतः मपुरः स्वरः यस्य तत् गीतं करोति गायतीत्ययः। अत्र कर्तृद्ध्यायाः वालिकायाः गीत-मिति इत्यादितीर्थः तस्य योग्यतायितः पत्यः विरहः योवनोन्मत्त्ता गीतस्य हेतुः अतो हेतुनांमार्यन्कारः॥ १०६॥

अर्थ-युवावस्थाके कारण उन्मत्त, पतिके विरहंसे व्याहरू नय युवंती गलेके भीतर ही अस्तप्टक्षन्द करती हुई गाती है?०६

विषसोदरी मृगांकः कृतांतदिशात आग् गतः पवनः ॥ जातपळाशः शिखरी पथिन कान्मारयंति ते त्रयः ॥ १०७ ॥

दीका─विपसोदरः मृगांकः कृतांतदिशात आगतः पवनः जातपलाशः शिलरी ते व्रयः पथिकान् मारयंति इत्यन्वयः ॥ विषं सोदरः सहेदरः यस्य एवंभूतः मृगांकः चंद्रः कृतांतो यमः तदिशातो दक्षिणतः आगतः पवनः जातपलाशः जातानि पलाः शानि पवाणि यस्य तथाभृतः शिलरी वृक्षः अथवा जाता पले मासे आशा अभिलापा यस्य तथाभृतः अव विपसोदरत्वाचंद्रस्य कृतांतदिशातः आगमनान् पवनस्य तथा पले वांळाजातत्वात् शिलरिणः मारकः त्वं मुक्त व्याणामेव पथिकमारणे योग्यताकारण-त्वं मुक्त व्याणामेव पथिकमारणे योग्यताकारण-त्वं मुक्त व्याणामेव पथिकमारणे योग्यताकारण-

अर्थ-विष महोदर चंदमा और यनकी दिशा दिशिणकी ओर में आपा द्वरा बाबु और जातपत्राश अर्थान नवीन पत्र उत्पन्न हों निममें देमा देश अयवा जानपत्राशका अर्थ मान दूर्व है पत्र अर्थान मोमकी आशा अभिन्याचा निमकी देशा 'यस पे तीन पथिकोंको मारक अर्थान कामदेवकी बाधागे मृनवाय करने वान्त हैं इसमें विषका सहोदर अर्थान समुद्रेगही विष और चंद्र दोनों उत्पन्न होनेसे चंद्रमाका और यमकी दिशास आनेसे दक्षिणकी पवनको और मांसकी अभिलापा ऐसे शिरारी-को मारकत्य टीक ही है इससे इन तीनोंमें पथिक भारणकी योग्यताके फारण होनेसे हेनु जलंकार हवा ॥ १०७ ॥

(भाषा) देहा-जहां उत्पादक कर्नुकी, युक्त योग्यता होय । कान्यरसिक पंडित कहे, "हेतु" अलंकृत साय ॥१ ॥(टहाहरण) विपसीदर शशि फाल पन, यम दिशियदत वयाग जातपलाश

पलाश तह, पिराहिनि मारत चार ॥ २ ॥

पर्गायोक्ति ।

अतत्परतया यत्र कल्पमानेन वस्तनाः। विवक्षितं प्रतीयेत पर्य्यायोक्तिरियं यथा॥ १०८॥

टीका-चत्र अतत्परतया करूपमानेन पर्तना विवक्षितं प्रतीयते इयं पर्यायोक्तिः इत्यन्वयः ॥ यथा-पदं मुदाहरणार्थम् अतत्परतया न विवक्षितपरतया कल्पमानेन वस्तुना अर्थेन विवक्षितं वकुमिएं प्रतीय-ते प्रतीतिं प्राप्यते सा पर्यायोक्तिः पर्यायेण शब्देन अर्थेन च उक्तिः वचनं यत्र सा ॥ १०८॥

अप-जो कुछ कहनेकी इच्छाही उससे भिन्न वचनोंने कभिन धरतुमें जहां विवक्षित बनाक अभीष्टकी मतीति हो जाय है। उमे पर्यायोक्ति अलंकार कहते हैं ॥ १०८ ॥

त्वत्सेन्यवाहनिवहस्य महाहवेषु द्वेपः प्रभा रिष्रपुरंधिजनस्य चासीत् ॥ एकः (१५६) घामंत्रालेकार-परि०४.

खरेर्बहुळरेणुतातिं चकार तां संजहार पुन-रश्चजळस्तदन्यः ॥ १०९ ॥

टीका-हे प्रभी महाहवेषु त्वत्सैन्यवाहानेवहस्य प रिषुप्रराप्रिजनस्य द्वेषः आसीत् एकः छुरेः बहुलेख्यति चकार तदन्यः पुनः अश्वजलेः ता संजहार इत्यन्वयः॥ सैन्यस्य वाहाः अश्वादयः तेषा निवहः समृहः रिष्रणी

पुरंत्रिजनः सीजनः तस्य द्वेषः वेरं महादेवेषु महार् रणेषु प्कः सैन्यवाहनिवद्दः सुरेः बहुळां रेणुताति धृळिः विस्तारं चकार तदन्यः रिषुपुरंत्रिजनः अश्चज्ञेळः ती रणुतानि पुनः संजदार निराचकार अञ्च आविवित्तिन परत्या विविद्यानस्य रिषुमारणस्य तत्सुरंश्चिमनम्देनेन स्वीतिः जायने अतः प्यायोक्तिरुळेकारः ॥ १०९॥ अर्थ-द मन्द्रा और आपके सञ्चाद्या वियोक्त परिश्व हो गणा ह स्वेति एक (आपके श्वादे सहस्वेत्रा समुद्र) तो अपन स्रोतं (वा वेद) से (बाव्येक सहस्वेत्रा) एक करावा दे और इस्ता (आपके सञ्चोद्या साम्या) अर्थन अस्तातीं से और

(बन्ता) देखान्त्रीय विवस्तित अवेदा, विना करे विज्ञान । क्रम्य कल्पनके निवे, कर्याकेकि क्रमान ॥ १ ॥ (उदावरक)

यो दाष्ट्रता है यहा यभित प्राप्तींने प्रथक रियु सिपीकि हदनमें विज्ञतित अर्थ श्रवमारणका मनीति हुई हममे परणीपोक्ति अर्थन

कार देवा है देवते हैं

ऑर निय अरु सब दूर्ट तुरम, घर परम्पर होत । ये गुर रग दारन महरू, पे निज अँतुयन धात ॥ २ ॥

समाहित ।

कारणांतरसंपत्तिः देवादारम्भ एव हि ॥ यत्र कार्यस्य जायेत तज्ज्ञायेत समा-हितम् ॥ ११०॥

हित्म् ॥ ११० ॥ टीका-मन कार्यस्य आरंभे देवात् एव कारणा-न्तरसंपत्तिःहि जायेत तत् समाहितं ज्ञायेत इत्यन्वयः॥

कारणीतरसंपत्तिः हेत्वंतरस्य संपत्तिः ॥ ११० ॥ अपं-नतः कार्यकः आरंभमें देवस ईशरः अथवा भाग्यस रत्यं भा अन्य कारणका संपत्ति पैदा हो नावे तो उसे समा-

हित महंकर बहुत हैं। ११०॥ मनस्विनी बहुमवेश्म गंतुमुत्कंठिता या-वदमृद्द निशायाम्॥ तावन्नवांमाधरधीर-नादम्रवोधितः सोधशिखी चुकुज॥१११॥

दीका-मनस्विनी निशायां यावत् वद्यभवेश्म गंतु-म् उत्कंठिता अभूत् तावत् नवांभोषरथीत्नादमवोधितः संपिरिशंशे चुक्का इत्यन्वयः ॥ मनस्विनी मानवती कांता वद्यभस्य भर्तुः वश्म ग्रहं गंतुम् उत्कंठिता गम-नाय उत्सुका अभूत् स्वमनसा एव मानं त्यका भिय-

तमागारे गंतुमुद्यतेति भावः तावत् नवभािधरस्य

नवमेघस्य धीरनादेन गंभीरध्वानेना प्रवाधितः सर सोधशिखी अद्यालिकास्थितो मग्ररः चुक्ज शब्दं कृतवानित्यर्थः अत्र मानत्यागे कर्य्यारंभे दैवात् मेध-गर्जनस्य च मेघगर्जननादेन मयुरध्वनेश्च कारणांतर-संपत्तिदर्शनात् समाहितालंकारः मेघगर्जनं मयूर-

ध्वनिश्च मानिनीमानभंगे कारणांतरम् ॥ १११ ॥ अर्थ-मानवती कामिनी रातको (स्वयं मान त्यागनेकी इच्छा कर) पतिके स्थानमें जानेको तयार होना चाहती ही थी कि

इसी अवसर पर नवीन पाइट ऋतुके भेवींकी गर्जनाके शब्द होनेसे बोजित हुवा अटारी स्थित मोर कुकने समा मेघोंका शब्द और मोरोंकी कुक अधिक कामोदीपक होनेक कारण मान स्याग-में यह देवी कारणांतरकी संपत्ति होनेसे समाहित अलंगार हवा ॥ १११ ॥ (भाषा) दोहा-त्रहां कार्य आरंभमें, देवा हेतु सहाय । अन्य

आपही होय कछु, कहत समाहित ताय ॥ १ ॥(उदाहरण) जब फानिनि निम मान तिन, चलन चहत पति पास । तबहि मेपए मार धन सन अति चढची इलास ॥ २ ॥

परिवृत्ति ।

परिवर्तनमर्थेन सदृशासदृशेन वा ॥ जा-येतार्थस्य यत्रासी परिवृत्तिर्यथा मता ११२

टीका-यत्र सहशासहशेन वा अर्थेन अर्थस्य परिवर्तनं जायेत असी परिवृत्तिः मता इत्पन्त्रयः ॥

सान्वपसँ े टीं ने भाषाटीकासहित । (१५९)

यथापदमुदाहरणार्थं सहशासहशेन समेन न्यूनाधि-केन वा परिवर्तनं विनिमयः॥ ११२॥

अर्थ-जहाँ समान अथवा न्यूनाधिक अर्थसे अर्थका पहटा हो-जाये तो उसे परिषुति अर्छकार कहते हैं ॥ ११२ ॥

अंतर्गतन्यालफणामणीनां प्रभामिरुद्धा-सितभुपु भर्तः ॥ स्फुरत्प्रदीपानि यहाणि सुन्त्वा ग्रहाभु शेते लदरातिवर्गः॥१९३ ॥

टीका-हे भर्तः त्वर्गतिवर्गः स्फुरत्वर्शपानि
गृहाणि मुक्ता अंतर्गतव्यालकणामणीनां प्रभाभिः उद्धासितभुषु गृहासु शेते इत्यन्वयः ॥ हे भर्तः हे राजत् ।
त्वर्गतिवर्गः तव अग्रतिवर्गः शञ्चसमृहः स्फुरंतः
प्रदीपाः येषु तथाभृतानि गृहाणि मुक्ता विद्याय अंतर्गतानां व्याह्यानां सर्पाणां ये फणामणयः फणास्थमणयः
तेषां प्रभाभिः कांतिभिः उद्धासिता भूः पृथिवी यासां
तथाभृतामु ग्रहासु पर्वतकंदरासु शेते श्यनं क्यातं
तथाभृतामु ग्रहासु पर्वतकंदरासु शेते श्यनं क्यातं
स्वाभृतामु ग्रहासु पर्वतकंदरासु अतः परिवृत्तिरः
सतिगिरिकंदरेण परिवर्तनम् अतः परिवृत्तिरः
कारः ॥ १९३॥

अर्थ-दे भर्चः है शत्रन् आपके शत्रुवोका सदह रपुरित दीप-कांसे संयुक्त अपने स्थानीकी छोडकर भीतर <u>धरे</u>र दूप सर्पोक (१६०) वाग्भटार्छकार-परिं० ४.

प्रणोंको मणियोंकी कांतिसे प्रकाशित भूमिवाडी पर्वतोंकी एका अमिं (छुप कर) सांत हैं यहाँ स्फ्रिंत दीपयुक्त स्थानोंक सर्पमणि कांति प्रकाशित एकासे बदला होनेसे साहत्र्य रूप परि प्रति अलंबार हवा ॥ ११३॥

सपमिणि क्विति म्काञ्चित ग्रुकाले बदला होनेसे साह्य्य हुए परि प्रति अलंकार हुवा ॥ ११३ ॥ दत्त्वा प्रहारं रिप्रपार्थिवानां जम्राह्यः सं-यति जीवितञ्यम् ॥ शृंगारमंगां च तदंगनानामादाय दृःखानि ददो स-

दीका-यः संयति रिपुपार्थिवानां प्रदारं दत्त्वा जीवि-तव्यं जमाह च तदंगनानां शृंगारमंगीम् आदाय सद्देव दुःखानि दद्दे इत्यन्वयः ॥ संयति संमामे रिपुपार्थ-वानां शञ्चतृपाणां महारं शस्त्रभहारं दत्त्वा जीवितव्यं जीवितं जमाह महणं चकार तदंगनानां शञ्चनितानां शृंगारभंगीं शृंगारविन्यासम् आदाय गृहीत्वा दुःखानि

देव ॥ ११४ ॥

द्दी दत्तवान् (संयत् स्नी. युद्धे, भंगी स्त्री. विन्यासे भेदे चिति शन्दस्तीम॰) अत्र प्रहारजीवनयोः शृंगारभंगी-दुःखयोश्र असादृश्येन विनिमयः अतः असादृश्य-परिवृत्तिरळंकारः ॥ ११४ ॥ अर्थ-वह राना युद्धें अपने वैरी नृषेको (शक्का) महार देकर दनका जीवन् ऐता भूषा और श्ववेंगेको विर्योग्य शृंगार

देवर दनका नावन छता भया आर स्वयंबका एम्पान रहेगा छानकर सदा टनको हुम्ब देता भया यहाँ महार देकर पल्टेमें जीवन छेना और चूँगार छकर पल्टेमें हुम्ब देना पैसा बर्बन होनेसे असाहरूप परिश्वति अर्छकार हुया ॥ ११४ ॥ (भाषा) दोहा-जहां वस्तुका वस्तुक्षेत्रपटरा वर्णन होय।परि-पृषो तिति जानिये, असम और सम होय ॥ १ ॥ (हदाहरण) प्पारं मोमन हेरपके, दीनो दुःख अपार । जब सब मुख दीये नहीं, देखें कमस्ट निहार ॥ २ ॥

यथातंख्य ।

यत्रोक्तानां पदार्थानामर्थाः संवंधिनः पुनः ॥ क्रमेण तेन वध्यते तद्यथासंख्य-सुच्यते ॥ ११५ ॥

टीका--यत्र उक्तानां पदार्थानां संबंधिनः अथाः
पुनः तेन क्रमेण वध्यंते तत् यथासंख्यम् उच्यते
इत्यन्वयः ॥ तेन क्रमेण पदार्थवर्णनक्रमेण ॥ ११५॥
अर्थः-जहां उक्त पदार्थोते संबंधरस्य बाले अर्थ किर उसी
क्रमसे बाध नार्थ अर्थात्व वहे नार्थे तो उसे प्रयासंस्य अलंकार
वहते हैं ॥ ११५॥

मृदुभुजलतिकाभ्यां शोणिमानं दधला चरणकमलभासा चारुणा चाननेन ॥ विसक्तिसलयपद्मान्यात्तलक्ष्मीणि मन्ये विरह्विपदि वैरात्तन्वते तापमंगे ॥ ११६॥

टोका-विसकिसलयपद्मानि मृदुभुजलतिकाभ्यां शोणिमानं दघत्या चरणकमलभासा च चारुणा आन-नेन आतलक्षमीणि मन्ये विरह्मविपदि वैरात् अंगे तापं तन्त्रते इत्यन्त्रयः ॥ विसानि मृणालानि किसः लयाः पछ्नाः पद्मानि कमलानि एतानि यथाकमम् आत्तल्क्भीणि विसानि सुजलतिकाभ्यां, किसल्याः नि शोणिमानं द्धत्या चरणकमलभासाः, पद्मानि चारणा आननेन् मुखेन आत्तलक्भीणि आताः प्राता लक्ष्मीः शोभा यः तथाभृतानि विसकिसल्यपद्मानि मृदुसुजादीनां लक्ष्मीद्रणविरात् विद्राविपत्तां शरीरे तापं न निराक्षविति कित्त तापं क्षवित्येव अत्र सुजलः

तारीनां पदार्थानां संबंधिनः पदार्था विसादयः यथाः कमं निबद्धाः अतो यथासंख्यमलंकारः ॥ ११६ ॥

अर्थ-कमलकी नाल और पत्र तथा कमल इतने की नल भ्राज ताम तथा कमल की शीभारी तथा महिल भ्राज कमलकी शीभारी तथा मुंदर मुगमे प्रथाकम मुंदरता पान करी है (छीन कर ही है) इम रेगमें ही पत्र हि विश्व निर्माण अंगोंमें संताय करते हैं गई विमाद की की किया पत्र हो है गई विमाद की स्वाप (पत्र) तथा पत्र होने मेरे शेर से रेग पत्र मुगलना पाण कमलकी कीने और मुंदर मुगहा हो। क्रमें यार्थाण वर्णन है इमारे प्रथानिक अर्थन का हो। क्रमें प्रधानिक अर्थन का हो। क्रमें प्रधानिक अर्थन का हो। क्रमें का स्वाप का

(भाषा) दोहा-ययार्मनवः संबंधि वद्, क्षेत्र यवाकम संग । सुंदर्गः मृत्र इत कव निर्मात, क्ष्मित्रं कंत्र स्था भेष ॥ १ ॥

विषयानं कार ।

वम्तुनार्यत्र संबंधमनाचित्येन कनचित्॥ असमार्व्यं वदेहका तमाहविषमं यथा॥

॥ १९७ ॥ केदं तव वपुर्वत्से कदलीगर्म-कोमलम् ॥ कायं राजमति ! छेशदायी वतपरिग्रहः ॥ ११८ ॥

टीका—यत्र वक्ता वस्तुनोः असंभाव्यं संत्रंथं केन-नित् अनोचित्येन वदेत् तं विपमम् आहुः इत्यन्वयः॥ (यथापदं वस्यमाणोदाहरणमूचकम्) वस्तुनोः द्रयोः पदार्थयोः अनोचित्येन केनचित् अधित्यग्रहितेन असंभाव्यं संभाव्यताविरुद्धं संबंधं वदेत् तं विपमं विपमालंकारम् आहुः धुषा इति शेषः॥ १९०॥ । (अस्योदाहरणम्) हे राजमति । हे वस्से । कदली-गर्भकोमलम् इदं तव वषुः क क्रेशदायी अयं मृतपरि-महः क इत्यन्वयः॥ कदलीगर्भकोमलं संभागर्भवन्म-पुलं क्रेशदायी दुःखदः मृतपरिमहः चपवासादिमहण-निवमः अत्र कोमल्यपुषः कठिनमृतपरिमहस्य च अनीचित्येन संवंषः अतो विपमालंकारः॥ १९८॥

अर्थ-नहां यता दो चरतुका असंभाष्य संबंध हिसी अनु-भित भावसे वर्णन कर तो कथि होग उसे विषम अर्थकार कहने हैं (इसका उदाहरण) जैसे हे राजमति दे यासे थेखेर अंतरगर्भक समान कोमल तुम्हारा कार्यर ती कहा और हिसा-दावक यह मत (उपचामादिका) वर्षावह धारणनियम कर्र इसमें कोमल क्रांस्का करोह कार्तिस असंभाष्य अनुचित भाव-पूर्वन मंथ्य पूर्णन होनेसे विषवाहंकार हुवा। प्रिका १९८॥ (१६४) याग्भटार्छकार-परि० ४.

(भाषा) दोहा-विषम नहां संबंध हो, अनुचित दूर इह भार। कित सिय अति फोमल बदन,कित बन गमन कडोर ॥१॥ सहोकि ।

सहोक्तिः सा भवेदात्र कार्यकारणयोःसह॥ समुत्पत्तिः कथाहेतीर्वकुं तज्जन्मश

क्तिताम् ॥ ११९ ॥ टीका-यत्र कथाहेतीः तलन्मशक्तितां वक्तं कार्यः

कारणयोः सह समुत्पत्तिभैत्रेत् सा सहोक्तिः इत्यन्वयः॥
कथाहेतोः कथननायकस्य तज्ञन्मशक्तितां तयोः
कार्यकारणयोः जन्मशक्तिः तस्याः भावः ताम् अथवा
हेतोः कारणस्य तज्ञन्मशक्तितां तस्य कारणस्य काः
यंन्य वा उत्पत्तिशक्तितां वकुं कार्यकारणयोः मह
ममुन्यत्तिरुवा समकालसमुत्याद्वातां भवेन् मा
महोकिः ममुन्यत्तिः कथाहेतोः इत्यत्न समृत्यत्तिरुवाः

हेनी: हिने भी छिद्र: 11 999 11 अर्थ-नदा कथाके देन अर्थात वश्यके नायक और पर्द कारणेट दे पादन हानिक सामको कहनेमें कार्य और फारणकी मारदी दे पनि हो ही देरी महीनि अर्थकार कहने हैं अपना

च्छं महत्त्वक्या क्वा क्वर मानवर्षा ११९॥ आदन मह यञ्चा नमयति मार्ह मदेन मग्रामे । मह विहिपां अियाऽमा कोदंड कपॅनि श्रीमान ॥ १२०॥ टीका-अमी श्रीमान् संगामे कोइंड विद्विपां यशसा सह आदत्ते मदेन साई नमयति श्रिया सह कर्मति इत्यन्ययः ॥ असी श्रीमान् नुपः कोइंड धनुः विद्विपां शञ्जां यशसा सह आदत्ते गृह्णातीत्यादि अत्र कथा-नायकस्य शज्ञः तत्सामर्थ्यं चकुं कोइंडक्पंणादिकं कार्णं यशोग्रहणं मदापनयनं श्रीहरणं कार्यं समकाल मेनोक्तम इति सहोक्तिरलंकारः ॥ १२०॥

अर्थ-यह राजा संमाममं प्रमुपको श्राप्तांक पश्के सापदी हिता भाग और उनके गर्पक सापदी नवापता भाग और उनकी हरभांक सापदी संघता भाग यहां फ्यानायक राजाक प्रताप वर्णन करनेमं प्रमुप हिना नवाना संघता कारण श्राद्धना पश् हिला गर्प नवादेना और हरभी संघता कार्य सापदी हुए इससे सहांकि अर्थकर हुए। ॥ १२०॥ (भाग) हिना-को महीनि जहें हुए अस्य हुएसा सापदि

(भाषा) दोहाँ-सो सहैकि जहें कार्य अरु, कारण सायहि होय । भूव राज्य यश सिधु तक, सायहि वहेंचे दीव ॥ १ ॥

विरोध ।

आयाते हि विरुद्धत्वं यत्र वाक्ये न तत्त्वतः॥ शन्दार्यकृतमामाति स विरोधः स्पृतो यथा ॥ १२१ ॥

र्टाका -यत्र वाक्ये आयाते शन्दार्थकृतं विरुद्धत्वम् आभाति हि तत्त्वतः न स विरोधः स्मृतः इत्यन्वयः॥ (यथापद्मुदाहरणार्थः) आयाते तत्काळे पठनश्रवण (१६६) वाग्भटालंकार-परि० ४.

मात्रे इत्यर्थः शब्दार्थकृतं शब्दकृतम् अर्थकृतं च त्रिरः द्धत्वम् आभाति दृश्यते परंतु तत्त्वतः वाक्यार्थतत्त्वः ज्ञानतः विरोधत्वं न भवेदिति स विरोधः विरोधालंकारः (एप विरोधाभासनाम्रापि प्रसिद्धः)॥ १२१ ॥ अर्थ-जहा बारयमें तत्काल पडन श्रवण होतेही तो शब्दश अथवा अथंका विरुद्धत्व जाना जावे परंतु वास्पका तत्त्व जानेन

पर विरुधत्व न हो ता उसे विरोधालंकार कहते हैं (इसे विरी) धाभात भी कहते हैं) ॥ १२१ ॥ दुर्वारवाणविभवेन सुवर्मणापि लोकोत्तः रान्वयभ्रवापि च धीवरेण ॥ प्रत्यर्थिए

प्रतिरणं स्वलितेषु तेन संज्ञामवाप्य युर्घे पुनरेव जिंद्युः ॥ १२२ ॥ दीका-जिप्णुः प्रतिरणं प्रत्यधिषु स्वितिषु तत्ता

तेन दुर्वाग्याणविभवेन सुवर्मणा च लोकोत्तरान्यपः भुवा धीवरेण अपि मंज्ञाम अवाष्य पुनरेव सुयुधे इत्यन्ययः॥ जिप्णुः जयनशीलः वाग्याणः कपपः दुर्वारयाणविभवः दुर्भगौ निद्यःवारयाणस्य विभवो यस्य म तेन सुवर्षणा सुष्ठ वर्ष कवती बस्य सः सुवर्षा तेन

यः निद्यक्षयाः संशुत्रमां न भवति इति अवणमान नु विरोपः वस्तुतस्तु दुर्वास्थाणतिभवन दुर्वारः याणः स्य विनवी यस्य म तेन शुप्तमंगा इत्यर्थः एपमा लंकोनगन्यववृत्रा लंकि उत्तरा श्रेष्टा अन्त्रपरम वे

शरंप भः उत्पक्तिरधानं यस्य स छोकोत्तरान्वयभूः तेन श्रेष्टवंशोद्रवेन धीवरेण धीवरी निपादः यो धीवरः स कथं श्रेष्टवंशाद्भवः इति तत्काले त विरोधो हश्यते यस्तुतस्तु धीवरः धी बुद्धिः वराश्रेष्ठा यस्य स धीवरः तेन सुयुद्धिना श्रेष्टवंशोद्भवेनेत्यर्थः अत्र तत्काले तु शाब्दिको विरोधो दृश्यते परंतु न तत्त्वतो विरोधः इति विरोधारुकारः ॥ १२२ ॥

अर्थ-जिच्छ अर्थात् जयनशास कोई शूरपीर हरेक युद्धमें मतिपक्षियोंके रामित (पराजित) होनेपर उस दुर्वारपाण सुप मां (तरावकवववांक व अच्छे कवववांक) से तथा श्रेष्ठ पंश में उपप्र होने वाले धीवर कहारसे भी वितन्य होकर फिर गुद करता भया (यहा पहले हुर्यास्थाणविभवका अर्थ राराप प्रयमक विभव पाला दीरानेस सुवर्मा अच्छे वाला पही फैसे हा यह विरोध दीवाता है घरंतु नाम्यार्थ विचारनेसे दुर्यारवाण विभवना अर्थ इतिवार हे वाणांका विभव निसका पैसा सुवनी यह तस्पार्थ द्वया और पान्तविक विशेष नहीं रहा इसी मकार अच्छे वंशमें होने पाला फिर धीयर कहार केसे वह विरोध मतीत हुपा परंतु पर्वतः धीपरका अर्थ योगिक शक्तिसे धी पुद्धि है यह अर्थात् भेष्ठ जिसकी शी धीवर ऐसा अर्थ करनेस पान्तविक विरोध नहीं रहा इससे यह शाब्दिक विरोधालंकार

प्रया ॥ १२२ ॥ येनाऋांतं सिंहासनमारेभृभृच्छिरांसि वि

नतानि ॥क्षिप्ता युधि शूरपंक्तिः कीर्तिया-ता दिगंतेषु ॥ १२३ ॥

(१६८) वाग्भटालंकार-परि० ४.

टीका-येन सिंहासनम् आकांतम् आरिपूमृच्छितं सि विनतानि युपि शरपंक्तिः क्षिप्ता कीर्तिः दिगतेषु याता इत्यन्वयः ॥ आरिपूमृच्छिरांसि शहुनृपमतः कानि अत्र सिंहासने आकांते शिरसां नमनं तथा च शरपंक्तिक्षेपणे कीर्तेः दिगंतगमनम् इति अयं विरोधः॥ १२३॥

अर्थ-उस (राजा) ने सिंहासनपर आक्रमण किया और

शान्त नृपंकि शिर नीचे होगये और युडमें वाणोंकी पंक्ति छोडी और कीर्ति दिशावोंके अंत तक पहुँची इसमें सिंहासनपर आक-मण होना और नीचा होजाना वीर्त्योंका शिर इसीतरह छोड़ना ती वाण और दिगंतमें पहुँचना कीर्ति ये इष्टि मानके अपेसे विरुद्ध मतीत होते हैं इससे यह आर्थिक विरोधालकार हुवारेशों (भाषा) दोहा-विरुद्ध शन्दायें जु लखे,सों विरोध करिहें दीनों कमल नहीं यह कमटाई. जो मन करत मलीन ॥ १॥

अवसर ।

यत्रार्थीतरसुरक्वष्टं संभवत्युपलक्षणम् । प्रस्तुतार्थस्य स प्रोक्तो बुधेरवसरो यथा ॥ १२४ ॥

टीका-यन प्रस्तुतार्थस्य उत्कृष्टम् अर्थातरम् उप-छक्षणं संभवति स् बुधैः अनसरः प्रोक्तः इत्यन्ययः ॥ यथापद्युदाइरणार्थे प्रस्तुतार्थस्य प्रकृतार्थस्य उप-रुक्षणं समीपस्थस्य रुक्षणं ज्ञानं भवति यस्मात् तदु- पलक्षणं स्वस्य तत्संबंधिनोऽन्यस्य च अजहत्स्वार्थया लक्षण्या वोधकभित्यर्थः ॥ १२४ ॥

अर्थ-जर्श प्रस्तुत अर्थका उन्ह्रष्ट अर्थातर उपलक्षण रूपसे हो ते। पिदान उसे अपसर अलंकार कहते हैं ॥ १२४ ॥

स एप निश्चितानंदः स्वच्छंदतमविक-मः॥ येन नक्तंचरः सोपि युद्धे वर्वरको जितः॥ १२५॥

टीका—स एप निश्चितानंदः स्वच्छंदतमविकमः नक्तंचरः वर्वरकः सः अपि येन युद्धे जितः इत्यन्वयः॥ निश्चितानंदः निश्चितः आनंदो यस्य अतिशयन स्व-च्छंदः विकमो यस्य स स्वच्छंदतमविकमः नक्तं रात्री चरति इति नक्तंचरः वर्वरको वर्वरदेशीयो रक्षसः ३२५॥

अर्थ-यह जो निश्चय आनंद्वाला अर्थात् अरोह आनंद्वाला और अर्थत स्वच्छंद वराकमवाला रावियर वो वर्वर (अर्थात् वर्षर देशमा रासस अथवा मूर्त) है देसभी निस रानान युद्धें भीत हिरा पढ़ी रामार्क जयेंग्र झड़के निश्चानंद् और स्वच्छं-दत्ताविकमत्त्व यह उन्ह्रेष्ट अर्थातर वपलसणमें हेनिस अयसरा-हेन्द्रार ह्या ॥ १२५ ॥

(भाषा) दोहा-सो अवसर कंचो अरथ, उपलक्षणमें होय । यह वर्षर अतिवल विभव, नृपने जीत्यो सोव ॥ १ ॥

सार ।

यत्र निर्द्धारितात्सारात्सारंसारं तत-

(१७४)

सदयत्वम् ॥ १२७ ॥

अलंकार हुया ॥ १२० ॥

स्ततः ॥ निर्द्धायेते यथाशक्तिः तत्सारः

मिति कथ्यते ॥ १२६ ॥

मार है और कुळानतामें धमिन्नता मार है और धमिन्नतामें भी दयायुक्त होनामार है यहां दक्षे एकमें सार होनेंगे गार

(भाषा) दीश-सार एकका एकदी, सार-तादिकी जात । नगर्ने मार ममृदना, ममृदनामें दान ॥ १ ॥ (गर्यप्या) हो वी पर मुख्य मैहक्से मीनकी और सेंद्रक निकास साथे परि टनर्गमा नग लिपरी हिपिया पृथ्यान सपारी । मागु निहार परी कर कॉकरि देम हे साम महा छवि मार्ग प्रवेश पर और व

वाग्भेटारं कार-परि० ४.

इत्यन्वयः ॥ निर्द्धारितात् निरूपितात् ॥ १२६॥ अर्थ-जहां निर्दारित सार्रमेसे फिर फिर यथाशकि सार

निकाला जापे तो उसे सार अलंकार कहते हैं ॥ १२६॥ संसारे मानुष्यं सारं मानुष्यके तु की

लीन्यम् ॥ कोलीन्ये धर्मित्वं धर्मिते चापि

टीका-संसारे मानुष्यं मानुष्यं कीलीन्यं कीलीन्य

धर्मित्वं धर्मित्वे अपि च सदयत्वं सारम् इत्यन्त्रयः॥

मानुष्यं मनुष्यत्वं कीलीन्यं कुलीनत्वम् ॥ १२७॥ अर्थ-संमारमें मनुष्यता सार है और मनुष्यतामें बुलीनत

शांकि सारंसारं निर्द्धार्यते तत् सारम् इति कथ्यते

टीका-यत्र ततस्ततः निर्द्धारितात् सारात् यथाः

हैं बहु मील महा सठ लोग कुरूपनि नारी ॥ २ ॥ इसेमें पहले सार और फिर इष्टोतालंकार है ।

श्टेप।

परेस्तेरेव भिन्नेर्वा वाक्यं वक्त्यकमेव हि ॥ अनकमर्थं यत्रासौ श्लेप इत्युच्यते यथा ॥ १२८ ॥

टीका-यत्र तेः एव पदैः भिन्नैः वा एकं हि वाक्यम् एव अनेकम् अर्थ विक्त असी छेप इति उच्यते इत्यन्वयः ॥ यथापद्मिममोदाहरणार्थं विक्त प्रति-पाद्यति ॥ १२८॥

अर्थ-नहां एकही पान्य (या शन्द) उन्ही यथाहर पहां करके अथवा भिन्न पहां (शन्द या वास्वके संडों) करके अनेक अर्थको मतिपादन करती उसे क्षेत्र अलेकार कहतेहैं १२८

आनंदमुह्रासयतः समंतात्करेरसंताप-करेः प्रजानाम् ॥ अस्योदये क्षोभमवा-प्य राज्ञो जग्राह वेलां किल सिंधुनायः १२९

टीका-अस्य राज्ञः उदये सिधुनायः किल सोभम् अवाप्य वेली जमाह कीदशस्य राज्ञः असंतापकरैः करेः समंतात प्रजानाम् आनंदम् उद्घासयतः इत्य-न्वयः ॥ राज्ञः उपतेः चंद्रस्य वा उदये अभ्युदये च सिधुनायः सिधुदेशाधिपतिः कश्चित् भ्रूपः अथ मा (१७१)

समुद्रः शोभम् अवाप्य पराभवम् उद्देगं वा प्राप्य वेलां तटभूमि मर्यादां वा जमाह गृहीतवान् इत्यर्थः । असे तापकरेः सुखदायकैः करैः राज्यश्राह्मभागैः वा हर्तः किरणैः वा प्रजानां लोकानाम् आनंदम् उल्लासयतः हर्पम् उत्पादयतः अत्र तैरेत्र पदेः श्लेपः ॥ १२९ ॥ अर्थ-इस राजाके अभ्युदय (मताप) के समय सिंधु देस का राजा भी पराभव (हार) मान कर मर्यादाका माप्त होता भया अर्थात् स्वाधीन नहीं रहा कैसा यह राजा है कि सुरोर्दन वाले करों (लगानों) से अयवा हाथोंसे प्रमाका आनंद वराने पालाई इन्हीं पदोंके दूसरे अर्थ होकर और भी अर्थ ही सकाई कि इस चंदमाके उदयके समय समुद्र शोभ उद्देग को पात हैं। कर किनारों को मान्न होता भया कैसा चंद्रमा है कि सुरादायक शीतल किरणोंसे मनुष्योंके हर्षका बढाने वालाहे । यह रानाका अर्थ राना और चंदमा दोनों हो सके हैं इसी भीत उदयका अर्थ उदय और प्रताप तथा सिधुनायका अर्थ सप्टर और सिंधु देशका राजा तथा क्षीभका अर्थ पराभव और उद्देग तथा वैलाका अर्थ तट और मयाँदा है इसी भौत करका अर्थ रामाका लगान समुळ आदि या हाथ अथवा हिरण है निमर्म राजा पक्षमें और चंद्रमा पक्षमें दोनोंमे उन्हें। पदीके अपेनेरे में दी अर्थ होतेम तत्पदर्शय अष्टंकार हुवा ॥ १२९ ॥

भिन्नगदश्टंपका उदाहरण ।

कुर्वन् कुवलयोद्धासं रम्यां-मोजश्रियं इरन् ॥ रज राजापि तचित्रं निशांत कां तिमत्तया ॥ १३०॥

सान्वयसं ॰ टी ॰ भाषाडीकासहित । (१७६)

टीका-राजा कुवलयोहासं कुर्वन रम्यां भोजश्रियं हरन् (सन्) निशांते अपि कांतिमत्तया रेजे तत् चित्रम् इत्यन्वयः ॥ राजा नृषः अथवा चन्द्रः राजपक्षे कुनलयोहासं कुः पृथिनी तस्याः वलयं मंडलं भूमंडल-मित्यर्थः तस्य उहासम् आनंदं कुर्वन् रम्यां भोजस्य नृपतेः श्रियं हरन् निशांते गृहमध्ये अपि कांतिमत्तया शोभावत्तया रेजे शुशुभे चंद्रपक्षे कुवलयानां कुमु-दानाम् उद्धासं विकासं कुवंन् तथा रम्या या अंभी जानां श्रीः तां इरच निशाया अंतं निशांतं तरिमन् निशांते निशायाः चतुर्थप्रहरे अपिकांतिमत्तया दीति-मत्तया रेजे शोभाम् अवाप इति तत् चित्रम् (निशांतं गृहं निशावसानं चेति श. स्तो.) अत्र भिन्नेः भेदखंडं माप्तः पॅदरनेकार्थस्य मतिपादनम् इति भिन्नपॅदेः श्लेपः अयं च सभंगक्षेप इत्युच्यते ॥ १३० ॥ अर्थ-इस श्रोकमें पदोंके खण्डार्थ करनेसे दूसरा अर्थ दोजाता है राजा राजाको भी कहते हैं और चंदमाको भी कहते हैं (१) राजा पक्षमें में। अर्थ है कि राजा कुरत्य ग्रु पृथ्वी वलय मंदल अर्थात भूमंडल को राहास (आनंद)करता हुवा और रमणीक भोज राजाकी एक्मी तिसकी हरण करता हुवा कार्तिक मभावसे निशीत (घर) में भी शोभाको माप्त होता भवा यह विचित्र है और चंदमा पक्षमें शुवलय (कमोदनी) के समृहकी उल्लास विकासित करता हुवा और रमणीक जी कमलीकी शीभा उनकी

नष्ट फरता हवा कांतिमता दीशिमतासे निशाक अंतमें भी

चंद्रमा शोभाको प्राप्त होता भया यह विचित्र है यहाँ फुक्टम कुमुद तथा भूमंडल और रम्यांभाज राजाकी भी तथा रम अभीजोंकी शोभा निशांत निशांका अंत तथा पर इस भात खंडें करके पदांके अनेक अर्थ होनेसे भिनयद क्षेत्र हुवा रहे सभाग क्षेत्र भी कहते हैं॥ १३०॥

(भाषा) दोहा-एक वाक्यके बीचमें, अयं अनेक जुहींय।

भिन्न अभिन्न पदीन ते, श्लेष कहावत सोय॥ १ ॥

(उदाहरण) करताबातरानमंखुशी, नित उठ चाहुँ पात । तिनशे सच संसारमें, भड़ेचे कहत बस्तान ॥ इस उदाहरणके देहिंम भड़ सुर धोर और भड़ेचे पातरोंके भड़चे ।

समुचय ।

एकत्र यत्र वस्तूनामनेकेषां निवंधनम् ॥ अत्युत्ऋष्टापऋष्टानां तं वदंति समुच यम् ॥ १३१ ॥

टीका-यन अत्युत्कृष्टापकृष्टानाम् अनेकेषां वस्तू नाम् पकत्र निवंधनं (स्थात्) तं समुचयम् वदंति इत्यन्ययः ॥ वन्कृष्टानां श्रेष्टानाम् वश्राणाम् अपकृष्टाः नां निकृष्टानाम् ॥ १३१ ॥

अर्थ-नहां अन्यंत भेष्ठ (क्रचे) या नीचे पदार्थीका एकप निवंधन हो तो: अँप् समुख्यार्थकार कहते हैं ॥ १३१॥

अणहिस्ट्रपाटेलं पुरमवनिपतिः कर्णदेव-चपमुत्तः॥श्रीक्लश्नामधेयः करी च ज- गतीह रत्नानि ॥ १२२ ॥ श्रामे वासो नायको निर्विवेकः कौटिल्यानामेकपात्रं कलत्रम् ॥ नित्यं रोगः पारवश्यं च पुंसामे-तत्सर्वं जीवतामेव मृत्युः ॥ १३३ ॥

टीका-अणिहेखपाटलं पुरं कर्णदेवनृपसूनः अव-निपतिः च श्रीकलशनामधेयः करी इह जगति रवाः नि इत्यन्वयः ॥ अणिहेखपाटलं नामकं पुरं कर्ण-देवनृपसृतः कर्णदेवराज्ञः पुत्रः श्रीजयिसहेदेवः अविन् पतिः भूपतिः श्रीकल्शनामा करी इस्ती इह जगति संसारे श्रीणि रवानि इत्यथेः अत्र उत्कृषानी वस्तुनी निवंधनेन समुचयालंकारः ॥ १३२ ॥ मामे वासः निवंवेकः नायकः कीटिल्यानाम् एकपात्रं कलात्रं नि-त्यं रोगः च पारवश्यम् एतस्तव जीवताम् एव पुंसौ मृत्युः इत्यन्वयः ॥ नायकः पतिः निवंवेकः सूखेः कीटिल्यानी कृटिलभावानाम् एकपात्रं कलात्रं पत्नी अत्र अपकृषानां वस्तुनां निवंधनेन समुचया-लकारः॥ १३२ ॥

अपं-अणिदिसपाटल नामक नगर और कर्णदेव नुपका पुत्र अपसिंद देव रामा और भीकटरा नामक हाथी ये तीतो हस संसारमें रज हैं पहा श्रेष्ठ भेष्ठ चरश्चोंका एकन निषंध होनेस ससुप्रयालकार हुया ॥ १३२ ॥ छोटे ब्राममें बसना निर्धिय क (मूर्ख) पति और अत्यंत कुटिस्ताकी खान सी निय रेग रहना तथा परवश होकर रहना य सब जीते हुव ही मनुप्योंकी मृत्यु (के समान) हैं यहाँ निक्ष्ट वस्तुवोंका एकत्र निर्देथ होने से समुख्यालेकार हवा ॥ १३३॥

(भाषा) दोहा~एक ठाँर हुभ या अग्रुभ, बहु वस्तुनका होत्र। समावेश तिर्हि कहतहैं, नाम समुख्य होय ॥१॥ (इदाहरण) ध्रत सुपत सुशील तिय, सरल मित्र हडकाय । स्थिरसंपत सुंदर भवन, राम कृपाते पाय ॥ २ ॥ सुत कुपत तिय कर्कशा पूर्व मित्र थिर रोग। द्वात दरिह कुलपायते, पायहिं पामर लोग॥१॥

अप्रस्तुतप्रशंसा ।

प्रशंसा कियते यत्राप्रस्तृतस्यापि वस्तुः नः॥ अप्रस्तुतप्रशंसां तामाहुः कृतिधयो यथा ॥ १२४ ॥

: टीका-यन अप्रस्तुतस्य अपि वस्तुनः प्रशंसा क्रियने तां कृतिथियः अप्रस्तुतप्रशंसाम् आहुः इत्य-न्ययः॥ अप्रस्तुतस्य अप्रकृतस्य प्रस्तुतादन्यस्य-त्यर्थः कृतिथयः कृता थीः बुद्धिः यः ते कृतिथयः पंडिताः॥ १२४॥

अपे-नदी अमन्तन अभीत् वर्णनीयमं अन्यकी महोसा करी जारे ती उसे कृतर्हें व्यक्तियन अमन्त्रश्रामा अप्रेंगर कहते है महोसाका अभिनाय यही सम्बद्धांस स्तृति और असन्यरीमा निदा होनेहें होते हैं ॥ ११४ ॥ स्वेरं विहरति स्वेरं शेते स्वेरं च जल्प-ति ॥ भिक्षरेकः मुखी लोके राजचौरभ-योजिझतः॥ १३५॥

टीका—स्वैरं विद्दर्शत स्वैरं शेते च स्वेरं जरूपति (अतः) क्रोंके राजचीरभयोज्झितः एकः भिक्षुः सुखी इत्यन्वयः ॥ स्वैरं स्वातंत्रेण राजचीरभयोज्झितः राजभयेन चीरभयेन च उज्झितः रहितः अत्र अम-स्तृतस्य संसारिणः असत्प्रशंसासृचनात् अपस्तुतप्रशं-

सार्छकारः ॥ १३५ ॥
अर्थ-इस संस्वारमें राजा और चौर आदिक अपसे रहित एक
भिम्नेकही सुर्ती है यह रचतंत्रवासे विचतता है स्वतंत्रता 'देक स्रोता है और स्वतंत्रवास विचतता है स्वतंत्रता 'देक स्रोता है और स्वतंत्रवास पर्वक बोलता है यहां अमस्तृत संसारी मृत्यन्वी पर्यावतास असत्मर्वासाकी मृत्यनासे अमस्तृतमर्वासा अलंकार हुए। ॥ १३५ ॥

अध्यक्तर पुरा ॥ १२२ ॥ (आपा)होहा-अमलुतको स्नुतिभये, अमस्नुतमशंत । धनि जन पद इत धराने रज, चडहि भूप अवतंत ॥ १ ॥

एकावछी ।

पूर्वपूर्वार्थवैशिष्टवानिष्ठानामुत्तरोत्तरम्॥अ-थानां या विरचना दुधेरेकावळी मता१३६॥

थाना या विरचना बुधरकावळा मता १३६॥ टोका-पूर्वपूर्वार्थेवेशिएबनिष्टानाम् अर्थानाम् इत्तरोत्तरं या विरचना (सा) बुधैः एकावळी मता - (१७८) याम्भटालंकार-परि० ४.

इत्यन्त्रयः ॥ पूर्वपूत्रार्थेभ्यः वैशिष्टचनिष्ठानां श्रेष्ठतः

निष्टानाम् अर्थानाम् वस्तूनाम् ॥ १३६ ॥ अर्थ-जहां पहले पहलेसे श्रेष्ठ संदुर्गोधी उत्तरीसर राजा हो तो पंटित लोग तमे प्रजावनी अनंतरा स्टूरते हैं ॥ ११६ ॥

क्षेत्र समृद्धनगरी नगराणि च सप्तमः देशः समृद्धनगरी नगराणि च सप्तमः

दशः समृद्धनगरा नगराणि च सप्तमः मनिलयानि ॥ निलयाः सलीलललना ललनाश्चात्यंतकमनीयाः॥ १३७॥

टीका-समृद्धनगरः देशः सत्तभूमनिलयानि नगः रागि सलीलललना निलयाः अत्यंतकमनीयाललना

राणि स्लालललमा । नलयाः अत्यवक्रमनायाललमा इत्यन्त्रयः ॥ सप्तभूमानिलया आरासग्रहाणि यन अत्रोत्तरोत्तरमर्थस्य वैशिष्टवात् एकावलीनामाले

अञ्चात्तरीत्रमर्थस्य वैशिष्ट्यात् एकाव्छीनामाले फारः॥ १३७॥ अपे-सा वर्गा उत्तम है महा समृद बहुतंत नगर हो भीए

अप-न्या नगा उत्तम है गहा समूद बहुतरा नगर है। भार नगा पी है त्राही बहुतमें सत्तम के महान है। सहान पही नगा श्री श्रीलायुक्त स्थानन है। और श्रीकृत पही की अपनी मुंदर ही यहाँ दक्षांगर अर्थेंडी विशिष्टनागे ब्याब्डी अर्थेंडी हुदर ही यहाँ हुए स्थान

(सापा) दोडा-उपरोधर भेड हो, सा एकापटि मान ह

हरर को जिन कामनी, कामिन मा जिन कान ॥ र ॥ अनुमानाईकार । प्रत्यक्षाहिंगनी यत्र कारुत्रिनयपर्शिः नः॥ टिमिनो भवति द्यानमनुमानं सद-

च्यने ॥ १३८ ॥

टीका-यत्र प्रत्यक्षाव् छिंगतः कालत्रितयवर्तिनः हिंगिनः ज्ञानं भवति तत् अनुमानम् उच्यते इत्य-व्याप्तः ॥ प्रत्यक्षात् छिंगतः इदियार्थसंनिकपंजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षं तस्मात् परिदयमानचिद्वात् काल-त्रितयवर्तिनः अतीतवर्तमानानामतस्य त्रिकालसंयं-धिनः अनुमेयस्य वस्तुनः यत्र ज्ञानं भवति तत् अनुमानम् ॥ १३८॥

अर्थ-जहाँ मन्यक्ष चिद्धंस विकालवाँत अहर्य यम्तुका हान (मोप) हो तो दसे अनुमान अलंबार यहते हैं ॥ १३८ ॥

तृतं नदास्तदाश्चनत्रभिषेकाम्मसा प्रमोः॥ अन्यथा कथमेतासु जनः स्नानेन शु-ध्यति ॥ १३९॥

टीका-प्रभोः अभिषेकान्मसा तदा तूनं नदाः अभूवत् अन्यया एतास स्रान्न जनः कथं शुभ्यति इत्यन्वयः ॥ प्रभोः कृष्णस्य जिनस्य वा तदा जन्य-काले अभिषेकांमसा अभिषेकजलेन तृनं निश्चयेन नदाः अभूवत् नदाः आसत् अन्यथा नो चेत् तदा एतासु नदीषु स्नानेन जनः मनुष्यः कथं केन प्रकारेण शुभ्यति अत्र प्रत्यक्षतः जनशुद्धिरूपिलंगात् गतका-लव्दिनः प्रभोः अभिषेकजन्यजलस्य ज्ञानात् अनु-मानालंकारः ॥ १२९ ॥

अर्थ-ममु कृष्ण या ऋषभदेवके जन्मकालके अभिषेक सान रूप जलसे अवश्य ये निर्देश वनी हैं यदि ऐसा नहीं तो इनें स्तान करके मनुष्य क्यों शुद्ध होजाते हैं यहाँ प्रत्यक्ष जनगृदि रूप चिद्वसे यत मभुके अभिषेकका बोध होनेसे अनुमानाहंहार

क्य विहास गत मधुके अभिषेकका बोध होनेसे अनुमानातंत्रार हुगा । १३९ ॥ जंभजित्ककुभि ज्योतिर्यथा शुभ्रं वि जंभते ॥ उदेष्यति तथा मन्य खलः सिख् निशाहकः ॥ १९० ॥ मन्यक्रमानाभित्रकाः

निशाकरः॥ १४०॥ मुखप्रभाषाधितकां तिरस्या दोपाकरः किंकरतां विभिति॥ तस्त्रोचनश्रीहतिसापराधान्यव्जानि नीः

तछोचनश्रीहतिसापराधान्यव्जानि नी चेत् किमयं क्षिणोति ॥ १४१ ॥

र्धका-इ मिन यथा जंभजित्ककुभि शुभं उपी तिः विश्वंभते तथा मन्ये खलः निशाकरः उदेप्यति इत्यन्त्रयः ॥ जंभजित् जंभाषुरीन्हेता इदः तस्य

ककुण दिशा तस्यां अभे ज्योतिः शेनमकाशः विः जुमने प्रदीत्यते अभ पूर्वस्यां दिशि प्रकाशदशेनएए वर्तमानचिद्वातः भाविनः निशाकरोद्यप्रपर्तिणिनः ज्ञातात् अनुमानाळेकारः ॥ १२० ॥ अस्याः गुराः प्रभावायितकातिः दोषाकरः किकस्यां विभति ना स्य

अयं तद्धीचनश्रीदितिमापगत्रानि अस्मानि हिप निर्माति स्पन्तयः ॥ अस्याः कृतिया मुख्यमानि

सान्वयसं० टी० भाषाडीकासहित । (१८१) वाधिता निर्जिता कांतिः यस्य तथाभ्रतः दोपाकरः चंद्रः किकरतां दासनां विभातिं यदि एव नोचेन तदा अयं दीप करः तृष्टोचनश्रीहृतिसापराधानि तस्याः लोचनयोः श्रीः श्रीमा तस्याः हृतिः हरणं तया सापराधानि अपरा धसिहतानि अञ्जानि कमळानि कथं क्षिणीति पीड-यतीत्यर्थः-"युक्तं चेतत् दासेन प्रभोः शत्रूणां पीडः न्म्" अत्र प्रत्यक्षे अञ्जपीडनरूपचिह्नात् तद्व दोपाकरस्य किंकरस्यं वर्तमानतया अनुमाना-अर्थ-हे सति इंददिशा (वर्ष) में ज्योंही भेत मकाश मानूम न लगा त्याही मैंन नाना कि सल ग्रहमा उदय होगा विस्ट्रि चंद्रमासे पीडित होती हैं इससे राट विशेषण दियाहै और े पूर्वदिशाभे मन्यत प्रकाश दर्शन रूप चिह्नस आगामी चंडी-प्रतान होनेसे भिरुष अनुमानालंकार हुश ॥ १४० ॥ र्घेदरीक सुरक्ती शीमासंहारा हुवा दोवाकर (चंदमा) शरका होगपाह पर्याकि जो एसा नहीं है ती इसके नवीकी काति के अपराधी कमलाका यह क्यां पाडा दतदि (क्यांकि का कामह कि मालिकके पेरोको हैसे देव) यहाँ मयसमें की पीड़ा देना चिह्नसे वर्तमानमें ही चंदमाना दासन नेसे वर्तमान अनुमानालंकार हुवा ॥ १४१ ॥ पा) दोहा-स्पाति रूपता लिगको, कर मन्पस जुजान । प अनुमेयका, तादि कहत अनुमान ॥ १॥ (उदाहरण) न छवि होगयी, चोद बाजुरी दासानहि तो स्पर कवि , क्यों नहिं करत हुसास ॥ २ ॥

(१८२) याग्भटालंकार-परि० ४.

परिसंख्या ।

यत्र साधारणं किंचिदेकत्र प्रतिपाद्यते ॥ अन्यत्र तन्निहत्त्ये सा परिसंख्योच्यते दुधैः॥ १४२ ॥

टीका-यत्र किंचित् साधारणम् "अन्यत्र तित्रः रंथ" एकत्र प्रतिपाद्यते सा धुधैः परिसंख्या उच्यते इत्यन्वयः ॥ यत्र कान्ये (कत्रित्वे) किंचित्साधाः

रणं वस्तु अन्यत्र निवृत्त्यर्थम् एकत्र प्रतिपाद्यते यद्ग-हतु एकत्र एकस्मिन् स्थाने भवति अन्यत्र तित्रिष्टत्तिः भवति सा परिसंख्या इत्यर्थः ॥ १४२ ॥ अर्थ-जद्दा कोई साधारण कृतु एक वृत्तद्व वितृपद्ग कीं।

अर्थ-जहाँ कोई साधारण यन्तु एक जगह मतिपादन कर्रा गादे तथा और जहनसे उसकी निश्चति हो सो पंडित छोग उस गिरसंच्या अलंकार कहते हैं ॥ दूधरे ॥

त्सिन्या बढ़कार कहत है ॥ १४२ ॥ यत्र वायुः परं चौरः पौरसौरभसंपदाम् ॥ - युवानस्तत्र - राजंत एकनिक्षिप्तभी-तयः ॥ १४३ ॥ - टीका-यत्र यायः पौरसीरभसंपदी परं चीरः तत्र

वानः एकनिशिनभीतयः राजेन इत्यन्वयः ॥ यत्र हिम्मनगर पीरसीरभसेपदां पीगणां नामादानां सीरः ह्य मीर्गाप्यस्य या संपन् संपत्तिः तासां पीरः परं ह्येत्र नान्यभार इत्यर्थः तत्र पूरे युवानः तरुणाः एकनिक्षिप्तभौतयः एके धर्मे निक्षिप्ता निहिता भीतिः पैः तपाभूताः युवानः राजेते धर्मस्येव भयं नान्यस्ये-त्यर्थः अत्र चोर्यस्य सर्वेभ्यो निवृत्ति कृत्वा वायो प्रतिपादनत्वात् परिसंख्यालंकारः॥ १८३ ॥

त्यभः अत्र चियस्य स्वभ्या निवृत्ति कृत्वा वाया प्रतिपादनत्वात् परिसंख्याळंकारः ॥ १९२ ॥ अपं-जदा (निसनगरमं) मदला स्थानीश सर्गाध रूप संगिता आर्थ जा प्रदेश हैं। और गाँई अन्य चीर नहीं। यहाँ स्वत्य एक पर्माही हत्ते हुए रहतेंहें सिवाय धर्मने और वहाँ के स्वत्य एक पर्माही हत्ते हुए रहतेंहें सिवाय धर्मने और वहाँ के स्वत्य पर्मा किसाना व्यापादिस करने पाइने मनुष्यादिस करने पाइने मनिवादन करने स्वापादिस नियतं करके एक धर्ममें मनिवादन करने परिसंख्या अलंकार हुया ॥ १४१ ॥

(भाषा) दौदा-नाँ साधारण प्रथम अरु, अन्य निष्वचिद्व हाँप । एक जगह वर्णनविषे, परिसंस्या कहें सोव ॥ १ ॥ (डदाहरण-नैसे) जहां एक पायू भुयन, सीरभ संपति बीर। मनुनन को इक धर्म विन, तही नहीं भय और ॥ २ ॥

मभोनर वथा संकर।

प्रश्ने यथोत्तरं व्यक्तं गृढं वाप्यथवोभ-यम् ॥ प्रश्नोत्तरं तथोक्तानां संसर्गं संकर्र विदुः ॥ १४४ ॥

र्टीका-पत्र प्रश्ने व्यक्तं गृहम् अथवा उभयम् उत्तरं (तत्) प्रश्नोत्तरम् तथा उक्तानां संसर्ग संकरं विद्वः इत्यन्वयः॥ व्यक्तं प्रकटरूपेण गृहम् अपनव्हरूपेण-त्यर्थः। अथवा उभयं व्यक्ताव्यक्तम् उत्तरं भवति तत् (१८४) वाग्भटालंकार-परि०४.

प्रश्लोत्तरं नामकमलंकारः तथा च उक्तानां कथितानां संसर्गे संमेलनं तत् संकरं तदास्यम् अलंकारं विद्वः युपा इति शेषः ॥ १८२ ॥

अर्थ-नद्दां महनका मध्य रूपसे या गृष्ट (ग्रुतरीतिसे) अपना दोनों मकारसे उत्तर दिया जाये तो उसे महनातर नामक अलगर पहतेई तथा जहां फेहे हुए अलकारोका संसर्ग अर्थात् संमेटन होताई तो उसे संकर अलकार कहतेई ॥ १४४ ॥

> व्यक्त प्रश्लोक्तरेशहरण । स्मित्रपारसंसारसागरे सज्जत

अस्मिन्नपारसंसारसागरे मज्जतां स-ताम् ॥ किं समालंबनं साधो रागद्देपपरि क्षयः ॥ १४५ ॥

टीका-हे साथो । अस्मिन् अपारसंसारसागरे म-जतां सतां समार्छवनं किम् (इति प्रश्ने) रागद्रेपपरि-

स्रयः (इत्युत्तरम्) इत्यन्त्रयः ॥ अपारसंसारसागरे पाररिइतसंसारसमुद्रे मन्त्रतां निपततां सतां साधूनां समालंत्रनम् आश्रयः किम् रागस्य प्रीतेः द्रेपस्य वैरस्य च परिसयः अत्र व्यक्तम् उत्तरम् अतः प्रश्लोत्तराः

अर्थ-हे साधो इस अपार संसार समुद्रमें पडते हुए सजनें। को समाळंचन (आश्रय) क्या है यह मुझ्न हुवा इसका राग

लंकारः ॥ ३४५ ॥

देपका परित्याम करना ही आश्रय मात्र है यह मध्य रूप टत्तर हुपा इससे व्यक्त प्रकृतिक अर्छकार हुवा ॥ १४५ ॥

सान्वयसं ॰ टी॰ भाषाटीकासहित । ि(१८५)

गूढ पश्चीचरोदाहरण । क वसंति श्रियो नित्यं भभत

क वसंति श्रियो नित्यं मूम्रतां वद की-विद्र ॥ असावतिशयः कोपि यदुक्तमपि नो ह्यते ॥ १४६ ॥ किमेभं स्त्राच्यमाख्याति पक्षिणं कः कुतो यशः ॥ गरुडः कोदृशो नित्यं दानवारिविराजितः ॥ १४७॥

टीका-हे कोविद वद भूभृतां श्रियः नित्यं क वसंति (इति पश्चे) असी इत्युत्तरं यत उक्तम् अपि न उत्ते स कोपि अतिशयः इत्यन्वयः ॥ भूभृतो नृपाणो श्रियः लक्ष्म्यः नित्यं क ग्रुव वसंति निवासं कुवैति इति प्रश्ने असी कृपाणे इत्युत्तरं गृहम् । तथा यत् उक्तम् अपि कथितम् अपि न उहाते न ज्ञायते स कश्चित् आशयः अतिशयः अतिशयगृहः इत्यर्थः। असिः खङ्गः (इति श॰ स्तो॰)॥१८६॥ ऐभं कि स्राप्यम् आख्याति "दानवारि" कः पक्षिणं (आख्याति) "विः" यशः कृतः "आजितः" नित्यं गरुडः कीदृशः "दानवारि-विराजितः" इत्यन्वयः॥ ऐभं कि श्राप्यम् आख्यातीति प्रश्ने "दानवारि" इत्युत्तरं इभः इस्ती तत्संबंधि ऐभं कि प्रशंसनीयम् अस्योत्तरं "दानवारि मदजलम्" कः शन्दः पश्चिणम् आख्याति अस्योत्तरं "विः" विशन्दः

(१८६) वाग्भडालंकार-परि० ४.

पक्षिणमाख्यातीत्यत्तरम्, यशः कृतः अस्योत्तरम् आ-जितः संग्रामात् यशः संग्रामात् भवतीत्यत्तरम्, गरुडः कीदृशः अस्योत्तरं "दानवारिविराजितः" दानवानाम् असुराणाम् आरेः शञ्चः विष्णुः तेन विराजितः शो-भितः अत्र ब्यक्ताब्यक्तं प्रश्नोत्तरम् एपा प्रश्नोतरी

अंतलांपिकापि कथ्यते ॥ १८७ ॥ अर्थ-हे पंडित बतावी राजांकी छल्मी नित्य कहा वसति हैं इस प्रश्नका गृढ उत्तर "असी" अर्थात् "सङ्क" में यही है और जहां वह कहमी दिया जाय और समझमें नहीं आये वह अति शय गृह होता है असी का अर्थ सङ्गमें यह अतिशय गृह है क्योंकि मधटमें कह देनेपर भी समझमें मायः नहीं आता है इसीसे अतिगृह प्रकृतिचरालंकार हुवा ॥ १४६ ॥ हार्याके क्या मशंसनीय कहाता है इस मश्नका उत्तर हुवा "दानपारि" अर्थात् मदका जल प्रशंसनीय होता है और कीन शब्द पर्शाको बताता है अर्थात कीन शब्द पक्षी वाचक है इसका उत्तर हुवा "विः" अथात वि शब्द पशी याचक है और यश काहसे होता है इसका उत्तर हुया "आनित" अर्थात् सेना संग्रामसे और नित्यगहड कैसा रहता है इस मश्नका उत्तर हुवा समस्त पदसे "दानवारि-विराजितः" अयाव दानवांका आर विष्णु जिस करके विराजित शोभित यहां व्यक्त और गृह दोनों भांतक महनोत्तर हैं और इसे अंतर्लापिका भी कहते हैं ॥ १४०॥ (भाषा) दोहा-मश्नोत्तर जह मश्नका, उत्तर गृढ अगृत ।

(भाषा) दोहा-मरनोतर जहुँ मरनका, उत्तर गुढ अगृड । नाम फर्चो जतिगृडको, समझै तद्पि न मृड ॥ १ ॥ (उदाहरण) अगृड (मपट) प्रश्नोतर-कौन सुसी संतोष

युत, फीन दुखी बहु बाम । मित्र कीन मीडे बचन, अभय कीन हरिधाम ॥ २ ॥ (गृड भरनोत्तर) रतिसु नयोडा का कहे, कंड काह शिव छ्या श्वास कास को का हुरे, ''नागर'' उत्तर देव ॥ ३ ॥ यह दोडा अंतर छापिका भी है ॥

संकर ।

वंभंड सुत्ति संपुड सुक्तिअ मणिणो पहा समूह् व्व ॥सिरिवाहडति त्तणतो आसि बंहो तस्स सोमस्स ॥ १४८॥

टीका-(अस्य संस्कृतम्) "ब्रह्माण्डक्कार्तिसंपुट मीतिकमणेः प्रभासमृह इव श्रीवाग्भट इति तनय आ-मीत् बुथस्तस्य सोमस्य " ब्रह्मांडशुक्तिसंपुटमीकि-कमणेः सोमस्य तस्य प्रभासमूह इव श्रीवाग्भटः वुषः तनयः आसीत् इत्यन्त्रयः ॥ त्रह्मांडम् एव शुक्तिसंपुटं मुक्ताशुक्तेः संपुटम्। इत्यर्थः। तस्य मीक्तिकमणिः मुक्ता-रत्नं तथाभूतस्य सोमस्य चंद्रगुप्तस्येत्यर्थः प्रभासमूह इन कांतिपुंज इन श्रीनाग्भटः बुधः निद्वान् तनयः पुत्रः आसीत् अत्र बुधः पंडितः चंद्रपुत्री महन्य बोध्यः सी-मात् बुधस्य जन्म योग्यमेव ब्रह्मांडं शुक्तिसंयुटमी-क्तिकमणेरिति रूपकं प्रभासमूह इवेत्युत्प्रेक्षा बुधः वि-द्वान् चंद्रपुत्रो महश्रेति छेपः श्रीवारभट आसीदिति जाति इति चतुर्णा अलंकाराणां संभोगात संकरा-लंकारः ॥ १८८ ॥

अथ-नहाडि रूप मोतिया सींपका संपुट उससे पैदा हुए मीकिक मणि एसं सोम अर्थात सोमदेव निनके कांति गुंनके
समान श्रीवाग्मट नामक बुध उत्पन्न होते अये श्रीवाग्मटाचार्यके
पिताका नाम सोम अर्थात सोमदेव या उनके बुध रूप पंडित
या बुध ग्रह रूप श्रीवाग्मट उत्पन्न हुए सोमके बुधको उत्पन्न
होना योग्यही है यह श्रेष अर्छकार है और ग्रहांड रूप सींपीके
सुकामणि यह रूपकहे और प्रभा समूह इव यह उत्पेसाहि भी
पामस्का पणन यह जातिह इस मकार चार अर्हकारोंका एकम
संयोग होनेसे संकर अर्छकार हुवा इसी प्रकार और जगह भी
जहां दो तीन या अधिक किसी भी अर्छकारोंका संयोग हो तो
हसे उन्हींके संयोगसे संकर अर्डकार समझना चाहिये॥ १४८॥

त उन्हाक संयोगस सकर अलकार समझना चाह्य ॥ रहणा (भाषा) दोहा-अलंकारजहँकइ मिलें, संकर नाम जु होप।

ताप हरन की कमलसे, हारेपद अपर न कीय ॥ २ ॥

अचमत्कारिता वा स्यादुक्तांतभीव एव वा ॥ अलंकियाणामन्यासामनिवंध-निवंधनम् ॥ १४९ ॥

टीका—अन्यासाम् अलंकियाणाम् अनिवंधनिवं धनम् अचमत्कारिता वा स्यात् वा उक्तांतभावः एव इत्यन्वयः ॥ अन्यासाम् असंगतिष्रदृषेणादीनाम् अलंकियाणाम् अनिवंधनिवंधनम् अकथनस्य का-रणं वा अचमत्कारिता चमत्कारराद्दित्यं स्यात् अथवा उक्तांतभावः उक्तेषु अंतभावः स्यादित्ययः । चमत्का-रिता एव अलंकारस्य प्रस्यतेन इतुरितिभावः (निवंधनं कारणमिति शब्दस्तोम०) ॥ १४९ ॥

(149)

अप्-ओर जो अस्ताति महर्षणादिक अलंकारांचे नहीं पर्णत करमेका पारण है सो या तो विशेषकर चमकारका न होना है या जो पढ़ी पर्णत करे गये हैं उन्होंने किया कहे हुयेंका अंत-भाष हो सका है और सासकर चमकारही अलंकारका मुख्य हुन है। और काब्द अथवा अपेक चमराराके सभावसे अलं पराहित असेक्य भेद हो सके हैं)॥ १४८॥

अथ रीतिवर्णन ।

रीविद्वारमाह् ।

हिनिपदा पांचाकी लाटीया पंच सप्त वा यावत् ॥ शब्दाः समासवंतो भवति यथा संक्ति गौडीया ॥ १५० ॥

टीका-द्वितिषदाः पांचाली (यत्र) पंच सत वा शन्दाः यावत् समासवंतः (सा) लाटीया (यत्र) यथाशिक्त (शन्दाः समासवंतः) सा गीडीया भवति इत्यन्वयः ॥ पदानां संघटनाविशेषः रीतिः यत्र द्वि-विपदानि समासवंति सा पांचाली रीतिः यत्र पंच सत्त या शन्दाः समासवंतः सा लाटीया रीतिः यत्र च यथा शिक्त शन्दाः समासवंतः स्युः सा गीडीया रीतिः इत्यपंः ॥ देशभेदेन रीतिभेदा वहवः संति तथा चौक्तं (प्रथमपदा वत्सोमी विपदसमा च मागधी भवति । उभयोरिष वेदभी हार्डुसुंदुभीषणं कुरुते) अन्यय (लाटी हास्यरसे प्रयोगनिषुणे रीतिः प्रवंधे कृता पांचाली करूणा भयानकरसेशांति रसे मागर्था॥ गांडी बीररसे च रोद्रजरसे बच्छोमदेशोद्रवा बीभत्साहुतयो विंदर्भविषया शृंगारसृते रसे) इति (छोकोयं प्रक्षिती दृश्यते) बहुपु रीतिभेदेष्विष सुस्यत्वेन द्वे एव रीती गोडीया बेदर्भी चेति ॥ १५०॥

अर्थ-जहां दो तीन पद समस्त हां वह पांचाला रीति हैं और जहां पाँच सात तक शब्द समस्त हां वह लाटीया शिति होतों है और जिसमें यथाशक्ति चड़त शब्द समासवांल हां उसे गीडीया रीति कहते हैं पदांकी संघटनाषिशयका नाम रीति होता है सो रीति देशोंक भेदस अमेर्न्ह जैसे मागधी लाटी पांचाली गोडी घेदमां आदि परंच ग्रस्थतासे यहां दों हा रीतिया लिलते हैं एक गीडी इसरी घेदमां (मागधी आदिक लक्षण और उदहरण और प्रथाति देशें (यह श्लोक भी क्षेत्रक मालूम होताहें)।। १५०।।

हे एव रीती गौडीया वैदर्भी चेति सां तरे॥ एका भ्रयः समासा स्यादसमस्त पदा परा॥ १५१॥

टीका-गौडीया बैदभी च इति सांतरे द्वे एव रीती एका भुयः समासा स्यात् अपरा असमस्तपदा इत्य-न्वयः॥एका गौडीया भृयः समासा समासबहुला स्यात् अपरा बैदभी च असमस्तपदा समस्तपदवर्जिता इत्ययैः साहित्यदर्पणे तु रीतिश्चतुर्घा शोक्ता यथा (पद संब- टना रितिरंगसंख्याविशेषवत् । उपकर्षा रसादीनां सा पुनः स्याचतुर्विधा ॥ वेदभीं वाथ गीडी च पांचां-ली लाटिका तथा । माधुर्य्यंवर्धज्ञकेवेंगें रचना लिलात्मिका ॥ अञ्चतिरत्पचृत्तिवां वेदभीं रीतिरि-प्यते । ओजमुकाशकेवेंगेंविध आडंवरः पुनः ॥ समा-सबहुला गीडी वर्णेः शेषेः पुनद्वयोः । समस्तपंचप-पदी वंधः पांचालिका मता॥लाटी तु रीतिर्वेदभीं पांचा-स्यारंतरा स्थिता ।) इति ॥ १५,५ ॥

अर्थ-जरर लिस आये हैं कि यहां मुख्यता करके दो सीतिहां लिसते हैं एक मीड़ी इसरी धेदओं हमेंसे एक अर्थात्मीडा बड़े समासांतपदांपाली होती है और मिसमें बिना समासके पदहों इस पेदर्भी कहते हैं साहित्यद्रंपमें V गितियां लिसी हैं चेदभी, मीडी, भीचाली, और लाड़ी यहांपर येदभी और मीडी दोहीके उदाहरण लिसे हैं। 1 १४१ ॥

गौडीका उदाहरण ।

दर्पोत्पाटिततुंगपर्वतशतग्रावप्रपाताहित कूराकंददतुञ्छकञ्छपकुलकंकारघोरी-कृतः ॥ विश्वं वर्वरवध्यमानपयसः सिप्रा-पगायाः स्फुरज्ञाकामत्ययमकमेण वहु-लः कञ्जोलकोलाहलः ॥ १५२ ॥

टीका-वर्वस्वध्यमानपयसः सिप्रापगायाः अर्थ वहुलः कञ्चोलकोलाहुलः अक्रमेण स्फुरन निश्रा आकामाति (कीहशः कञ्चोलकोलाहलः) दपीत्पारिः ततुंगपर्वतशतयात्रप्रपाताहतिकूराकंददतुन्छकन्छप्रुः लकेंकारघोरीकृतः इत्यन्वयः ॥ वर्वरो नाम राक्ष अथवा वर्षरदेशाधिपः तेन वध्यमानं पयः यस्याः तथाभूतायाः सिप्रापगायाः सिप्रानद्याः बहुलः प्रभूतः अयं कह्योलकोलाहलः तरंगाणां कलकलशन्दः अक मेण स्फुरन सन कमें निहाय प्रसरन सन् निश्वं संसी रम् आकामति आक्रमणं करोतीत्यर्थः।स कीदृशः।र्भेण उत्पादिताः तुंगाः उन्नता ये पर्वताः तेषां शतस्य ग्रा^{वाणः} पापाणाः तेषां प्रपातेन या आहतिः आघातः तथा ऋरम् उत्कटं यथा तथा आकंदंतः चीत्कारं कुर्वतो ये अवुः च्छाः महांतः कच्छपाः तेषां कलस्य समृहस्य श्री कोरण शब्दविशेषेण घोरीकृतः रौद्रीकृतः इत्यर्थः अन समासवाहल्यात गोडीसीतिः॥ १५२॥ अर्थ-वर्वर राक्षस या वर्वरदेशाधिपतिने जप सिमा नदीकी जल बंध फरदिया (रोकदिया) समुदर्मे न जाने दिया (तव) उसके चडावसे यह तरंगोंका कोलाहल (शन्द) कमरहित ्रेहापर आक्रमण फरने छगा (कैहा तरंगाका कांडा-कि दर्प (वेग या चडाव) से उगाडे हे कैंगे कैंगे हैं)मी किसने जिससे पडने गाले बढ़े यह पावागीरे पहार है राम्हादित हुए चालार करते हुए जो पहुत मंडे

सान्वपसं॰ टी॰ भाषाडीकासहित ।

(154)

अथ पंचमपरिच्छेदः।

साधुपाकेप्यनास्वाद्यं भोज्यं निर्लवणं

यथा । तथेव नीरसं काञ्यमिति व्रूमो

रसानिह ॥ १ ॥ टीका-यथा साधुपाके अपि निर्लवणं भोज्यम अनास्यायं तथा एव नीरसं कान्यम्, इति इद्व रसान

अनास्वाद्य तथा एव नारस कान्यम्, हात इह रसान् बूमः हत्यन्वयः ॥ साधुपाके सुष्टुपाके नीग्सं रसवः जितम् ॥ १ ॥

अपं-नेते अच्छे पके हुव भी बिना छवर्णके भीतन मुख्याद नहीं छनते उसी अकार रस वर्गित काच्यभी हदय प्रिय नहीं होते हैं इसी कारणमें अब हम रसोंबा वर्णन करते हैं ॥ १ ॥ विभाविरत्तभाविश्र सास्विकेट्यीभिचारि-

विमावरत्तमावश्च सात्त्वकृत्याभचारि-भिः । आरोप्यमाण उत्कर्प स्थायी भा-वः स्मृतो रसः ॥ २ ॥

टीका-विभावः सारिवंकः व्यभिचारिभिः अनुभा विश्व वत्कर्षम् आरोप्यमाणः स्थायी भावः रसः स्पृतः इत्यन्वयः ॥ विशेषेण भावयंति चरपादयंति रसम् इति विभावाः स्वीवसैतादयः विभावो रसकारणः

हात विभावाः स्नावसतादयः विभावा संस्कारणः हत्यर्थः ॥ अनुभूषते लक्ष्यते रसः युः हति अनुभावा नोहादयः रसोत्यत्ती सत्या ये भावा दिनेश मधुप कैरविणी और कराम इन पर्दोंक क्षेत्रसे हैं। अर्थ हो जाते हैं यहां समासांत पद प्रायः न होनेसे ैं, रीति है ॥ १५३ ॥

अलंकारको भांत हिंदी भाषाम रातियांका वर्णन क्रिक्सार नहीं होष्ट्रिक इसल्यि देखाँ मितायांका वर्णन नहीं क्रियां के येनातिचमत्करोति प्रायः कवित्वं क्रितिनां मनस्सु । अलंकियातेन स् एव तस्मिन्नभ्यहातां प्राज्ञ दिशान

येव ॥ १५४ ॥
टीका-हे प्राज्ञ कवित्वं प्रायः येन अर्थेन कृतिन्
मनस्तु अतिचमत्करोति तस्मिन् स एव (अर्थः)
अलंकियात्वेन अनया एव दिशा अभ्युद्धताम् इत्यः
न्वयः ॥ कवित्वं कात्र्यं कृतिनां पंडितानां मनस्तु
अतिचमत्करोति अतिचमत्कारं कृतीति तस्मिन

कितने स एव अर्थः अलंकियात्वेन अलंकारतेन अनया एव दिशा अनया ६व मदुक्तया संकलनया अभ्यूद्यताम् विचार्यताम् (माज्ञ इत्यत्र दत्त इति वा

केपुचित् पुस्तकेपु पाठांतरम् ॥ १५२ ॥ वर्ध-दे मात्र कविन् (कान्य) मायः निसः अपसे पहितांके मनमें अन्यन चमन्द्रांग मानुम हा उम कविन्यंग पहा अर्थ अर्थः कारता करके इस मेरी वर्णन करी हुई संकलना (गीत) सेही विचार छता चाहिय ॥ १५४ ॥

इति बामग्रावेशीर चतुर्यगीरध्येदा ।

अथ पंचमपरिच्छेदः।

साधुपाकेप्यनास्वाद्यं भोज्यं निर्छवणं यथा । तथेव नीरसं काव्यमिति ब्रूमो रसानिह् ॥ १ ॥

टीका—यथा साधुपाके अपि निर्छवणं भोज्यम् अनास्वाद्यं तथा एव नीरसं काज्यम्, इति इह रसान् द्रुमः इत्यन्वयः ॥ साधुपाके सुपुपाके नीरसं रसव-जितम् ॥ १ ॥

अर्थ-जैसे अच्छे पके हुए भी दिना छवणके भोनन सुस्वाद मही छगते दसी मकार रस पर्गित कान्पभी इदग मिय नहीं होते हैं इसी कारणसे अब इम रसींका वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

विमाविरत्नुमाविश्च सात्त्विकैर्व्यमिचारि-भिः । आरोप्यमाण उत्कर्ष स्थायी भा-वः स्मृतो रसः ॥ २ ॥

टीका-विभाविः सार्त्विकः ध्यभिचारिभिः अनुभाविश्व उत्कर्षम् आरोप्यमाणः स्थायी भावः रसः स्वतः इत्यन्वयः ॥ विशेषण भावयंति उत्पाद्यंति रसम् इति विभावाः स्रोवसंतादयः विभावो रसकारणम् इत्यर्थः ॥ अनुभ्रयते लक्ष्यते रसः यैः इति अनुभावाः कंपभस्वेदभ्रलापभोहादयः रसोरपत्ती सत्यां ये भावाः

(१९६) परिभदालंकार-परि० ५.

जायते ते अनुभावा ज्ञातच्या इति रजस्तमो अस्पृष्टमनोवृत्तिविशेषः सत्त्वं तत्सं पृतः 🚉 🚉 📶

सारिवकाः उक्तं च साहित्यदर्पणे "रजस्तमी गा स्पृष्टं मनः सत्त्वमिहोच्यते ।विकाराः सत्त्वसंभृताः सा त्त्विकाः परिकीर्तिताः॥स्तंभःस्वेदोथ रोमांचः स्वरभंगो

ऽथ वेपथुः। वेवर्ण्यमश्चप्रलय इत्यष्टी सान्त्विकाः स्मृताः॥ सत्त्वमात्रोद्रवत्वात्ते भिन्ना अप्यनुभावतः"।इति सत्त मात्रोद्भवात् केवलसत्त्वोद्भवाते अनुभावतः भिन्नाः

गोवलीवईन्यायेन यथा गामानयेत्यके वलीवईस्य च गोत्वात्तदानयने निप्यन्नेऽपि वलीवर्दमहणं तथा अर् भावरूपत्वेऽपि सात्त्विकानां विशेषग्रहणमिति भावः

"व्यभिचारिणो यथा" दर्पणे-विशेषादाभिमुख्येन चरंतो व्यभिचारिणः । स्थायिन्युन्ममनिर्ममास्य-र्सिशच तद्रिदाः॥स्थायिनि रत्यादी उन्मग्नाः कदाचित

श्यमोहौ विवोधः स्वप्रापस्मारगर्वामरणमलसतामर्प-निद्रावहित्थाः॥ औत्सुक्योन्मादशंकारुष्टतिमतिसहिता

उद्रिक्ता निर्ममाः कदाचित तिरोहिताः ये धर्माः ते व्यामचारिणः (" निर्वेदानेगदैन्यश्रममदज्ञडता औ

न्याधिसत्रासळ**नाः इर्पाम्**याविपादाः सधृतिचप[.] लताग्लानिर्चितावितर्काः॥ " इति) स्थायीभावः दर्पणे-अविरुद्धा विरुद्धा वा यं तिरोधातुमक्षमाः। आ-

स्वादांकुरकंदोसी भावःस्थायीति संमतः॥ तस्य भेदाः क्रमेण यथा । रतिहांसश्च शोकश्च कोषोत्साही भयं तथा । ज्रुपुत्सा विस्मयश्चेत्थमणी प्रोक्ताः शमोपि च ॥ यथा । श्रृंगारस्य रतिः हास्यस्य हासः करुणायाः शोकः राद्रस्य क्षोधः वीरस्य उत्साहः भयानकस्य भयं वीभत्सस्य ज्रुपुष्सा अङ्गुतस्य विस्मयः शांतस्य शमः स्थायी भाव हति ॥ २ ॥

अर्थ-विभाव अर्थात रसके उत्पत्तिके कारण नैसे शंगार रस-के कारण स्त्री वसंत चंद्रिकादिकहैं और सास्विक और व्यक्ति चारी अनुभाष अर्थात् जिनसे रसका मभाव मतीत होवे जैसे कर, प्रश्येद, प्रहाप, मोह आदिइनमेंस रजीगुण और तमी गुण से पूपक जो मनकी वृत्ति विशेष होती है उन्हें सास्विक अनुभाव कहते हैं देखी साहित्यदर्ण यथा। स्तंभ, स्पेद, शेमांच, स्वरभंग, कंप वर्ण विपरीतहोना अञ्चपात और मलय (सपहांमाना तम्मय होजाना) इस मकार ये आठ साध्यिक अनुभाव बहलातेंद्र पद्यपि ये सास्त्रिक अनुभाव हीई तीभी सन्य मात्रस उत्पन्न होनेसे इन में कुछ भिवता मानतेंहें और व्यभिचारी उन्हें क्हतेहें जो स्था-पी रसोंके पैसे अनुभाषहीं जी कभी उत्पन्नहों कभी मवलहीं और शांत हो गाप जीते निर्वद, आयेग, दैन्य, अम, मद, जहता, टप्रता, मोह,पिवीध,स्यम, अपस्मार, गर्थ, मृत्यु, आलम्य, अमर्थ, निदा, अवहित्या, श्रीत्युक्य, उन्माद, शंका, श्मृति, मति, व्यपि, श्राम, और समा,हर्ष,असुपा, विषाद,पृति,धपसता,ग्रानि चिता और तर्क प ११ व्यभिचारि साहित्यदर्गणमें लिय हैं (इनमेंसे मरण की जगह कोई अमरण अर्थाव सुकड़ों ऐसा मानते हैं) और

(१९८)

साहित्यदर्पणमें स्वापी भावके विषयमें यह खिसा है कि और रुद्ध या विरुद्ध निसको छिपा नसके वह उस रसका स्थापीभाव होता है माने आस्वादके अंकुरका यह मूछ है जैसे गूंगार रस-का स्थापी भाव रित हास्य रसका हँसपडना करुणाका होकि रीद-का मोप पीरका उत्साह अयीव उमंग भयानकका भय (इर-जाना) वीभत्सका जुखुषा अहुतका विरुमय और शांतरसका हाम स्थापी भाव होताहै ॥ २ ॥

रांगारवीरकरुणाहास्याङ्कतभयानकाः ॥ रोद्रवीभत्सशांताश्च नवेते कथिता बुधः ॥ ३ ॥

टीका-शृंगारादयः एते नव (रसाः) बुधेः कः थिताः (यथा) शृंगारवीरकरुणाहास्याद्धतभयानकाः च रोद्रवीभत्सशांताः इत्यन्वयः॥अत्र प्रथमं शृंगारत्य सर्वेभाणिनामतीव मनोज्ञत्वात चपादानं शांतस्य सर्वेभाणिनामतीव मनोज्ञत्वात चपादानं शांतस्य सर्वेभाणिनामतीव मनोज्ञत्वात चपादानं शांतस्य सर्वेभामतसात्त्वात् अते सष्ठुपादानम् एभ्योतिरिक्तःदशम् रसो वात्सस्यमामापि चास्ति मत्यक्षचमत्कारित्वात् उक्तं च साहित्यदर्पणे-वत्सळ्य रस इति तेन स दशमो रसः "स्फुटं चमत्कारितया वत्सळं च रसं विद्वः।स्थापी वत्सळता स्नेहः पुजाचाळ्यनं मतम्॥उद्दीपनानि तग्नेष्टा विद्याशीपाद्यस्य । आळिंगनांगसंस्यशीश्वरस्वंवनमातिताः॥ संचारिणाइतिकानंववाष्या अनुमावाः प्रकीतिताः॥ संचारिणाइतिकानंवर्यः इति ।। ३॥"

अपं-मे शंगार आदिक रस ९ हैं १ शृंगार, रे-बीर, १करण, ४ हारप, ५अट्स, ६ भयानक, ७ रॉद, ८ विभन्स, ५शांत इनके मिषाप दश्वाँ रस वानस्तर भी मानतें वृं व्यंतिक उसकामन्यस पमकार है साहिम्परंणमें ठिसाहें कि रक्ट पमकार हिंगेस रसवां मनते हैं है (जो माणी मानमें अनुभाव उत्तर करतांत) शुनादिक आहे- बन विभाव है और पुनादिकों सेशा विद्या सीर्य आदिक उदी- एन हैं और उनका आंख्यन अंगस्वतं (व्यारकरना) शिरद्र- मना मेमसे देखना शोषांच होजाना आनंद और मेमाप्रपाता-दिक उसके अनुभाव हैं और अनिष्ठशंका हवं गर्वादिक सेवारी भाव होता होते से सेवारी भाव होता की सेवारी सेवारी सेवारी अति हैं इनसे अवस्य यासस्य स्व द्वावां है यही सवाराणियों का ति जिय होने हे सेवारी स्व स्व रावां है ति सेवारी सेवारी सेवारी अति जिय होने हे सेवारी स्व स्व स्व वावां है वहीं सवाराणियों सेवारी सेवारी

सपका अवसाल रूप होनेसे सपके अंतमें वर्णन किया गया।

(भारा) देश-सापु पके भोजन यया, विन श्रवणादिन स्याद !
सैसे विन रस काप्य सन, ताते कड़ रस बाद !! ? ॥ नन रस हें
शृंगार अरु, चीर जु चरुणा हास ! अहुत अय बीअन्स सुन, रीद श्रोत परकारा !! रे !! दशयो रस वासत्यहर, पुत्रादिक पर मीति, विभाव मरु अनुभावते, हाँ मन्यस मतीति !! रे !!

जायापत्योमियो रत्यां द्वतिः श्टंगार उ-च्यते ॥ संयोगो विप्रलंमश्चेत्येप तु हि-विषो मतः ॥ ४ ॥ तो तयोर्मवतो वाच्यो वुषेर्युक्तवियुक्तयोः ॥ प्रच्छन्नश्च प्रकाशश्च पुनरेप हिंधा मतः ॥ ५ ॥ (२००) वाग्भटार्खकार-परि०५.

टीका-अस्यान्वयस्त सरलः जायापत्योः स्त्रीपुरु-पयोः मिथः अन्योन्यं मिलित्वा च रत्यां सुरते वृत्तिः स एव शृंगाररसः रुच्यते स एप त शृंगारः द्विविधः मतः संयोगः विप्रलंभश्च संयोगः संयुज्येते ह्वीपुरुपी यत्र इति संयोगः विप्रलंभ्येते वंच्येते केनवित कार-णेन संभोगात यत्र स विप्रलंभः॥ २ ॥ ती (संयोगः विप्रलंभी) तयोः (जायापत्योः) यक्तवियुक्तयोः वाच्यी भवतः च पुनः एप प्रच्छत्रः च प्रकाशः पुर्वः द्रिपा मतः (इत्यन्वयः) ॥ युक्तयोः मिल्टितयोः तयोः संयोगः संभोगः वियुक्तयोः विरहितयोः पृथक् भूतयोः तयोः विप्रलंभः इत्यर्थः प्रनश्च स द्विविधः प्रच्छन्नः गुनकृषेण वर्तते प्रकाशः प्रकटतया वर्तते इत्यर्थः अस्य र्शुगारसम्य श्यामवर्णः विष्णुदेवता तथाचीकं साहिः स्पर्वणे (शृंगं हि मन्मर्थाहेदस्तदागमनहेतुकः। उत्तमन्कृतिप्रायां रसः शृंगार उच्यते ॥ १ ॥ परोटां वर्त्रविन्यात्र वेश्यां चाननुरागिणीम् ॥ आल्डंयनं गाः यिकाः स्यदंशिणाद्याश्च नायकाः ॥ २ ॥ मंडचंदनः रोहरंबहताचरीपनं मनम् ॥ अविशेषकटाशाहिरमभागः षदीर्नितः ॥ ३ ॥ स्यकीमध्यरणाळम्यतुषुप्पारयः निचारियः॥ स्वायी भाषी स्तिः श्यामवर्णीयं निष्ठ-देवतः) इति ॥ ५॥

सान्ययंसं० टी० भाषाटीशासहित । (२०१) अर्थ-स्त्री प्रवर्षोकी परस्वर जो रति (रमण) में पति (महत्ति) हो उसे शृंगार रस कहते हैं वह शृंगार रस विदा-नींने र मकारका कहा है (१) संयोग (या संभाग) इसरा विमलंभ (निसमें स्त्रीपुरुषोंक परस्परमें भिलकर रमणादि हो यह संयोग है और जहाँ किसी भी कारणसे उनके संयोगमें सति या विलंब या विरह या वियोग हो उसे विप्रलंभ कहते हैं ॥४॥ षह रस स्त्री पुरुपोंकी संयुक्तिसे संयोग और पियुक्ति वियोगसे विमलंभ कहाता है किर यह भी दी मकारका हीता है एक मञ्जन अर्थात् युन इसरा मगढ साहित्यदर्पणमं विक्तारसे या लिखा है कि शूँग नाम कामदेवके उद्भेदका है और निसमें कामके टाइंगका आयम हो उसे शृंगार कहते हैं परीजा (पर-कीया) और येदया और विना भेमवतीको छोडकर जो रमणी सी है यह इसका आलंबन विभाग है और अनुदूछ दक्षिण आदि उरुप नायक हैं चंद्र चंद्रन धमरादिका झन्द ये बहीपन हैं और भूविसेय कडास आदि मनुभाव हैं और दमता मरण आरूस्य चुयुम्मा इन्हें छोड़कर हाब व्यभिचारी हैं और रितरपायी भाव है पर्ग इसाम है विष्णु इसका देवता है ॥ ५ ॥ (भाषा) दोहा-कांत कामिनी द्वटनकी, इति सरतिम होए। ताहि कर्दे श्रमार रस, भीम वियोग सुदीय ॥ १ ॥ भीम कह संयोगको, विरह वियोग विचार । पुनि मण्डल मकाकते, चार

नायक सक्षण । रुपसोभाग्यसंपन्नः कुलीनः कुरालो युना ॥ अनुद्भतः मृत्रतगीः ख्यातो ने-तात्र सद्धणः ॥ ६ ॥

टीका-अत्र रूपसीभाग्यसंपन्नः कुलीनः कुशलः अनुद्धतः सृतृतगीः सहृणः युवा नेता स्यातः इतः

अञ्चलः सूर्यतमाः सङ्घणः थुवा नताः स्थातः इत्यः न्वयः ॥अञ्चर्युगारे अनुद्धतः आद्यत्परहितः सूर्यणीः सत्यमधुरवादी सङ्खणः श्रेष्टगुणसंपन्नःनेता नायकः॥६॥

अर्थ-पहां श्रृंगार समें रूप सीभाग्य युक्त बुक्षीन यहा और नो टड्त न हो सन्य और मधुर भाषी निसमें समाहि भेष्ठ गुण हो देखा तरूल पुरुष नायक कड़वाता है॥ ६॥

नायकभेदाः।

अयं च विग्रुधेरुक्तोऽनुकूलो दक्षिणः शठः॥धृप्रश्चेति चतुर्यः स्यान्नायकाः स्युः श्चतुर्विधाः ॥ ७ ॥

टीका-अयं च विद्युपेः अनुकूलः दक्षिणः शहः उक्तः च चतुर्थः धृष्टः स्यात् इति नायकाः चतुर्विधाः स्युः इत्यन्ययः ॥ अयं नायकः विद्युपेः सारित्यः एटितैः॥ ७॥

अर्थ-पर नापक साहित्य शास्त्रके झाला पंडितीन चार प्रदा-रका कहा है अनुकृत, दुलिल, शह और भीषा पृष्ट इस सीरी नापके भार केंद्र कहे हैं ॥ ७॥

सान्वयसं ॰ टी॰ भाषादीकासहित । (२०३)

(अनुक्छ और दक्षिणके छ०)

नीलीरागोत्तरक्तः स्यादनन्यरमणीरतः ॥ दक्षिणश्चान्यचित्तोपियः स्यादविकृतः स्त्रि-याम् ॥ ८ ॥

हीका-अनन्यसमणीरतः नीलीरागः अनुरक्तः स्यात् । च प्रदक्षिणः अन्यचित्तः अपि ख्रियाम् अविकृतः स्यात् (इत्यन्वयः) ॥ अनन्यसमणीरतः न अन्यसमणीरतः सर्वथा परांगनापराङ्गुख इत्यथंः नीलीरागः नीलीवत् परिपकः रागः अनुरागः यस्य स स्वांगनायां परिपकानुरागवानित्यथंः दक्षिणस्तु अन्य-चित्तः अपि अन्यवनितायां चित्तं यस्य ॥ तथाधुतोऽपि खियां विकृतः न स्यात् ॥ ८ ॥

अप-नो अन्य सिर्थोमें प्रेम नहीं रससे अपनी स्वकीया ह्यां-हीमें परिपक्ष प्रेम रससे यह अनुरक्त अर्थात अनुकूल नायक कहलाता है। और जो अन्य सिर्योमें बित स्टक्स भी स्त्रोसे विकृत नहीं अर्थात विगाड न करें (सर्वत्र यथा युद्धि प्रेम ष्य-पहार रखते) टसे दक्षिण नायक कहते हैं ॥ ८॥

प्रियं वक्त्यप्रियं तस्याः कुर्वत् योऽविक्टन तः शठः ॥ धृष्टो ज्ञातापराधोऽपि न वि-रुक्ष्योऽवमानितः ॥ ९ ॥ टीका-सः तस्याः अप्रियं कुर्वन् अविकृतः सन् प्रियं विक्तं (स) शरुः ज्ञातापरायः अपि अवमानि तः न विल्रतः (स) घृष्टः इत्यन्वयः ॥ तस्याः कां तायाः अप्रियं कुर्वेन् अपि अविकृतः विकाररितो यथा तथा प्रियं वाक्यं विक्तं स शरुनायकः । यश्च ज्ञातापरायः अवमानितः तिरस्कृतः अपि न विल्रतः न लिन्तो भवति स घृष्टः ॥ ९ ॥

अर्थ-जो स्रीका अमिप कार्य करके चित्तमें विना विकार रूपि (सादे पनसे ही) मिप बोले प्यार प्यारकी वार्ते बनावें उसे शत्र नायक कहतें हैं और जो अपने किये द्वर अररायकी जान कर और स्त्रीसे तिरस्कार किये जाने पर भी स्टिनत न हो उस नायक कहतें हैं (साहित्यक अंपोंसे इनके भेद पीरदायत भीरउद्दत, भीरललित, भीरवद्यांत आदिभी लिसें हैं निल्हें मैंय बाहुस्य भयसे इस अंपों ग्रंयकारने नहीं लिखा)॥ ९॥

(भाषा) दोहा-नायक रस धूंमारको, पुरुष युवा सुनान । युवति सुंदरी कामिनी, ताहि नायिका जान ॥ १ ॥ नायकके साहित्यमं, भेद बताये चार। सुजनुकूट दक्षिणशब्द, पृष्ट टह निः धार ॥ २॥ परनारी रातिसे विद्यस, सी जनुकूछ बलान । दक्षिण परितय चित दिये, तिय प्रिय परम संयान ॥ ३ ॥ कर अप्रिय विन विकृतिके, शब्द बोले प्रिय बाल । नाहिंद्याने अपराजयुत, पृष्ट तिरस्कृत कोल ॥ ४ ॥

नायिका वर्णन ।

अनुहा च स्वकीया च परकीया पणांगना॥

त्रिवर्गिणः स्वकीया केव-स्यादन्या लकामिनः॥ १०॥

टीका-(अन्वयस्तु सरलः) अनुद्धा अविवाहिता स्वकीया स्वस्य विवाहिता स्त्री परकीया परस्त्री पर्णांगना पण्यांगना सानान्यवनिता वेश्या इत्यर्थः एवं नामिकाः चतुर्विधाः तासु त्रिवर्गिणः धर्मकामार्थिनः पुरुपस्य स्वकीया एव स्त्री स्थात् अन्या परकीया सामान्या च

केवलकामिनः कामिजनस्येवेत्यर्थः ॥ १० ॥

अर्थ-अनुदा अर्थात् विना स्याहा नववीवना, दूसरे स्वर्शायाः अपनी विवाहिता की, तीसरे परकीया, पराई सी,परनारी, चौथे पणीगना बाजारू स्त्री अर्थात् बेर्या, इस मकार नायिका चार प्रकारकी होतीहें इनमेंसे त्रिवर्ग धर्म, काम और अधेके बाहने बालोंके लिये केवल स्वकीया अपनी विवाहिता स्त्री ही होती है और अन्य परकीया घरवा आदि केवल कामियोंके ही लियेंहें रे

(भाषा) दोहा-होत नायिका बार विध, मथम अनुदा जान। स्यीया परकीया तथा. गणका और बसान ॥ १ ॥ धर्म अर्थ अरु काममें, सुराद सुकीया नार।कामहेत अपयश सहित, गण-को अरु परनार ॥ २ ॥

अनूडा स्थण ।

अतुरक्तातुरक्तेन स्वयं या स्वीकृता भवे-त् ॥ सान्द्रिति यथा राज्ञो हुष्मंतस्य शकुं-तला ॥ ११ ॥

(२-६) बाग्धारंगार-परि-५.

दोका-पा अनुनका स्थाप अनुरक्षेत्र सीहुज भोत मा अनुहा इति यथा वर्षांतस्य राजः शर्रतहा इत्यन्त्रयः ॥ अनुम्का अनुग्रिणी अनुरक्षेत्र शतः गनवक्तेन नायकेन स्वयं सोस्छरीत स्वीकृता । एवीता अध्याः सम्मानपश्चितायां कम्यविश्वक्षमयानुगयः मारपन्ता मा करवकापि कथ्यने उत्तं न माहित्यापै ण । ऋत्या राजानोपपमा मळगा गप्पी ाग 📢 त्र इस्टरणं रसमे वर्षो यथा ''किनिस्केनिससम्परित रक्तक्षेत्रपाक्षिणे । भावभाविक्षायवय्विकाम र्षः १ हर्णात्परस्य । अंगुरुपारकुरत्स्रदीयकस्या संदरप ६ राने ह गंभा सपकरपदा सक्तीने, मञ्चानमाली ern " efenaan

नाव की दिया विवासि जमीहा वस्ता अनुसायपृक्त होण्ड कर्रास दृष्ट रहात रूपमे मेर्स्स हा साथ से। इस सन्छा कर्ष दिस रहाना दूरभादण अर्हण्य जमासा की क्षणीचना कमा यस दृष्टार क्रमहान जासर चंट गहानी अल्या क्यारी है सी स्मिन्स मा करीति छाउटे छ

्र साम (राष्ट्र) और मुंहर सद्योगना, हुन्छ ने देखरित्तात । पहिल्ला कार पर क्षेत्र हिन्दी खाला। के छा बदावान । एन ब्रिटेन ब्राहर किलिन पून नाम है विद्यासम्बद्धीय स्

स्वकीया ।

देवताग्रहसाक्ष्येण स्वीकृता स्वीयना-यिका॥क्षमावत्यातिगंभीरप्रकृतिः सद्यरि-वसत्॥ ३२॥

त्रभृत् ॥ १२ ॥ दीका-समावती अतिगंभीरमङ्गितः सबरित्रभृत देवतागुरुसाक्ष्मेण (या) स्वीङ्गता (सा) स्वीय-नापिका (भवतीति शेपेणान्ययः) ॥ देवतानां ग्रह-

नाधिका (भवतीति शेषेणान्ययः) ॥ देवतानां ग्रह-जनानां साक्ष्येण साक्षिष्येन स्वीकृता अंगीकृता स्वीय-नाथिका स्वकीया भवतीत्यर्थः (उत्तः च साहित्यदर्पणे) विनयाजेवादियुका ग्रहकमेपरा पतिष्रता स्वीया॥ क्रीय-ता सापि त्रिविधा सुग्या, मगरुभेति ॥ ९ ॥

स्वकीयोदाहरणं रसमंजन्यी थथा ''गतागतकृतृहरूं नयनयोरपोगावधि स्मितं कुळनतकुवामधुर एव विश्वा-म्यति । एवः प्रियतमञ्जतेरतिधिरेव कोषकमः करा-चिद्रपि चेत्तदा मनसि केवळं मन्यति"॥ २ ॥ इति तत्र अंकुरितयोवना ळनावती गुग्या समानळना-मदना मध्या पतिमावकेळिकळापकोविदा मगल्मा इति रसमंजय्यां तदुदाहरणानि च सुग्याया यथा 'आ

मदना मध्या पतिमात्रकेलिकलापकोशिदा मगरमा इति रसमंजय्या तदुदाहरणानि च सुग्धाया यथा ''आ इति किल फामदेवधरणीपालेन काले ध्रोभेषस्यं पास्तु-विधि विधास्यति तनी तारूष्यमेणीदशः॥दृष्टपाक्षेत्रन- चातुरी मुखरूचा सीयाचरी माधुरी वाचा किं च मुग्ना समुद्रलहरीलावण्यमातन्यते" ॥ ३ ॥ मध्याया यथा "स्वापे प्रियाननविलोकनहानिरेव स्वापच्युती प्रियकरमहणप्रसंगः ॥ इत्यं सरोरुहमुखी परिचितयं ती स्वापं विधातुमपहातुमपि प्रपेदे"॥ १ ॥ प्रगः स्माया यथा "आश्चिष्य स्तनमाकलय्य वदनं संशिष्ट प्य कंठस्थली निष्पीडचाधरविवमंत्रसमाकृष्य च्युक्तं स्यालकम् ॥ देवस्यां वुजिनीपतेः समुद्रयं जिज्ञासमिन प्रिये वामाक्षी वसनांचलेः श्रवणयोनीलीत्पर्लं निद्धते ॥ इति ॥ १२ ॥

अप-क्षमायुक्त अतिगंभीर मृक्ति अज्ञावाँतत्वादिक अच्छे चिरभाँकी धारण करने वाही ऐसी जो सत्कुल मृक्ता की सी देवता और गुरू जन (वहाँ) के समर्भम अंगीकार करी जाँ वहां रफ्कीया की होतीहै साहित्य दर्गमें ऐसा लिखा है कि विनय तमता) और अज्ञात सीध्यने युक्तों और युर स्थके कामोंमें रत रहने वाली और पितृत्वता की स्टकीया व्हर्स एकं कामोंमें रत रहने वाली और पितृत्वता की स्टकीया व्हर्स एलातीहै यह स्टकीण अवस्था मेदसे तीन प्रकारकी होतीहै प्रयम् मुग्धा दूसरे मध्या तीसरे प्रगच्या इनमंस अंकुरितयीयना लगा वती नर्यान की को मध्या कहतेंहें और गित्समें लगा और काम देव समान हो उसे मध्या कहतेंहें और पित्समें लगा और काम होगाई हो उसे प्रगच्या वहतें हैं इनके उदाहरण उत्तर संस्कृत देवतां वसी अथ्या नांचे भाषा दोहोंमें ॥ १२॥

(भाषा) दोहा-जो गुरु देवनके निकट, करी जाय स्वीकार। अति मुक्तील गृह कर्म रत, सोइ स्वकीया नार ॥ १ ॥ इसहि

सान्ययसं० टी० भाषाटीकासहित । (२०९)

ाषधीया नारिक, होत दमर अनुसार। मुन्धा मध्या मगरमा, तीन मेद निर्योत ॥१ ॥ मुन्या हो नव योवना, मध्या सम सद छान। । कर्र मगरमा निष्णता, निज पति तरिक क्वान ॥ १ ॥ मुग्या इदाहरण-छानमरी ॲिवियानमूं, सन्मूख नाहि छहाया। पति जछ मोग्यो भयनमें, बाहर ही घर जाय ॥ ४ ॥ (मध्या उदाहरण) मदन षदे विष मिलनकूं, छान कर छात्रार । यछन चहे फिर किर रुके, मनमें करे विचार ॥ ५ ॥ मगस्मा उदाहरण । देख इतेरों मातको, विदित न हो भरतार। मेमालिगनकं सहित, झड

परकीया ।

परकीयाप्यनूदेव वाच्यभेदोऽस्ति चान-योः ॥ स्वयमप्यतिकामैका सख्या चैका प्रियं वदेत् ॥ १३ ॥

टीका-परकीया अपि अनृदा इव (भवति) अ-नयोः च वाच्यभेदः अस्ति एका अतिकामा स्वयम् एका च सख्या प्रियं बदेत् इत्यन्वयः॥ अनयोः पर-कीयानृद्वयोः वाच्यभेदः वचनभेदः अस्ति एका पर-कीया अतिकामा अतिकामवती स्वयं प्रियं कांतं बदेत सुरताभिप्रायं प्रकाशयेत् एका च अन्या अनृदा सख्या सखीसुखेन प्रियं कांतं बदेत् स्वाभिप्रायं प्रका-शयेदित्ययंः परपुरुपानुरक्ता परकीया अस्याश्चोदाहर-णम्"स्वामीसुग्धतरो वनं घनिषदं वालाहमेकािकनी।

(२१०) वाग्भटार्छकार-परि॰ ५. क्षोणीमावृणुते तमालमलिनच्छायातमःसंत्रतिः ॥तन्मे

सुंदर ! कृष्ण मुंच सहसा वत्मेंति गोप्या गिरः श्रुत्वा तां परिरभ्य मन्मथकलासको हरिः पातु नः" इति १३॥ अर्थ-परकीया भी अनुडाकी भांत ही होतीहै इनमें सिरफ

षचनोंका ही भेद होताहै इनमेंसे परकीया अति कामवती होने-से स्वयं आपही पर पुरुषसे अपना आभिनाय कहदंतीहै और अनुदा ससीके द्वारा प्रायः अपना अभिप्राय प्रकट करतीहै परकी॰ याका लक्षण मुख्य परपुरुषमें अनुरक्त होनाहै इसका उदाहरण रूपर श्लोफमें अथवा नीचे दोहेमें देखी ॥ १३ ॥

(भाषा) दोहा-रुष्ट रहे निज जननसे, गृहका करेन कार। मेम करे पर पुरुष से, सो परकीया नार ॥१ ॥ (टदाइरण) में षाला रहुं एकली, युद्ध सास रहे सीय । छैल रात मुझ पर रही,

बरने तमे न कीय ॥ २ ॥ सामान्या । सामान्यवनिता वेश्या भवेत्कपटपं-दिता ॥ निह कश्चित्प्रियस्तस्या दाता-

रं नायकं विना॥ १४ ॥ सर्वप्रकाशमेंबै-पा याति नायकमुद्धता ॥वाच्यः प्रच्छन्न-एवान्यस्त्रीणां प्रियसमागमः॥ १५॥

टीका-सामान्यवनिता वेश्या कपटपंडिता भवेत दातारं नायकं विना हि तस्याः कश्चित प्रियः न एपा उद्धता सर्वप्रकाशम् एव नायकं (प्रति) याति अन्य

स्त्रीणां प्रियसमागमः प्रच्छत्र एव वाच्यः इत्यन्वयः ॥
कपटे अर्थेत्रहणचातुर्ये पंडिता विचक्षणा एपा उद्धता उच्छृंखला सती सर्वत्रकारां सर्वेषां जनानां समर्वः नायकं कार्त पति याति गच्छिति अन्यस्त्रीणां स्वकी-थापरकीयानां प्रियसमागमः कान्तं प्रति गमनं प्रच्छत्रः ग्रह्मत्वेनेव (उक्तं च रसमंजय्योम)द्रव्यमानोपाधिसकल-परपुरुपाभिलाण सामान्यविता तस्या उदाहरणम् ''दृष्ट्वा प्रांगणसित्रधां बहुषनं दातारमभ्यागतं वत्रोजी तत्रतः परस्परमिवाछेषं कुरंगीदशः॥ आनंदाधुपयांसि सुंचतिसुदुर्मालामिषात् कुंतला दृष्टः किंच धनागमं

कथिति कणीतिकं गच्छिति॥" इति ॥ १८ ॥ १८ ॥ अपं-सामान्यवनिता अर्थात विश्वा वजट करनेमें पंडिता होती है सिवाय द्रम्य वंनविलेक इसको कोई भी प्यारा नहीं होता है यह उद्धत निश्चक होने सबके सामनेही पर पुरुषे पास यही जाती है इसके सिवाय और दियों (श्वकीया पर्राप्त पर्वाप्त करीया पर्राप्त पर्वाप्त प्राप्त करीया पर्राप्त करात पुत्त करोत प्राप्त करोत प्राप्त करात पुत्त करोत प्राप्त करात पुत्त करोत प्राप्त पर्वाप्त प्राप्त करात पुत्त करोत प्राप्त करात प्राप्त पर्वाप्त पर्वाप्त करात प्राप्त करात प्राप्त पर्वाप्त करात प्राप्त करात हो होती है इसका भी उदाहरण करर क्षेत्रक स्था नीचे होईमें ॥ १५ ॥ १५ ॥

(भाषा) दोहा-करे भीति उन नरनधं, अधिक दृष्य जो देत। तारो गणिका पहत हैं, बिन धन करे न देत ॥१॥ (उदाहरण) अति भूषण षट्ट पसनते, मम नित करे सिंगार । छाउ हती उस धतिककुं, गणिका कहे पुकार ॥ २॥

विप्रलंभ ।

पूर्वानुरागमानात्मप्रवासकरूणात्मकः ॥ विप्रलंभश्चतुर्घो स्यात् पृद्यः पृद्यो स्यं ग्रहः ॥ १६ ॥

दीका-विप्रलंभः पूर्वोत्तरागमानात्मप्रवासकरुणाः त्मकः चतुर्धा स्यात् अयं हि पूर्वः पूर्वः गुरुः इत्यन्ययः॥ पूर्वातुरागात्मकः मानात्मकः प्रवासात्मकः करुणाः तमकः प्रवं विप्रलंभः चतुर्धा भवति विप्रलंभः पूर्वे शृंगारभेदे चोकः अयं पूर्वः पुर्वः गुरुः यथा करुणात प्रवासः प्रवासात् मानः मानात् पूर्वातुरागः श्रेष्ठ इत्यथं ॥ १६॥

अपं-(परले शंगारक दो भद जो कहे प कि संपोग और विगरंभ निममेंन संपोगका संक्षित वर्णन कुछ हो चुका भव विगरंभ का वर्णन करते हैं) यह विश्वलंभ अपोत् विपोग भार भग्नारका होता है परांतुरान मान भगाम और करणा हनेमेंन विजेटी अवेशा पहला पहला भेड समझा नाता है नैमें करणमें नवाम भगाममें मान और मानसे परांदुराम शेष्ट होता है ॥ १६॥

पूर्वानुगग ।

र्खापुंमयोर्नवालोकादेवोछिसितरागयोः ॥ ज्ञयः पुर्वानुसगोऽयमपूर्णस्पृहयोर्द्शा१९॥ टीका-नवालोकात् उद्धितरागयोः अपूर्णस्पृहयोः स्त्रीपुंसयोः दशा अयं पूर्वातुरागः क्षेयः इत्यन्वयः ॥ नवालोकात् नव्ययोः स्त्रीपुंसयोः आलोकात् दर्शनात् अवणादिष उद्धितरागयोः उद्धितः उद्गादितः रागः ययोः अपूर्णस्पृहयोः अपूर्णा स्पृह्वा ययोः अपूर्णमात्रेययोरित्यर्थः एवं भूतयोः स्त्रीपुंसोः या दशा स एव पूर्वानुरागः दशा अवस्था सा दशविधा द्पेणे "अभिलापश्चितास्मृतिगुणकथनोद्धेगसंप्रलापाश्च-उन्मादोऽथ व्याधिजंडतास्त्रीतः" इति दशात्र इति॥ ५७॥

अर्थ-नर्धान को पा पुरुषके देखनेसे (तथा उसके गुण सुन-मेसे) उद्यसित अर्थात् उद्यासित हुवा है अनुराग (भ्रम) जि-नका ऐसे जो की पुरुष अर्थात् नृतन स्वेले दर्शनादिसे पुरुष और नृतन पुरुषके दर्शनादिसे की उनकी जो द्वार (अवस्था) उसे प्रतीन्द्राग फहते हैं यह दशा मायः दश मकारकी होती है जैसे असिकाप, चिंता, स्वृति, गुणक्यन, उदेव, संमद्याप, उनमाद, स्पापि, जहता, गृति हति ॥ १७॥

(मान, प्रवास,)

मानोऽन्यवनितासंगादीर्ष्याविकृतिरुच्यते ॥ प्रवासः परदेशस्ये प्रिये विरहस्यः ॥ १८॥

टीका-अन्यवनितासंगात् ईप्यांविकृतिः मानः

उच्यते । प्रिये परदेशस्थे विरहसंभवः प्रवासः इत्यः न्वयः ॥ अन्यवनितासंगात परह्यीणां संगः मेथुनाला पादिकः तस्मात् तस्य दर्शनश्रवणानुमानात् या ईर्प्योः विकृतिः ईर्प्यया विकारः स मानः मानात्मको विप्र-लम्भः उच्यते इत्यंर्थः । तथा प्रिये कांते परदेशस्ये यः

विरहस्य संभवः स प्रवासात्मको विश्रलंभः॥ १८॥ अर्थ-परस्रीके संग मेथुनालापादिके देखने सुनने तथा नई मानादिसे जो ईपाँसे विकार पैदा होजाता है उसे मान नामक विमलंभ श्रृंगार कहते हैं और पतिके परदेश रहनेसे जी दिए उत्पन्न होता है उसे भवास नामक विभलंभ शृंगार कहते हैं।। रेटी

करुणा।

स्यादेकतरंपंचत्वे दंपत्योरतरक्तयोः ॥ र्श्वगारः करुणाख्योयं वृत्तवर्णन एव स^{:१९}

टीका-अनुरक्तयोः दंपत्योः एकतरपंचत्वे अपं करुणाख्यः शृंगारः स्यात् स एव वृत्तवर्णनः इत्यः न्वयः ॥ अनुरक्तयोः अनुरागयुक्तयोः दंपत्योः स्त्री[.] पुरुपयोः एकतरपंचत्वे इयोर्मध्ये कस्यचिदेकस्य मरणे (तथा प्रत्रजितेऽपि) अयं करूणाख्यो विप्रलंभः शृंभरः स्यादित्यर्थः स एव वृत्तवर्णनः गतस्य वर्णनः रूपको भवति नतु वर्तमानस्य भाविनो वा वर्णनरूपः

एतेपां उदाहरणानि च यथाक्रमं दृष्टव्यानि पूर्वानु-रागस्य यथा " दृष्ट्वा चित्रितांचेत्रमूपा भूपा तं चित्र-लेखातः॥अनिरुद्धस्य सक्रतिनो भूमी पतिता निरुद्ध-चित्ता सा¹⁷॥ १ ॥ मानस्य यथा दर्पणे "विनयति स-हशो हशोः परागं प्रणायिनि कौसुममाननानिलेन॥तद-हितयवतेरभीक्षणमक्ष्णोईयमपि रीपरजीभिराष्ट्रपरे॥ " ॥ २ ॥ प्रवासस्य यथा " इतः केकीनादैस्तदाति शत-कोटिप्रतिभटेरितः कामः कार्मं कठिनतरवाणिः प्रहरति॥ इतो गर्जत्युधेजेलधरगणो भीमानिनदिविना नाथ जाने न सीख भिवता कि नन मम ॥ ३ ॥" (करुण-स्य यथा) "जातिं न याति नहि गच्छति यथिकायां नायाति कुंदकलिकामपि सीरभादचाम्॥ भमोद्यमस्तु-हितनाशितमहिकायाः शोकाकुलः क्रणति रोदित पट्रपदोऽसी॥ ४॥" इति एषां मध्ये पूर्वानुरागस्य ना-यिका प्रायशः अनुद्धा कुत्रचित् परकीयापि मानस्य मानवती कचित खंडितापि प्रवासस्य प्रोपितभर्तका करुणस्य शोकवती इति आसां मध्ये ज्येष्टाकनिष्टा धीराऽधीरादिभेदास्तथा च स्वाधीनपातकाखंडि-ताऽभिसारिकाकलहांतरिताविष्मलन्धाउत्का प्रोपित-भर्वकावासकसञ्चा इत्यादिभेदाः संति अथवाहस्यभः यात्रात्र लिखिताः ॥ १९ ॥

(२१६) - बाग्भटार्लकार-परि०५.

अर्थ-भेमी दोनों सीपुरुषोमेंसे एक किसीकी मृत्यु होनानेसे या (पतिके संन्यस्तादि होनानेसे) करुणा नामक विमर्जन में गार होताहै इसमें गई इहें घानोंका वर्णन होताहै ॥ १९ ॥

इन प्रवादिया मान भवास और करुणा विसर्लभ हे द्राहर्ण कमसे कपर टीकामें लिसे छोकोंमें देखिये तथा नीचे देखिंग (विसर्लभ वर्णन) (भाषा दोहा) विमर्लभ इसी चार गिप, मधन पर्च अनुराग । इनो मान मवास पुनि, चीचे करुण विराग ॥ १॥ (इनके यवाकम रुक्षण) सो परच अनुराग हैं, देरे सुने ग्रीध वर्ष प्रदेशमें, ताको विरह मवास । करुण मरण संग्याम । भा पर अनुराग हैं, वरि सुने ग्रीध वर्ष प्रदेशमें, ताको विरह मवास । करुण मरण संग्याम । जामें होंग निरास ॥ १ ॥ (उदाहरण) (पूर्वाद्याग) हैं अविमर्स कुल्लगुन, सुनकर भीम कुमारि । भव अनग्य अनु शिमनी, मिलिहो कुल्ल सुराहि ॥ ४ ॥ (मान) वंशीयर ते हुल्ल सन, कोड सुंदर मज नारि । राज मरी सुग मारके, हुल्ल प्रमान प्रवास । पर्मा सुग मारके, हुल्ल सन, कोड सुंदर मज नारि । राज मरी सुग मारके, हुल्ल प्रमान दुलारि ॥ ४ ॥ (मता) पर्मा क्ये सिरायन वसने सेन्दर परितम संग । में निन पी पीसे पर्मा, अयो कमरी अंग ॥ ९ ॥ (करुणा) कर विज्ञार पृति मिर पुने, गार्शाणंत्रकों भार वर्षाकी नाकरी छोड कुल्ल महापार ॥ ७ ॥

इनमें में पूर्वानुगाकी नायिका भाषः अनुदा होती है कही नित कही परकेरण भी होगानी है। और मानकी मानकी की मेरिका भी होती है प्रयामका प्रोधान कनिया, भीग करण की होत्सर्पी होती है इनके मियाब योखा, कनिया, भीगा, भीगा नाहित्साह मेर होते हैं और अनुसारता कुल्हा आदि परकारी कथा गर्यावित्रतिका संदित्त, असिमारिका, कल्हातिता, वि स्ट्या, दक्ता मेरिका बहुति हो सिका हमादि भेद भी होते हैं तो मेर्य बहुत्स अपने यहां नहीं दिशे हमसेनी। स्थाप आदिने दें हैं।

सान्ययसं ० टी ० भाषाटी शासिहत । (२१७)

वीररम् ।

उत्साहात्मा भवेदीरस्त्रिधा धर्माजिदान्तरः ॥ नायकात्र भवेत्सर्वः श्वाध्येरधि-कतो गुणेः ॥ २० ॥

टीका-धर्माजिदानतः उत्साहात्मा वीरः विधा भवेत अत्र सर्वेः श्राच्येः वुणैः अधिकतो नायको भवेदित्य-न्वयः॥ धर्मतः आजितः दानतः एवं त्रिधा चत्साहातमा बीरः आजिः युद्धम् यथा च धर्मवीरः युद्धवीरः दानवीरः (उक्तं च साहित्यदपंगे) "उत्तमप्रकृतिवीर उत्साह स्थायिभावकः॥ महेंद्रदेवतो हेमवणीयं समुदाहतः॥१॥ आरुंचनविभावास्तु ।वजेतन्यादयो मताः॥ विजेतब्या-दिचेषाद्यास्तस्योदीपनरूपिणः ॥ २ ॥ अनुभावास्त तत्र स्यःसहायान्वेपणादयः ॥ ३ ॥ संचारिणस्त धति मतिगर्वस्मृतितर्करोमांचाः ॥ स च दानधर्मयुद्धेदेयया च समन्वितश्रतुद्धां॥४॥ (युद्धवीरस्योदाहरणम्) भो लंकेश्वर दीयतां जनकजा रामः स्वयं याचते कोयं ते मतिविश्रमः स्मर नयं नाद्यापि किंचित कृतम् ॥ नवं चेत् खरदूपणत्रिशिरसां कठामुजा पंकितः पत्री नेष सिहप्यते मम धनुज्योत्रंघत्रंधृकृतः॥५॥"॥२०॥

अर्थ-पर्भ और युद्ध और दान इनमें उत्साहरूपी होनेसे शैर रस तीन मकारका होताहै, जैसे धर्मवीर, युद्दीर और दानवार इसमें नायक सब मशंसनीय गुणांस अभिक होता है (साहित्य दर्पणमें) चारमकारका छिता है जैसे युद्धवीर, धर्मवीर, दानवार, और दपावीर इस घीररसका स्वायोभाव उत्साह है और महंद देवता है सुनहरा वर्ण है और युद्ध चीरका आखंबन विभाव विमेतक्यादि हैं विमेतक्यकी चेष्टादि उद्दीपन है और सहाया-

दिका अभ्येषणादि अनुआर्वह धृति, मित, गर्वादिकसंनारी है रे॰ (भाषा) दोहा-सुद्ध धर्म और दानमें, हो अधिकल वस्ताह। ताहि धीररस कहत हैं, उद्दीपन याहबाह ॥ रे॥ (उदाहरण) यहा रास्यो यहांबतने, सुजवल मदल बदाय । हुटे न तम तह जब तलक, नाहर ना हर जाय ॥ रे॥

करुणा

शोकोत्थः करुणो ज्ञेयस्तत्र प्रणतरादने॥ वेवण्यमोहनिवंदप्रलापाश्रूणि क्रीतंयेत् २१ टाका-करणः शोकोत्थः ज्ञेवः तत्र प्रणतराते

विषण्यभारनिर्वेदमलापाथणि कीतेयेत् इत्यन्ययः ॥ शोकान्यः शोकान् इष्टनाशानिष्यपानिजनितात् उ त्यिनः कृषणः कृषणास्मा ज्ञेषः नाव स्मे प्रणतं रोदनं च विषयं विषणंत्वं मोदो मुख्यां निर्वेदः विषयं प्रलापः प्रत्यपनम् अश्रणि नयनज्ञतानि इत्यादयो अगुभाषाः कृतिनव्या स्त्युषं अस्य स्थायीसायः शोकः (उत्तेष

कीर्तितच्या इत्यर्थः अम्य स्थापीमात्रः शोकः (उत्तेष मा • द्येण) "इष्टनाशादनिष्टाने करणाख्यो रह्यो भयेग॥ :सान्ययसं ॰ टी॰ भाषाठीकासहित । (२१९)

र्धारः कपोतवणोंऽयं कथितो यमदेवतः॥ १ ॥ शोकोञ्ज स्थायिभावास्याच्छोच्यमाल्वनं मतम्॥ तस्य स्मृत्या-दिकावस्या भवेदुद्दीपनं पुनः ॥ २ ॥ अनुभावा देव-निदाभूपाताक्रंदनादयः ॥ ववण्योच्यासविश्वासस्तंभ-प्रलयनानि च ॥ ३ ॥ निवंदमोद्दापस्मारच्यापिग्लानि-स्मृतिश्रमाः॥ विषादजडतोन्माद्दांचताद्याः व्यभिचारि-णः ॥ ४ ॥ उदाहरणम्-विपिने क जटानिवंधनं तव चेदं क मनोहरं वयुः ॥ अनयोष्टना विधेः स्कुटं ननु खङ्गेन शिरोपकतनम् ॥ ६ ॥" इति ॥ २१ ॥

अर्थ-यांदित पदार्थिक नाश तथा अनिष्ठकी अन्नाति इनसे इया जो कोंक उससे उठा इया परुणा रस होताई उसमें मणत नजता या पतन तथा रुदन और वर्ण विशव जाना मीह मुच्छों होना निर्मेंद्र अर्थाद पैराग्य होनाना मलाप (वक्ष्याद) होना तथा निर्मेंस औद्ध गिराग हानाहि (अनुभाव) फीतेन किये जातेंद्र इस स्वरम पर्यामाण कोंक है (साहित्य वर्षणमें) किये प्रति इस रसका वर्ण प्रणोतके रंगका (खाक्षी) है इसकी देवता पन है शोक स्पायीभाव और शीच्य वस्तु आलंबन है उसकी पाद आना आदि उद्दापनाँहं और देवकी निर्मा एवियोम पडना विशाय करना आदि अनुभाव हैं और वर्ण वियवता, उन्नी भास स्ता संभित होनाना प्रत्या, निर्मेद, भोद, अपस्मार, प्यापि, स्त्राने, नमृति, सम, वियाद, जडता,उन्माद, जिंता हत्यादि प्यपि-पारी भार्यटं उदाहरण उत्तर श्लीक तथा नीचे दोहिमें देवी रे१ (भाषा) दोहा–इष्टाश या दुस मिले, होग शोष कीये जासु। मेशह विषाद विलाप हो, करणा स्स पहि तासु॥ रेश (१२०) वाग्भडार्छकार-परि०५.

(टदाहरण) पत उतरत मम बसन सन, हे पत रासन हार। आरत हाँ द्रोपदि निचल, से से करत पुकार ॥ १ ॥

हासमूलः समाख्यातो हास्यनामा रसे। बुधेः ॥ चेष्टांगवेपवैकृत्याद्वाच्यो हास्य-स्य चोद्भवः॥ २२॥ कपोलाक्षिकृताह्यः

सो भिन्नोष्टः समहात्मनाम् ॥ विदीर्णाः स्यश्च मध्यानामधुमानां सज्ञब्दकः॥२३॥ दीका-दासमूळः दास्यनामा रसः वृषः समाल्यातः

दीका-हासमूलः हास्यनामा रसः बुधैः समाख्यातः रोष्टोगवेषयञ्जत्यात् हास्यस्य च उद्भवः याच्यः॥स महाः रमना कपोलाक्षिकृतोलासः अभिन्नोष्टः मध्यानां च रि

दीर्णास्यः च अधमानां सशब्दकः इत्यन्ययः॥हासःमूर्लं युम्य म हासमुळः चेष्टांगवेषवेकृत्यात् चेष्टया अंगरय युम्य च वेकृत्यात् विकृतिभावात् हास्यस्य च उङ्गा उन्यतिरित्यर्थः म हामः श्रकृतिभेदेन विभा महात्मना

तु क्योत्यातिकृतोहामःक्योत्याभ्याम अतिभ्यां च हतः वहामः कितामः यम्मिन् तथाभूतः अभिग्रोष्टभ न मित्रा आष्टा यम्मिन् तथाभूतः मध्यानां विद्याणांस्य विद्यालयः सम्बन्धः सर्वे सम्बन्धः स्वर्थानाः स्वर्थानाः स्वर्

रिद्दार्णम् आस्यं मृत्यं यस्मिन् एवं भूतः अपमानाः है मशस्त्रकः शस्त्रमहिनः इत्यर्थः (उतः च माहित्यदर्गेणे) 'विकृतकारवागवर्यः।धोदः खुरकाद्येवन॥दामा हास्यः स्थायिभावः रै्वेतः प्रथमदैवतः ॥ १ ॥ विकृताकार-वानचेष्टं यदालोक्य हसेन्ननः ॥ तद्वञालंत्रनं प्राहुस्त-बेष्टोदीपनं मतम् ॥ २ ॥ अनुभावोऽक्षिसंकोन् वदन-स्मरेतादिकः॥निद्वालस्याविह्याया अत्र स्युन्यंभिचा-रिणः॥३॥ (उदाहरणम्) (सा॰ दर्पणे) गुरोगिरः पंच दिन्यान्ययीत्य वेदांतशाखाणि दिनत्रयं च॥अमी समा-प्राय च तर्कवादान् समागताः कुक्कुटिमिश्रपादाः ॥ ४ ॥" इति ॥ २२ ॥ २३ ॥

अर्थ-भंदितींने पहाहि कि हुँसी जिससे हो उसे हास्य रस कहाँदे पेष्टा अंग और भेषकी विकृति इत्यादिसे हास्यकी उत्यक्ति पणन पर्सी दे पह हास्य (हॅसना) पेसे तीन भकारका है कि महात्याओं का हुँसना ऐसाहि कि जिसमें क्योंक और नेमें होंसे उद्धास रहे होंठ सिकं नहीं और अपमें कि हैंस्तेमें से खूप कह-कहादेका हान्द होताहै साहित्यदर्गमंगे हिसाहै कि हास्यसका स्थापी भाप हेंसता है और वर्ण श्वेति प्रमयं देवता विकृता-कारिंदि देवता जिनसे हुँसी आये सी आलंदन विभावें और पिकृताकारादिका पेष्टा उदीपनहीं और नेन संकोच ग्रह फरना आदि अनुभाव हैं और निज्ञा आलंदन विभावें और जन्मपा भाषणादि) स्पिनचारी आलंदन क्याहित्य (अंग गोपन अन्यपा भाषणादि) स्पिनचारी आलंदे दराहरण कपर स्रोकंसे तपा नींचे देती॥ २२ ॥ २२ ॥

(भाषा) सोरठा-मुख्य हास जिह सूल, हास्य नाम रस होत सो । ये इसके अनुरूल, वेष चचन चेष्टा विकृत ॥ १ ॥

१ चेनः पोडुच्छतिसस्य वर्णः घरतस्यु शांतस्योति भेदः **।**

(२२२)

(टदाइरण) दोहा-तीन दिना सब काम्न पर, एक दिना पर वेद ! इनकुट मिभ पर्धार्रहें, सिर पर धरे स्टेयद ॥ रै ॥

अद्भुत ।

विस्मयात्माद्रतोज्ञेयः सचासंभाव्यवस्तुः नः ॥ दर्शनाच्छ्वणाद्यपि प्राणिनासुपः जायते ॥ २४ ॥ तत्र नेत्रविकासः स्याः त्पुलकः म्येद एव च ॥ निस्यंदनेत्रता साधु साधु वा गद्भदा च गीः ॥ २५ ॥ टीका-तिसमयातमा अद्भतः शेयः स न माणिनाग् अमंभाज्यपरतुनः दर्शनात् अवणात् अपि वा वपः जायने तम नेमिनकामः पुलकः च वय स्थेवः विस्यं दुनेवता या माधु माधु गहुदा च गीः स्याय इत्यः न्तयः ॥ तिम्मयातमा विम्मयः आतमा स्थापीभाषः यम्य म च अद्भाः अमंभाव्यामतुनः न मंभीति योग्यम असंबाद्ये ताहशस्य वस्तृनः दर्शनात शाः गात वा शाणिनां शाणवताम उपजायने मंगर्वारमधेः तत्र रमे नेत्रयोः विकासः पुरुषः रोगोपः निरर्यरः नेत्रता नेवयोः किञ्चित्येर्थाभित्ययेः या गापु गापु इन्वे रंखपा गहुदा च गीः वाणी स्यात (उनं प माः रिन्दर्वेण/"अडने। विस्मयस्यायिनानो सेने दिवाणी पैतरणी बस्तु खेकि।तिगमार्थतनंषत्वण भागुणानीत

स्य महिमा भवेददीपनं प्रनः॥ स्तंभः स्वेदोध रोमांच-गद्गदस्वरसम्भ्रमाः॥२॥तथा नेत्रविकासाद्या अनुभावाः

प्रकीर्तिताः ॥ वितकीवेगसंभातिहपीद्या व्यभिचारिणः ॥ ३ ॥ लोकातिगम् अलीकिकम् । (अत्रोदाहरणम्)

दोर्देडोचितचंद्रशेखरधनुर्देडावभंगोद्यनप्रंकारध्यनिरा-र्येवालचरितप्रस्तावनार्डिडिमः ॥ द्राक् पर्यस्तकपाल-संपुटमिलद्वसाण्डभांडोदरभ्राम्यतिपण्डितचंडिमा क-

थमहो नाद्यापि विश्राम्यति॥४॥"इति ॥२४॥ २५ ॥ भर्प-विस्मय आश्चर्यहूप स्थापी भाववाला अहत रस जा-नना चाहिये यह असंभवहृष पदार्थोंक देखने अथवा सुननेसे माणिपींकी उत्पन्न होता है इसमें नेत्रीका खुला रहना तथा रोमांच होना पसाना आजाना अयवा नेत्र स्तंभितसे रहजाना तपा बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसी गृहद बाणी हो जाना

आदि होते हैं देशी साहित्यदर्गण इस अहत रसका स्पापी भाष आधर्य होता है गंधर्य देवता है पीला वर्ण है अलीकिक वस्तु आलंबन है उसके युणोंकी महिमा उद्दोपन है और स्तंभ, स्पेद, रीमांच, महद स्वर, संसम, नेत्रविकास इत्यादि अनुभाष हैं

षितकें, आवेग संभाति,हर्ष इत्यादि व्यभिचारी हैं उदाहरण कपर श्रोकमें देखी तथा नीचे ॥ २४ ॥ २५ ॥ (भाषा) दोहा-अहुत रस आधर्य मय, वह कवि चतुर सु-जान ! सी अद्भुत पस्तुनके, देखे सुने प्रधान ॥ १॥ (उदाहरण) तम पश मृतियन तथ गुनन, हुउ छै पोषत माल । अखिद आद्य गुन अनत रूख, भइ विस्मित सुर बाल ॥ २ ॥

भयानक ।

भयानको मवेद्गीतिप्रकृतिघींरवस्तुनः॥ स च प्रायेण वनितानीचवालेषु शस्यते॥ ॥ २६ ॥ दिगालोकास्यशोपांगकंप-गद्गदसंभ्रमाः । त्रासवेवण्यमोहाश्च व-ण्यते विद्वधैरिह ॥ २७॥

टीका-घोरवस्तुनः भीतिप्रकृतिः भयानको भने स च-प्रायेण बनितानीचवालेषु शस्यते । इह दिग लोकास्यशोपांगकंपगद्भदसंभ्रमाः च त्रासवेत्रण मोहाः वधैः वर्ण्यते इत्यन्वयः ॥ घोरवस्तुनः राह सादितः व्याघादितश्च भीतिप्रकृतिः भीतिः भय एव प्रकृतिः स्वभावः स्थायीभावः यस्य तथाभूता भयानकः भयानकरसः स रसः प्रायेण वनितादिषु शस्यते प्रशस्यते इत्यर्थः । इह अस्मिन् रसे दिगा-लोकाद्यः त्रासादयश्च (अनुभावाः) वर्ण्यते (उत्तं च सहित्यद्र्पणे) "भयानको भयस्थायिभावः कालाधि" देवतः ॥ स्त्रीनीचप्रकृतिः कुःणो मतस्तत्त्वविशारदेः ॥ ॥ १ ॥ यस्मादुत्पद्यते भीतिस्तद्त्रालंत्रनं मतम्॥ चेष्टा वोरतरास्तस्य भवेदुदीपनं पुनः॥२॥अनुभावोत्रवेवण्यं-गृहदस्वरभाषणम् ॥ प्रलयस्वेदरोमांचकंपदिक्षेत्रणाः

सान्यपसं वरीव भाषादीकासहित । (२२५)

दयः॥ जुगुप्सावेगसंमोहः शंकाद्या न्यभिचारिणः॥३॥ (उदाहरणम्) घनविटपतिभिरपुंजे काननकुंजे दिनां-तसंप्राप्त । उत्कालितमतिभीता व्याप्तं दृष्टा पला-पिता भिर्द्धा (गु॰ घ)॥ २६॥ २०॥

अर्थ-पोर (हरायमा) पस्तुसे उसके दर्शनादि शम्दादिसे (इतन होता दे) रेसा भय महतिवाहा अर्थात भय स्थापीमायवाहा भयानक रस होता है यह भयानक रस विशेषकर
री नीच वाहफ इनमें अच्छा हमता है इसमें दिशावाँकी और
(थारि तरफ) देखना शुद्धस्त्वना शरीर व्यंपना गहद्याणी
संक्षम प्राम पेरण्यं मोह य पंडितांने (अनुभाव) यणन क्यिहें
दिवो सान दर्गण) अयानकका स्थापी आव भय काल देयता स्त्री
गीव महति हुण्यकणं वहादि जिससे अयदो यह आलंदन उसकी
पोर वेष्टा उद्दीपन और देखना स्त्रीयां स्त्राह भाविक अनुभाव हैं और त्रुप्ता आवेस मेत् शंका इत्यादेक व्यंपिचारी भाव हीते हैं (उदाहरण क्यर क्षोजमें देखों
या नींच भाषामें)॥ २६ ॥ २७ ॥
(भाषा) दोहा-कहत भषानक नाम रस, जिसमें अति भषा

(भाषा) दोहा-कहत भषानक नाम रस, जिसमें अति भष हैंग्य । नीच मक्टीत अरु बाल तिय, तिनमें सोहत सीप ॥ १ ॥ (उदाहरण) पन तरु तिमिर समूह चन, तोमें बाप लगाय । शास युक्त फंपत भर्षा, भिल्ल नारि भय खाय ॥ २ ॥

रोद ।

क्रोधात्मको मवेद्रीद्रः क्रोधधारिपराभ-वात्॥भीष्मद्यत्तिमवेदुद्राः सामर्पस्तत्र नाः यकः॥ २८॥ स्वांगाणस्य वर्षस्याणायेपः

भुकुटयस्तथा ॥ अत्रारातिजनाक्षेपो द-लनं चोपवर्ण्यते ॥ २९ ॥

टीका-रोद्रः क्रोधात्मको भवेत च क्रोधः अरिपरा-भवात (भवेत) तत्र सामर्थः भीष्मवृत्तिः स्यः नायकः भवेत् । अत्र च स्वांसापातस्वसंश्चावाक्षेपभ्रकटयः तथा अरातिजनाक्षेपः दलनं च उपवर्ण्यते इत्यन्वयः॥ कोधात्मकः कोधस्थायिभावः अरिपराभवात शहतः अवमानात् भीष्मग्रत्तिः भयंकराग्रत्तिः सामर्पः अम-पेंण कोपेन सहितः नायकः वर्णनीयः स्वांसापातः स्वस्य अंसस्य जहस्रक्षणया वाहोः आपातः स्वसं-श्राघा स्वस्य आत्मनः भृतभविष्यद्वपा श्राघा न त वार्तमानिका आक्षेपः निर्भत्सनं भ्रकृटिः भ्रकृटिसंको-च इत्यर्थः अरातिजनाक्षेपः अरातिजने आक्षेपः उपा-लंभः दलनं मर्दनम् उपवर्ण्यते अनुभावह्रपेण वर्ण्यते इत्यर्थः(उक्तं च सा॰दर्पणे)''रौद्रःकोयस्थायिभावो रक्तो रुटाधिरैवतः॥ आर्लवनमरिस्तव तचेष्टोदीपनं मतम्॥ ॥ १ ॥ अनुभावास्तथाक्षेपकृरसंदर्शनादयः ॥ उपता वेगरोमांचस्वेदवेपथवो मदः॥मोहामपीदयश्चात्र भावाः स्युर्व्यभिचारिणः ॥ २ ॥ (उदाहरणम्) कृतमनुमतं दृष्टं वा यारिदं गुरुपातकं मनुजपशुभिर्निर्मयोदीर्भव-द्रिरुदायुर्वः ॥ नरकरिषुणा सार्द्धं तेपां सभीम-

सान्वयसं ० टी ० भाषाठीकासहित । (२२७)

किर्राटिनामयमहमस्ट्रूमेदोमांसः करोमि दिशां बलिम् ॥ २८ ॥ २९ ॥ अथ-शहसे हारकाने हत्यादिसे क्रोध उत्तम होताहै और फोपहों हे स्याहं आप जिसका विस्ता सेट सम्होताहै और हम

अप-शत्म द्वारतान इत्यादस काथ उत्तत हाताह आह स्मेयदी हे स्याद भाग निसका देशा दी द रस होताहे और इस समझ नायक द्वारा क्षेत्र हा और अपनक पूर्व पायक होता है आहे और अपने भूमा परकता अपनी श्वापा करना पराधेकी आई-ना करना श्वरूटी चडाना तथा पराधे की उपालंभ देना महैन ये अस्मात करना होता होता है।

अनुभाष हरोंसे वर्णन क्रियेंहें (देशो सा॰ दर्पण) रीद्र रसका क्षेत्र रथायों भाष है रक्त वर्णहें रह देवता है और शादु (तथा अन्य अभियादि) आहंबनोंहें और उसको येहादि उद्दीपन हैं और आक्षेत्र, बूह दर्शन, इप्रता, आपेता, रोभीय, व्हेंद, केप, मद इरयादि अनुभावहें और मोह अमर्थ इत्यादि क्यभिवारी हैं (रीद्र और पुद्धशर रसमें भेद यह है कि युद्ध पीरमें उत्साह स्थायीमाव

हैताहै और इस रोड़ रामें कोष स्थापीआवहे) उदाहरण कपर टीशक छोड़में देखां या भीचे भाषामें ॥ २८ ॥ १९ ॥ (भाषा) देहा-आरिते होर कोषहीं, कोष रॉडकी भाव । भीप्प पुत्ति कोपित पहीं, नायक उत्र सुभाव॥ १ ॥ (बदाहरण) मनुमयम् ग्रुठपातकीं, कीने कमें कडोर ! तुम तनु आर्मिप रुपिर-

को देह करी। याँद्व और ॥ २ ॥ (यह अधन्यानाका वचन पोड़-पोंके प्रति है)

चीभत्स ।

वीमत्सः स्याज्जुगुप्सा त सची यच्छू-वणेक्षणात् ॥ निधीवनास्यमंगादि स्या- (२२८) बाग्भटार्टक्रांर-परि० ५.

दीका-यच्छ्नणेसणात् सदाः जुगुप्सा (स) वी भत्सः स्यात् अत्र निष्ठीवनास्यभंगादि स्यात् च

भत्सः स्यात् अत्र निधीवनास्यभंगादि स्यात् च महतां न इत्यन्वयः ॥ यच्छ्वणेक्षणात् यस्य श्रवणात दर्शनात् वा सद्यः शीघं जुगुप्सा घृणा भवति स वी-भत्सः वीभत्सनामा रसः स्यात् अत्र अस्मिन् रसे

निष्ठीवनास्यभंगादि निष्ठीवनं थूत्करणम् आस्यमंगः
धुखविकारः इत्यादिस्यात् निष्ठीवनादिः अनुभावः स्यादित्यर्थः महतां समदृष्टीनां महातमनां च न महातमन निष्ठीवनादिकं न स्यादिति फलितोर्थः (उक्तं च साहित्यः दर्पणे) जुगुप्सास्थायिभावस्तु वीभत्सः कथ्यते रसः॥नीः खवणां महाकाळदेवतोयमुदाद्धतः॥ १॥दुर्गथमां सापिशः तमेदांस्याळं यनं मतम् ॥ तवेव कृमिपाता समुद्धीपनः मदास्तम॥ ॥॥ निष्ठीवनास्यवळ्तने वर्मको चनादयः।

सुदाहतम् ॥२॥ निष्ठीवनास्यवलनेवस्कोचनाद्यः। अनुभावास्तव मतास्तथा स्युव्यंभिचारिणः। मोहोपः स्मार आवेगो व्याधिश्य मरणाद्यः॥३॥(उदाहरणं सा॰ द्रपंणे) उत्हत्योत्हत्य कृति मथममथ पृथ्व्योथभूपी-सि मांमान्यंसर्पिक पृष्ठांपडायवयवसुलभान्युमपृती-ति जग्या ॥ अंतःपयस्तिवाः मक्टितद्शनः मतरेकः करंकाद्कम्थादस्थिमस्यं स्थपुटगतमपि कत्यम-व्यममिन ॥ २ ॥ इति ॥ २०॥ अयं-तिम मह वदार्थक देशने या सुत्रवेभ दर्भा वस्त प्रा आदिक अनुभाव होते हैं परंच समद्शियोंको ये शुर्ह सिफो-उना आदि नहीं होते देखी सांहित्य दर्गणमें इस भात हिस्सा है कि इस पीमन्स रसका जुगुन्सा (पृणा) स्वापी भाव है नीला-पर्ण और महाकाल देवता है और दुर्गण, मांस, नरबी आदि आलंबन हैं और उसमें दुर्गण कृषिपहना आदि दर्शण हैं पूकता,मुँहसिकोडना, नेवमूंदना,नाक बंदकराना स्वादि अनुभाव हैं और मोह,अपस्मार, आवेग,न्यायि और मृत्यु हत्यादि च्यिन-चारी हैं वदाहरण टीकाक क्षांकमें या नीचे भाषामें देखे॥।।।

(भाषा) होहा-ग्लानि इस बीभन्स रस, रक्त मीस पिर् पाषा आलंबन नासा टकन, सुरत भीरन अनुभाष॥ १ ॥ (उदाहरण) जैसे-हाड मास मल मुनकी, वैंथी पोट नर देह । दंक बाम दुपरे हुबन, सुट दस्त और मेह ॥ २ ॥

शांतः ।

सम्यग्ज्ञानसमुत्यानः शांतो निस्पृहनाः यकः ॥ रागद्देपपरित्यागात्सम्यग्ज्ञानः स्य चोद्रदः॥ ३१ ॥

टीका-सम्याज्ञानसमुत्यानः निस्पृहनायकः शांतः (अत्र) च रागद्वेपपरित्यागात् सम्याज्ञानस्य उद्भव इत्यन्वयः ॥ सम्याज्ञानसमुत्यानः सम्याज्ञानात् समृत्यानम् उत्पत्तिः यस्य स निस्पृहनायकः निस्पृह इच्छारहितः नायको यस्य स तथाभृतः शांतः शांत

नामा रसो भवति अत्र रागद्वेषपरित्यागात् सम्यग्ज्ञाः नस्य उद्भवः उत्पत्तिः स्यात् इति (उत्तं च साहित्य द्र्पेणे)"शांतः शमस्थायिभावः उत्तमप्रकृतिर्मतः ॥ कुंदेंदुसुंदरच्छायः श्रीनारायणदेवतः ॥ १ ॥ अनि-त्यत्वादिनाऽशेपवस्तुनिः सारता तु या ॥ परमात्मस्व-रूपं वा तस्यालंबनमिष्यते ॥ २ ॥ पुण्याश्रमहरिक्षेत्रं तीर्थरम्यवनादयः ॥ महापुरुपसंगाद्यास्तस्योद्दीपन रूपिणः ॥ ३ ॥ रोमांचाद्याश्चानुभावास्तथा स्युव्यंभि चारिणः ॥ निवेदहर्पस्मरणमतिभूतद्याद्यः॥ ४ ॥ (उदाहरणम्) कुसुमशयनं पापाणो वा श्रियं भवनं वनं पतनुमराणम्परी वासत्वगम्यथः तारवी ॥ सरसमशनं फुल्मापो वा धनानि तृणानि वा शमसुखं सुधापानक्ष-ब्ये समं हि महात्मनाम् ॥" इति ॥ ३१ ॥

अर्थ-सम्पन्नात्रसे द्वयत्र होनेवादा श्लीतस्म होतार्थः संसाधि
मुखीर्था इच्छा गरित इसका नायक होतार्थः सम् भीर देवते परि
न्यायमें इसमें सम्पर्यतावर्षा द्वयति होतीर्थः (देवी साहित्यद्वर्षः
भीतः) युं द्वियदि हि शीतः स्मक्ता स्थापी आर श्लम है द्वयम्
सङ्गति है कुंद संद्रमादे समात शेत वर्षे है श्लीनायया देवतारे
नेतीर अतियय आदिसे सब यन्तुरोसे नित्यास्ता तथा परमाः
माका हम ये आदेवत है पुण्यास्म होस्तेव हीर्थं स्था पत्र
स्दानार्वरेक समेग इत्यादि दर्शन्वर्वे भीत संमावादिक अन्

भाव हैं निर्वेद एपं स्मरण भुतें (जीवों) पर दया इत्यादिक स्मिचारी हैं उदाहरण ऊपर श्लोकमें या मीचे भाषा दोहेंमें देती ॥ ११ ॥

(भाषा) दोहा-आरंबन निःहारता, धांति रूप रस शांत। देष राग विन जातसे, निरष्ट जाको कांत ॥ १॥ (उदाहरण) किला पुष्प सच्या सदक, आहे अरु द्वार समान। भिन शप्त दीड पकसे, पुण शांत तिह जान ॥ २ ॥

(परिशिष्टः)

रसाभासभावाभासी साहित्यदर्पणे यथा।

टीका—(अनीचित्यमृत्तत्त्वें आभासी रसभावयोः (यथा) चपनायकसंस्थायां मुनिग्रुरुपनीगतायां च ॥ चहुनायकविषयायां रती तथानुभयनिष्ठायाम् ॥ १ ॥ भृतिनायकनिष्ठायाम् ॥ १ ॥ भाति च हीनिष्ठिग्रुवायावर्ण्यने ॥हास्यश्रक्षयायुत्साहऽधमपात्रगते तथा वीरे ॥३ ॥ उत्तमपात्रगतते भयानके ह्रोयमेव मन्यत्र ॥ भावाभासो ल्वादिके तु वेश्यादिविषये स्यात्॥ १ ॥ ॥

जर्प-अनुधित रूपसे मृत्व होनेपर रस और भाय इनका आभास (निद्नीय रूप) होनाताहै जैसे छूंगर रसमें उप-नायफ अपाँत उपपति जारकी रतिमें जपना सुनि गुरु इत्यादि

की श्विपोंकी रतिमें अथवा जहां अनेक नायकहाँ अथवा नहीं देशों स्त्रीपुरुषोंमें भेम नहींहो अयवा जहाँ पतिकी रतिमें जारका सामी-प्पादि हो अथवा अधम पात्रका रतितया तिर्पक् जीवाँकी रति इत्यादिमें रहामास होताई (जर्वात ऐसे अवसरीं हे पर्वनें शृंगार रस निदनीय तथा दुपणहत्र और अनुवित है) और रींद् रसमें गुरु आदि पर कीप करना अनुचित द्रपण रूप है, हाति रसमें हीन (नीच) में उसका वर्णन अनुचित है हास्प रसमें गुरु आदिकी हुँसी करना दूपित है पीर रसमें मीयमें बाह्मगर्के मारने आदिका उत्साह दृषित है भया-नक रसमें उत्तममें भयका यर्गन दुवित होताहै इसी महार धीभाम रममें गुरुपुत्रादिकके बजादिकी परिचर्यामें प्रापि-का वर्णन भी दृषित इ.चम् हाताहै और इसी भांत वस्पादिके यगेनेंगे लग्ना आदिका होना यह भावाभाग (भाग दूपगड़ीता है) इसी महार अन्यत्र भी समजना चाहिये ॥ १ ॥ २॥३॥४॥

रसानां विरोधः दर्पणे ।

दोका-आग्रः करणवीभत्मगेद्रवीरभयानकैः ॥ भयानकैन करणेनापि हास्यो विगेषभाक्॥ १॥ करणो हास्यशृंगाग्माभ्यामपि तादशः॥गेद्रस्त हास्य शृंगाग् भयानक संगपि ॥ २ ॥ भयानकेन शतिन तथा वीग्माः स्मृतः॥शृंगाग्वीग्गेद्रास्यसम्यशानिभैषा नकः॥ ३॥ शांतस्त्र वीग्शृंगाग्गेद्रसम्यभयानकैः॥ शृंगोग्य तु वीमन्म इत्याग्याता विगेषिनः॥ ४॥ सान्वयसं॰ टी॰ भाषाटीकासहित । (२३६) -आदः अर्थात् "शृंगारस्स" करुणा, वीभनस्, रीह, पीर

· अर्य-आरः अर्थात् "ग्रंगारसः" करुणा, वीभत्स, रीट्र, धार और भपानक इनका विरोधी है और " हात्यरस " भपानक और करुणका विरोधी हो जाताहै॥ १॥

और ''करुणारस'' हास्य और शृंगारका विरोधी है इसी भांत ''रीदरस'' हास्य शृंगार और अपानउका विरोधी होता है॥२॥ और ''रीररस'' भपानक और शांतका विरोधी है तथा '' अपा-नकरस'' शृंगार, धीर, श्रीह, हास्य, शांत इनका विरोधी है॥३॥ ''शांतरस'' दीर शृंगार रीड हास्य और अपानक इनता विरोधी

"क्रोतरस" दीर श्रंगार रीद्र हान्य और भयानक इनरा विरोधी है और "बीमत्सरस" श्रंगारका विरोधी है इत्यादि (इनके अतिरिक्त इसी भीन रसीका मेबी भी ढ़ांती है नैम अहुनवी हास्पर्स मेनी है इसी मकार और भी गानी (इति परिशिष्ट) दोपैरुज्झितमाशितं ग्रुणगणेश्चेतश्चम-

त्कारिणं नानालंकितिभिः परीतमिभितो रीत्या स्फुरंत्या सताम् ॥ तस्तस्तनमय-तां गतं नवरसेराकल्पकालं कविस्रष्टा-रो रचयंतु काव्यपुरुपं सारस्वताध्यायि-नः॥ ३२॥ इति पंचम परिच्छेदः॥ ५॥

समाप्तोऽयं ग्रंथः ॥

टीका-सारस्वताध्यायिनः कवित्रधारः आकरप्-कालं कान्यपुरुपं रचयंतु कीदशं कान्यपुरुपं देविः वाग्भटालंकार-परि० ५.

उज्झित पुनः गुणगणैः आश्रितं पुनः नानालंकृतिभिः चेतश्रमत्कारिणं पुनः स्फुरंत्या सतां रीत्या अभितः परीतं पुनः तेस्त्तेः नवरसैः तन्मयतां गतम् इत्यन्वयः॥

दोंपैः अनर्थकादिकेः उज्झितं रहितं गुणगणैः माष्टुः योद्येः आश्रितं युक्तं नानालंकृतिभिः चित्राद्यैः उपमा-घैश्र चेतश्रमत्कारिणं चेतास चमत्कारं कुर्वतं सतां

तैस्तैः शृंगारादिभिः नवरसिः तन्मयतां गतं तन्मय-रूपिणम् एवंभूतं काञ्यपुरुपं सारस्वतं सरस्वतीनि-र्मितं शास्त्रमित्यर्थः तद्दध्यायिनः शास्त्रपाठिनः इति कविस्रष्टारः कवयम् ते स्रष्टारश्च कविस्रष्टारः काव्य-रचियतार इत्यर्थः आकल्पकालं कल्पपर्यतं कान्य-पुरुषं काव्यह्मपुरुषं रचयंतु सृजंतु ॥ अत्र सार-स्वताध्यायिनः इति कथनेन सरस्वतीप्रणीतसूत्र व्याकरणशाम्ब्रस्य प्राचीनता द्योतिता ॥ ३२ ॥ अर्थ-सरस्वतीके निर्मित्त शाद्य निनके परनेवाले कविता रचनेवाले कवि दीवाँमे अनुवैकादि पूर्वीक दोवाँगे रक्षित और मानुपादि मुलांस संयुक्त और विवादि शप्दार्थकारी और टामादि अयांछंकारोंने वित्तमें चनाकार पैदा करनेवाएँ और सन्पुरवीकी स्कृतिन कानियोंसे निवद और श्रंगारादिक दन दन

लाटादीनाम् अभितः स्फुरंत्या रीत्या परीतं निवदं

(२१४)

सान्यमसं० टी॰ भाषाटीकासहित ।: (२३५)

रसें।सं तन्मयताको मात्र हुप ऐसे काव्यरूपी पुरुषको कल्पकांछं पर्यत रचते रहो यहाँ (सारस्वताप्यायिन)पसा कहनेसे सरस्वती सुत्र संवंधी व्यावरणकी भी माचीनता प्रयट होतीहे शुभम्॥३२॥

पूर्निः।

टीकाकारस्य मे परिचायकाः श्होकाः।

(श्लो॰) रम्ये रेवतपत्तने जिनरसूट् मामाधिपानां कुले में तातो भुवि छन्यमानविभवः श्लीरामकर्णः सुधीः॥श्लीमद्रामसहायकस्तरनुजो यस्य प्रसादान्मया विद्या कीर्तिविवर्धिनी सुकविता माप्ता च भक्तिहरेः॥शा कुशालीरामाख्यः स्फुरकनगरे सत्कविरसूरस्वाचारी निष्ठः सुपिं मम मातामह इति ॥ तशागरे स्कारे सुविभवे मया छन्या धीश्रीभृतिरति विभाकीर्तिपृतयः ॥ २ ॥ शेलाननेशन्यवर्यसमाश्लितस्ति सुविभवे स्था स्था हिन्त सहस्वशास्त्रिसुरखः॥ २ ॥ शेलाननेशन्यवर्यसमाश्लितस्ति सुविभवे सुविभवे स्था हिन्त सहस्वशास्त्रिसुरखः ॥ २ ॥ शेलाननेशन्यवर्यसमाश्लितस्ति सुविश्वस्य साहित्यशास्त्र सिकेष्ठ विलासक्या ॥ ३॥ द्विरस्तांकेन्दुके वर्षे तृतीयाया दिनेऽक्षये॥ अक्षन्यानंददा चास्तु टीकेयं पूर्तितां गता ॥ ४ ॥

क्रयं-रमणीक रेचतपत्तन अर्थात् रेवाडी शहरमें मामाधिष (सेडा पतियां) के पंशमं मुझ टीकाकारका जन्म हुवा और पृष्पीमें पहुत मानहृष विभय मान्न करने वाले भागंडित राम कर्णमी मेरे पिता हुए और उनके छपु स्नाता (भेरे चया) भी

जाहिरात ।

४-धातुपुष्टि चूर्ण सिद्ध सुश्रुतोक्त परम प्रमेहनाशक बलकर्ता पुष्टिकर्ता १० तोला २० मात्रा १॥)

विशेष ।

यदि कोई प्रतिष्ठित महाशय किसी भारी रोगके निदान चिकित्सादिके लिये इमारा कुछदिन आवा-हन करना चाँहें तो वह भी परस्पर पत्र व्यवहारसे निश्चय होसक्ता है।

गुर्भाचतक-

पं॰ मुरलीधरशर्मा राजवैद्य,

फर्रुखनगर पंजाव.

हमारे रचित पुस्तक।

१-सुश्रुतसंहिताकी सान्त्रय सटिप्पणीक सपरि-शिष्ट भाषाटीका मुल्य १२)

राष्ट्र मापाटाका सूर्व १२) ं २-"शरीरपुष्टिवियान्" शरीरहृष्ट पुष्ट करने और

रखनेकी विधि मृ. ।=) ३-"डाक्टरी चिकित्सा सार" इसमें डाक्टरी मत

से और साथही देशींनैधकसे हरेक रोगका नाम छक्षण रुपायादि छिखाँहे संक्षित डाक्टरी निषंद्र

भी है ॥)

प्लेगके निदान लक्षण नत्यत्तिका कारण यत्न आदि वैद्यकसे लिखाई ।-) ५-सर्व विपचिकित्सा हसमें स्थावर अफीम सं-

४-महामारीविवेचन जिसमें अचलित महामारी

५-सर्व विषयिकित्सा हसमें स्थावर अफीम सं-खिये आदि जंगम सर्व विच्छु-आदिके विषोंके सहल उपायादि लिखेंहें ॥=)

६-सत्कुलाचरण इसमें शिक्षा धर्मे कुरीतिशोधन न्यापार कृपि शिल्प गृहस्थ स्वास्थ्यरक्षादि १९ विपयहें यह नये टंगका एक उत्तम उपन्यास है ॥)

विषयहें यह नमें ढंगका एक उत्तम उपन्यास है ॥) ७-वाग्भटालंकारकी यह टीका जिसमें ऊपर मूल

पित अन्वय और संस्कृत टीका फिर सरल हिंदी भाषा टीका है फिर उसी विषयके संक्षित होहे बना कर लिखेंदें ऐसी उत्तम टीका किसी मंथकी नहीं छपी १

ये सभी पुस्तकें सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजीके श्रीवेंकटेश्वर छापेखाने वंबईसे मिलती हैं।

> ^{निवेदक}-पं॰ सुरलीधरशर्मा राजवेदा, फर्रुजनगर निवासी टीकाकार.



d

